श्रीवरदराज-कृत

3·2

लघुसिद्धान्त

कौमुदी

आचार्य - शिव प्रसाद द्विवेदी

लघुसिद्धान्त-कौमुदी

(अवध एवं गोरखपुर विश्वविद्यालय एम०ए० संस्कृत के पाठ्यक्रमानुसार)

व्याख्याकार :

शिवप्रसाद द्विवेदी

साहित्यवेदान्ताचार्य एम० ए० (हिन्दी संस्कृत)

वेदान्तविभागाध्यक्ष-श्रीहनुमत् संस्कृत महाविद्यालय

अयोध्या जि०-फैजाबाद (उ० प्र०)

प्रकाशक

आदर्श पुस्तक भण्डार

अस्पताल मार्ग, (बाराबंकी)

प्रकाशक :
आदर्श पुस्तक भण्डार
अस्पताल मार्ग (बाराबंकी)

मूल्य
रु० १२-००

संस्करण १९८१ ई०

मुद्रक :
श्याम मुद्रणालय
श्याम सदन, कटरा, अयोध्या

सम्मुखीन

वेदोपबृंहणसाधनों में व्याकरणशास्त्र अन्यतम है। साधु शब्दों के ज्ञान का साधकतम व्याकपणशास्त्र 'एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुष्ठु प्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति।' सूक्त्युक्त पुण्यादृष्ट का आरादुपकारक है। पाणिनीय व्याकरणशास्त्र का प्रवेशद्वार-भूत 'लघुसिद्धान्त कौमुदी' व्याकरणशास्त्र में प्रविविक्षुओं के वाङ्मलों की उपयुक्त चिकित्सा है। साधुसंस्कृत व्याहार-व्यवहार की प्रक्रिया की दृष्टि से 'इस ग्रन्थ का पठन-पाठन अनिवार्य होने के ही कारण संस्कृत विद्यालयों, महाविद्यालयों के साथ-साथ आधुनिक शिक्षापद्धति में भी संस्कृत विषय के उच्च कक्षाओं के पाठ्यक्रम में 'यथेष्ट सन्निवेश किया है।

श्रीवरदराचार्य प्रणीत लघुसिद्धान्त कौमुदी में सूत्रों की व्याख्या के साथ-साथ सभी प्रयोगों तथा प्रतियोगों की रूप सिद्धि लिखने का यथाशक्य प्रयास किया गया है। ग्रन्थ का कलेवर अधिक बढ न जाय; एतदर्थ अनेक सदृश साधुत्व प्रकार वाले शब्दों के रहने पर एक या एकाधिक प्रयोगों को सिद्ध करके तद्व्यतिरिक्त प्रयोगों के साधुत्व प्रकार का सक्षिप्त रूप निर्दिष्ट कर दिया यया है। नवगणी प्रकरण में तत्-तत् प्रयोगों के साधुत्वप्रकार प्रदर्शन के अन्त में निर्धारित धातुओं के समस्त रूप भी दसो लकारों में संकलित कर दिये गये हैं।

'मेराज अहमद' 'आजाद' आदर्श पुस्तक भण्डार, बाराबंकी ने प्रस्तुत सस्करण का यह रूप देने के लिए मुझे प्रोत्साहित किया जिसके फलस्वरूप यह ग्रन्थ आपके हाथों में प्रदान करने में मैं समर्थ हो सका हूं।

इस पुस्तक का यह रूप देने में 'जिन-जिन विद्वानों की कृतियों से मुझे जो कुछ भी विपुल अथवा अल्प सहायता मिली है उसके लिए मैं उन विद्वानों के प्रति हृदय से आभारी हूं। इस कृति का प्रस्तुत रूप देने में जिन महानुभावों का मनसा-वाचा कर्मणा जो कुछ भी सहायता मिली है उनके प्रति मौन आभार प्रदर्शन मैं अपना कर्तव्य समझता हूं।

इस ग्रन्थ को अधिकाधिक छात्रोपयोगी बनाने के लिए यथाशक्य प्रयास किया गया है। इससे यदि सुरभारती के समुपासकों का किंचिन्मात्र भी उपकार हो सका तो मैं अपने प्रयास को सफल मानूँगा।

विदुषामाश्रवः

शिवप्रसाद द्विवेदी

श्याम सदन, कटरा

अयोध्या (उ०प्र०)

कार्तिक पूर्णिमा

२०३७

लघुसिद्धान्त-कौमुदी

अथ

तिङन्ते भ्वादिगणः

भूधातुः

मूल--लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लेट, लोट्, लङ्, लिङ्, लुङ्, लृङ् एषु पञ्चमो लकारश्छन्दोमात्रगोचरः ।

अनु०--लट् आदि दशलकार हैं। इन दशों लकारों में पाचवां लेट् लकार केवल वेद में ही पाया जाता है। लौकिक संस्कृत में नहीं।

विमर्श--इन सबों को लकार इसलिए कहा जाता है कि इनकी आदि में ल है। इन दशों लकारों में प्रारम्भ के पांच लकार (लट् से लेकर लोट् तक) टित् कहलाते हैं और अन्तिम पांच लकार (लङ् से लेकर लृङ् तक) ङित् कहे जाते हैं। लकार धातुओं के साथ प्रयुक्त होकर उनके वाच्यभूत क्रियाओं के काल को बतलाते हैं। लकारों के अर्थ निम्न हैं-

१-लट्-वर्तमानकाल, २-लिट्-परोक्षअनद्यतन भूतकाल, ३-लुट्-अनद्यतन भविष्यत्काल, ४-लृट्-भविष्यत् सामान्य; ५-लेट्-शर्त एवं आशंका, ६-लोट्-आज्ञा आदि, ७-लङ्-अनद्यतन भूत, ८-लिङ्-विधि एवं आशीर्वाद, ९-लुङ्-सामान्यभूत तथा १०-लृङ्-हेतु हेतुमद्भाव ।

अद्यतन--जो आज (चौबीस घण्टों के भीतर) का हो। अनद्यतन-जो आज का न हो।

मूल ३७५---लःकर्मणि च भावे चाऽकर्मकेभ्यः ३।४।६९। लकाराः सकर्मकेभ्यः कर्मणि कर्तरि च स्युरकर्मकेभ्यो भावे कर्तरि च ।

अनु०-सकर्मक धातुओं से लकार कर्म तथा कर्ता में होते हैं और अकर्मक धातुओं से भाव तथा कर्ता में।

विमर्श-सभी धातुओ के दो अर्थ होते हैं-फल एवं व्यापार। व्यापार के आश्रय को कर्ता, कहते हैं और फल के आश्रय को कर्म। (व्यापाराश्रयः कर्ता फलाश्रयः कर्म) जिस प्रयोजन की सिद्धि के लिए क्रिया की जाती है, उसे फल कहते हैं। जैसे-उत्तर देश संयोग के लिए गमन क्रिया की जाती है, अतएव 'रामोगृहं गच्छति में फल है उत्तर देश संयोग रूप घर पहुचना, अतः वही फल हुआ। प्रयोजन की सिद्धि के लिए की जाने वाली क्रिया को व्यापार कहते हैं। जैसे 'तण्डुलं पचति' में बटलोही के चढ़ाने से लेकर उतारने तक की को जाने वाली सारी क्रियाएँ व्यापार कहलाती हैं। फल का आश्रय कर्म और व्यापार का आश्रय कर्ता होता है। कर्ता का निर्दोष लक्षण है कि-धातुवाच्य व्यापारके करनेमें स्वतन्त्र तथा व्यापाराश्रयको कर्ता कहते हं।

भाव--धातुवाच्य व्यापार को भाव कहते हं।

अकर्मकधातु-जिन धातुओं के वाच्यार्थ भूत फल एवं व्यापार के आश्रय एक होते हैं उन्हें, अकर्मकधातु कहते हैं। (फल समानाधिकरणव्यापारवाचकत्वमकर्मकत्वम्।) अकर्मकधातुओं का संग्रह इस प्रकार समझना चाहिये--

"लज्जासत्तास्थितिजागरणं वृद्धिक्षयभयजीवनमरणम्। शयन क्रीडारुचिदीप्त्यर्थं धातुगणन्तमकर्मकमाहुः। अर्थात्-लज्जा; सत्ता, स्थिति, जागरण, वृद्धि, क्षय, भय, जीवन, मरण, शयन, क्रीडा, रूचि एवं दीप्ति इन अर्थों के वाचक धातुगण अकर्मक कहलाते हैं।

सकर्मकधातु-जिन धातुओं के वाच्यार्थभूत व्यापार और फल के आश्रय भिन्न-भिन्न होते हैं उन्हे सकर्मक कहते हैं। (फल व्याधिकरणव्यापारवाचकत्वं सकर्मकत्वम्।

वाच्य---क्रिया के उसप्रकार को वाच्य कहते हैं जिससे पता चलता है कि लकार किस अर्थ में प्रयुक्त है। वाच्य तीन प्रकार प्रकार के होते हैं- कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य।

कर्तृवाच्य में---लकार का अर्थ कर्ता होता है, कर्मवाच्य-में लकार का अर्थ कर्म होता है तथा भाववाच्य-में लकार का अर्थ भाव होता है।

कर्तृवाच्य में---कर्ता में प्रथमा विभक्ति, कर्म में द्वितीया विभक्ति तथा कर्ता एवं क्रिया के वचन और पुरुष एक समान होते हैं।

कर्मवाच्य में---कर्ता में तृतीया बिभक्ति और कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है। और क्रिया के वचन एवं पुरुष समान होते हैं।

भाववाच्य में---कर्ता में सदा तृतीया विभक्ति होती है और क्रिया सदा अन्य पुरुष एकवचन की होती है।

कर्तृवाच्य में---कर्ता उक्त होता है, और कर्मवाच्य में कर्म उक्त होता है। उक्त कर्ता में प्रथमा विभक्ति और अनुक्तकर्ता में तृतीया विभक्ति होती है।

मू०३७६---वर्तमाने लट्। ३।७।१२३। वर्तमानक्रियावृत्तेर्धातो लट् स्यात्। अटावितौ। उच्चारणसामर्थ्याल्लस्य नेत्त्वम्। 'भू' सत्तायाम्। कर्तृविवक्षायां भू ल् इति स्थिते-

अनु०---यदि धातुवाच्यक्रिया वर्तमान काल की हो तो धातु से लट् लकार होता है। लट् के अ और ट् की इत्संज्ञा हो जाती है। ल् की भी इत्संज्ञा इसलिए नहीं होती है कि इसकी भी इत्संज्ञा हो जाने पर कुछ भी शेष नहीं रहने से लट् का उच्चारण ही व्यर्थ हो जायेगा। भू धातु का अर्थ सत्ता (होना) है। कर्ता की विवक्षा में 'भू' धातु से लट् होने पर अ और ट् की इत्संज्ञा होने पर 'भू ल्' बना।

मू०३७७-तिप्तस्झिसिप्थस्थ-मिब्वसमस् ताऽतांझ-थासाऽथांध्वम्-

इड्वहिमहिङ् ।३।४।९९ एतेऽष्टादशलादेशाः स्युः ।

अनु०--तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ, मिप्, वस्, मस्, त, आताम्, झ, थास्, अथाम्, ध्वम्, इट्, वहि, महिङ् ये अठारह आदेश लकारों के स्थान में होते ।

विमर्श-आदेश शत्रुवत् होते हैं, अतएव ये लकार को हटाकर उसके स्थान में होते है ।

तिङ्--तिप् आदि अठारह प्रत्ययोंको तिङ् विभक्ति कहते हैं । तिङ् प्रत्याहार भी होता है। तङ्-इनमें से प्रथम नौको छोड़कर त से लेकर महिङ् तक के अंतिम नौ को तङ् कहते हैं। तङ् प्रत्याहार भी होता है ।

मू०३७८--लः परस्मै पदम् १।४।९९ लादेशाः परस्मैपदसंज्ञाः स्युः ।

अनु०-ल् के स्थान में जिनका आदेश होता है, उन तिप् आदि की परस्मैपद संज्ञा होती है ।

विमर्श--तिप् आदि अठारह, कानच्, शानच् शतृ, और क्वसु को लादेश कहते हैं । 'लिटः कानज्वा' ३।२।१०९ से कानच्, 'क्वसुश्च' ३।२।१०७ से क्वसु 'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे' ३।२।१२४' से शतृ शानच् प्रत्यय होते है । 'लः परस्मैपदम्' सूत्र से इन सबों के परस्मैपद संज्ञा की प्राप्ति होती है ।

मू० ३७९-तङानावात्मनेपदम् १।४।१०० तङ्प्रत्याहारः शानच्कानचौ चैतत् संज्ञाः स्युः । पूर्वसंज्ञापवादः ।

अनु०--तङ् प्रत्याहार तथा शानच् और कानच् प्रत्यय की आत्मनेपद संज्ञा होती है । यह सूत्र परस्मैपद संज्ञा का बाधक (अपवाद) सूत्र है: (अर्थात् पूर्व सूत्र से जो तङ् तथा शानच् एवं कानच् की भी परस्मैपद संज्ञा हुई थी उसको बाध करके इस सूत्र से उनकी आत्मनेपदसंज्ञा हो गयी ।)

मू०३८०- अनुदात्तङित आत्मने पदम् १।३।१२ अनुदात्तेतो ङितश्च

धातोरात्मनेपदं स्यात् ।

अनु०--अनुदात्तेत तथा ङित धातुओं से आत्मनेपद के प्रत्यय (तङ् तथा शानच् एवं कानच्) होते हैं ।

विमर्श--जिन धातुओं के अनुदात्त अच् की इत्संज्ञा हुई है, उन्हें अनुदात्तेत कहते हैं । जैसे एध्, धातु अनुदात्तेत धातुओं की जानकारी धातुपाठ से हो सकती है ।

ङित्--धातु जिसके ङ् की इत्संज्ञा हुई हो जैसे शीङ् धातु ।

अनुदात्तङितः-पद का विग्रह इस प्रकार है । अनुदात्तश्च ङश्च अनुदात्तङौ तौ इतौ यस्य सोऽनुदात्तङित् तस्य ।

मू० ३८१--स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले १।२।७२ । स्वरितेतो ञितश्च धातोरात्मनेपदं स्यात्कर्तृगामिनि क्रियाफले ।

अनु-स्वरितेत तथा ञित् धातुओं की आत्मनेपद संज्ञा होती है; यदि क्रिया का फल कर्ता को मिले तो ।

विमर्श---स्वरितेत् धातु-जिस धातु के स्वरित अच् की इत् संज्ञा हुई हो । जैसे यज् धातु । ञित्धातु-जिसके ञ् की इत्संज्ञा हुई हो । जैसे श्रिञ् । स्वरितञितः-पद का विग्रह है-स्वरितश्च ञश्च = स्वरितञौ तावितौ यस्य सः स्वरितञित् तस्य ।

सूत्रके--'कर्तृगामिनि क्रियाफले' का अर्थ है कि क्रिया का मुख्य फल यदि कर्ता को मिल रहा हो । जैसे यज्ञका मुख्य फल स्वर्गादि की प्राप्ति यजमान को ही होती है, ऋत्विक् को नहीं । अतएव--'यजमानः यज्ञेन यजते' प्रयोग होगा और 'ऋत्विक् यज्ञेन यजति' प्रयोग होगा; क्योंकि ऋत्विक को यद्यपि यज्ञ में दक्षिणा इत्यादि का लाभ होता है; किन्तु वह यज्ञ का मुख्य फल नहीं है । यज्ञ का तो मुख्य फल स्वर्ग प्राप्ति है, और वह यजमान को ही मिलता है ऋत्विक को नहीं ।

मू० ३८२ --शेषात्कर्तरिपरस्मैपदम् । १।३।७८ । आत्मनेपदनिमित्त

हीनाद् धातोः कर्तरि परस्मैपदं स्यात् ।

अनु०--आत्मने पद के कारणों से रहित धातुओं से कर्ता में परस्मैपद होता है ।

विमर्श--सूत्राष्टाध्यायी के १।३।१२; १।३।७२, और १।३।७८ ये तीन सूत्र पदों की सामान्य व्यवस्था करते हैं । इन पदों की विशेष व्यवस्था की चर्चा आत्मनेपद तथा परस्मैपद प्रकरणों में की जायेगी । इन तीनों सूत्रों का निष्कर्ष हुआ कि कर्तृवाच्य में अनुदात्तेत, स्वरितेत, ङित्, ञित् तथा कर्तृगामिक्रियाफल वाले धातुओं के रहने पर धातुओं से आत्मनेपद होता है । इन सबों के अतिरिक्त धातुओं से कर्तृवाच्य में परस्मैपद होता है ।

किञ्च—कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में केवल आत्मनेपद ही होता है, परस्मैपद नहीं ।

मू० ३८३--तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः १।४।१०१। तिङ उभयोः पदयोस्त्रयस्त्रिकाः क्रमादेतत्संज्ञाः स्युः ।

अनु०—तिङ् (विभक्ति) के दोनों पदों (परस्मैपद और आत्मनेपद) के जो तीन-तीन त्रिक हैं उनकी क्रम से प्रथम (पुरुष) मध्यम (पुरुष) और उत्तम (पुरुष संज्ञा होती है. ।

विमर्श--परस्मैपद के नव प्रत्यय और तीन त्रिक है-प्रथम त्रिक के-तिप्, तस् झि; द्वितीयत्रिक के-सिप्, थस्, थ, और तृतीय त्रिक के-मिप्, वस्, मस् । प्रत्यय होते हैं । आत्मनेपद के भी नव प्रत्यय और तीन त्रिक है-प्रथम त्रिक के त, आताम्, झ; द्वितीय त्रिक के-थास्, आथाम्, ध्वम् और तृतीय त्रिक के-इट्, वहि और महिङ् प्रत्यय होते हैं । इन दोनों पदों के प्रथम त्रिक की प्रथम पुरुष, द्वितीय त्रिक की मध्यम पुरुष और तृतीय त्रिक की उत्तम पुरुष संज्ञा होती है ।

मू० ३८४--तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः १।४।१०२। लब्ध

प्रथमादिसंज्ञानि तिङस्त्रीणित्रीणि प्रत्येकमेकवचनादिसंज्ञानिस्युः ।

अनु०--जिनकी सूत्र १।४।१०१। से प्रथम, मध्यम और उत्तम की संज्ञा प्राप्त हो चुकी है, तिङ् के उन तीनों त्रिकों के प्रथम प्रत्यय की एकवचन संज्ञा, दूसरे प्रत्यय की द्विवचन संज्ञा तथा तीसरे प्रत्यय की वहुवचन संज्ञा होती है ।

सू० ३८५--युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपिमध्यमः १।४।१०५। तिङ् वाच्यकारकवाचिनि युष्मदि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमाने च मध्यमः ॥

अनु०—तिङ् के वाच्यभूत कारक (कर्ता अथवा कर्म) के वाचक युष्मद् शब्द के रहने पर उसका (युष्मद् शब्द का) वाक्य में प्रयोग हुआ हो अथवा नहीं हुआ हो, किन्तु लकार के स्थान में मध्यम संज्ञक तिङ् प्रत्यय होते हैं ।

विमर्श—सूत्र के 'समानाधिकरणे' पद का अर्थ है- तिङ्वाच्यकारकवाचिनि' 'स्थानिनि' का अर्थ है 'अप्रयुज्यमाने' 'अपि' का अर्थ है 'प्रयुज्यमाने' । समानाधिकरण का अर्थ है-एक ही अधिकरण में रहना । जहां पर अनेक प्रवृत्तिनिमित्त वाले शब्द एक ही अर्थ को बतलाते हैं, वहां पर सामानाधिकरण्य माना जाता है । 'भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तानां शब्दानामेकस्मिन्नर्थेवृत्तिस्सामानाधिकरण्यम् ।' अतएव समानाधिकरणे का अर्थ हुआ तिङ्के वाच्यार्थभूतकारक के वाचक । अर्थात् तिङ् और युष्मद् इन दोनों का अर्थ एक ही कारक के होने पर ।

स्थानिनि—का अर्थ है 'अप्रयुज्यमाने ।' स्थानी वही होता है जिसके स्थान में कोई आदेश हो । आदेश होने पर स्थानी का लोप हो जाता है । उसका प्रयोग नहीं होता अतएव 'स्थानिनि' का अर्थ 'अप्रयुज्यमाने' हुआ । अपि शब्द का अर्थ 'प्रयुज्यमाने' है ।

वाक्य में दोनों प्रकार का प्रयोग होता है कभी कर्ता का

प्रयोग होता है और कभी नहीं भी होता है। जैसे 'त्वम् भवसि' में कर्ता त्वम् का प्रयोग है, किन्तु 'भवसि इस वाक्य में नहीं।

मू०३८६—अस्मद्युत्तमः १।४।१०७। तथाभूतेऽस्मद्युत्तमः।

अनु०—तिङ् के वाच्यार्थभूत कारक (कर्ता या कर्म) के वाचक अस्मद् शब्द के रहने पर लकार के स्थान में उत्तम पुरुष के तिङ् प्रत्यय होते हैं।

मू०३८७—शेषे प्रथमः १।४।१०८। मध्यमोत्तमयोरविषये प्रथमः।

अनु—मध्यम और उत्तम पुरुष के विषय को छोड़कर अन्यत्र सर्वत्र लकार के स्थान में प्रथम पुरुष संज्ञक तिङ् प्रत्यय होते हैं।

विमर्श—जहां कर्ता और कर्म का वाचक 'अस्मद्' शब्द होता है, वहां उत्तम पुरुष, जहां युष्मद्' शब्द कर्ता अथवा कर्म का वाचक होता है वहां मध्यम पुरुष के तिङ् लकार के स्थान में होते हैं इन दोनो को छोड़कर सर्वत्र प्रथम पुरुष के ही तिङ् प्रत्यय होते हैं।

मू०३८८—तिङ्शित् सार्वधातुकम्' ३।४।११३ तिङ शितश्च धात्वधिकारोक्ता एतत् संज्ञाः स्युः।

अनु०—धातोः।३।१।९१। सूत्र के अधिकार में कहे गये तिङ् और शित् प्रत्ययों की सार्वधातुकसंज्ञा होती है।

मू०३८९—कर्तरि शप् ३।१।६८ कर्त्रर्थे सार्वधातुके परे धातोः शप्।

अनु०—कर्ता अर्थ वाले सार्वधातुक के परे रहते धातु से शप् (विकरण) होता है।

विमर्श—शप विकरण कहलाता है। यह धातु और तिङ् के बीच में होता है। शप् के श् और प् की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है केवल अ बचता है।

मू०३९०—सार्वधातुकार्धधातुकयोः ७।३।८४। अनयोरिगन्ताङ्गस्य गुणः। अवादेशः भवति, । भवतः।

अनु०—सार्वधातुक एवं आर्धधातुक प्रत्यय के परे रहते इगन्त अंग को गुण होता है। भू के उ का ओ गुण होकर तथा अवादेश होकर भवति और भवतः रूप बनते हैं।

भवति—सत्तार्थक भू धातु से वर्तमान कालिक कर्ता की विवक्षा में 'वर्तमाने लट्' से लट् लकार अ और ट् की इत्संज्ञा होने पर भूल् यह स्थिति हुई। 'तिप्तस्झिसिपथसथ०' इत्यादि सूत्र से ल् के स्थान में परस्मैपद संज्ञक प्रथमपुरुष एकवचन की विवक्षा में तिप् प्रत्यय होने पर प् की इत्सञ्ज्ञा होकर भू ति बना। 'तिङ्शित् सार्वधातुकम्' सूत्र से तिप् की सार्वधातुक संज्ञा होने पर 'कर्तरिशप्' से शप् हुआ। श् और प् की इत्संज्ञा होने पर शप् का केवल अ बचा। शप् के विकरण होने से वह भू और ति के बीच में स्थित हुआ। अत एव रूप बना 'भू अ ति'। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से भूधातु के इगन्त अंग उ को ओ गुण होकर 'भोअ ति' बना। 'एचोऽयवायावः' से अवादेश होकर भवति बना।

भवतः—भू धातु से वर्तमानकालिक कर्ता के अर्थ में लट् लकार होने पर अ और ट् की इत्संज्ञा हुई तो 'भू ल्' यह स्थिति हुई। 'तिप्तस्झि०' इत्यादि सूत्र से ल् के स्थान में परस्मैपद संज्ञक प्रथम पुरुष के द्विवचन में तस् प्रत्यय होकर 'भूतस्' बना। 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा होने पर 'कर्तरिशप्' से शप् हुआ। शप् के श् और प् की इत्संज्ञा होने पर केवल अ बचा। और 'भू अ ति' यह स्थिति हुई। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण होने पर 'एचोऽयवायावः' से अवादेश होने पर भवतस् रूप बना। स् का रुत्व विसर्ग होने पर 'भवतः' रूप का सिद्धि हुई।

मू०३९१—'झोन्तः' ७।१।३। प्रत्ययावयवस्य झस्यान्तदेशः। अतो

गुणे । भवन्ति। भवसि, भवथः, भवथ ।

अनु०—प्रत्यय के अवयव 'झ' को 'अन्त' आदेश होता है । 'अतोगुणे' ६।१।९७। सूत्र से पररूप होकर 'भवन्ति' यह रूप सिद्ध हुआ ।

भवन्ति-भूधातु से वर्तमानार्थक कर्ता के अर्थ में लट् लकार होकर अ और ट् की इत्संज्ञा होने पर 'भूल्' यह स्थिति हुई। ल् के स्थान में परस्मैपद प्रथम पुरुष 'बहुवचन' के अर्थ में झि प्रत्य होकर 'भू झि' बना। 'तिङ्शित् सार्वधातुकम्' से झि की 'सार्वधातुक' संज्ञा होकर 'कर्तरि शप्' से शप् हुआ। श् प् की इत्संज्ञा होकर 'भू अ झि 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' इस सूत्र से भू के अ का ओगुण होकर अवादेश होने पर 'भवझि' बना। 'झोन्तः' से 'झ' को अन्तादेश होने पर 'भव अन्ति' बना। अतोगुणे' से प रू होकर भवन्ति बना।

भवसि भवथः भवथ की भी सिद्धि भवति के ही तरह होगी। केवल मध्यम, पुरुष की विवक्षा में 'तिप्तस०' इत्यादि सूत्र के द्वारा क्रमश भवसि में सिप्। भवथः में थस् और भवथ में थ आदेश होंगे। तथा भवथः में थस् के स् का रुत्व विसर्ग होगा।

मू०—अतोदीर्घो यञि ७।३।१०१। अतोऽङ्गस्य दीर्घो यञादौ सार्वधातुके। भवामि, भवावः भवामः । स भवति, तौ भवतः, ते भवन्ति। त्वं भवसि, युवाम् भवथः, यूयम् भवथ । अहं भवामि, आवाम् भवावः, वयम् भवामः ।

अनु०—यञादि सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहते, अदन्त अङ्गको दीर्घ होता है। भवामि, भवावः, भवामः ।

सः भवति—वह होता है। तौ भवतः=वे दोनो होते है। ते भवन्ति=वे सब होते हैं। त्वं भवसि=तुम होते हो। युवां भवथः=तुम दोनो होते हो। यूयं भवथ=तुम सब होते हो।

अहं भवामि = मैं होता हूं। आवाम् = भवावः = हम दोनों होते हैं। वयम् भवामः = हम सब होते हैं।

विमर्श--भवामि भू धातु से लट् लकार उत्तम पुरुष की विवक्षा में मिप् प्रत्यय होने पर 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' से सार्व धातुक संज्ञा होने पर और कर्तरि शप्' से शप् प्रत्यय होने पर 'भू अ मि' बना। सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से भू के ऊ का गुण होकर 'भो अमि' बना 'एचोयवायावः' से अवादेश होने पर भवमि बना। 'अतोदीर्घोयञि' से अदन्त अंग 'व' के अकादीर्घ होकर 'भवामि' बना।

भवावः एवं भवामः की भी सिद्धि इसी प्रकार होगी। केवल इन दोनों में वस् एवं मस् प्रत्यय होंगे और इनके अन्तिम स् का रुत्वविसर्ग होगा।

मू०--परोक्षे लिट् ३।२।११५। भूतानद्यतनपरोक्षार्थवृत्तेर्धातोर्लिट् स्यात्। लस्य तिबादयः।

अनु०—अनद्यतनभूत और परोक्षक्रिया के अर्थ में धातु से लिट् लकार होता है। (लिट् में इ तथा ट् की इत्संज्ञा तथा लोप होते हैं; केवल ल् ही बचता है।) ल् के स्थान में तिप् आदि आदेश होते हैं।

मू०--परस्मैपदानां णलतुसुस्-थलथुस्-णल्वमाः। ३।४।८२ लिट-स्तिबादीनां नवानां णलादयः स्युः। भू अ इति स्थितौ।

अनु०—लिट् के स्थान में जो परस्मैपद के नव तिबादि आदेश होते हैं उनके णल् आदि निम्न आदेश होते हैं।

स्थानी--तिप्, तस्, झि, सिप्, थस्, थ; मिप्, वस्, और मस्।
आदेश--णल्, अतुस्, उस् थल् अथुस् अ, णल् व और म।

तिप् के स्थान् में णल् आदेश होने पर ण् और ल् की इत्संज्ञा तथा लोप होने पर भू अ यह स्थिति हुई।

मू०—भुवोवुग् लुङ्लिटोः । ६।४।८८ भुवोवुगागमः स्यात् लुङ्लिटोरचि ।

अनु०—भू को वुक् का आगम होता है, लुङ् तथा लिट् लकार सम्बन्धी अच् के परे होने पर ।

विमर्श—वुक् में उक् की इत्संज्ञा होकर व् मात्र बचता है वुक् के कित् (क इत्संज्ञक) होने के कारण; वुगागम भू के अन्त में होगा । लिट् सम्बन्धी अच् है णल् का अ । 'भू व् अ' यह स्थिति होगी ।

मू०—लिटिधातोरनभ्यासस्य । ६।१।८। लिटि परे अनभ्यासधात्ववयवस्यैकाचः प्रथमस्य द्वे स्तः; आदिभूतादचः परस्य तु द्वितीयस्य । भुव् भुव् इति स्थिते ।

अनु०—लिट् परे रहने पर अभ्यास रहित (जिसका द्वित्व नहीं हुआ हो) धातु के प्रथम एकाच् (एक अच् वाले) अवयव को द्वित्व होता है । यदि धातु अजादि हो (धातु का पहला वर्ण अच् हो) तो उस अच् के बाद में आने वाले एकाच् अवयव को द्वित्व होता है ।

टिप्पणी—हलादि धातु यदि अनेकाच् (अनेक अचोंवाला) भी हो तो भी उसके प्रथम एकाच् को ही द्वित्व होगा । हलादि धातु का एकाच्त्व व्यपदेशिवद्भाव से ही माना जाता है । अजादि धातु के एकाच् होने पर उसका व्यपदेशिवद् भाव से द्वित्व होगा । जैसे-अत् धातु । व्यपदेशिवद् भाव से इसके प्रथम एकाच् का अभिप्राय है कि द्वित्व एक ही बार होगा ।

समन्वय—धातु का प्रथम एकाच् भुव् है उसीको द्वित्व होगा क्योंकि उसके बाद में लिट् सम्बन्धी अ है णल् का अ । तो स्थिति होगी भुव् भुव् अ ।

मू०—पूर्वोऽभ्यासः ६।१।४ । अत्र ये द्वे विहिते तयोः पूर्वोऽभ्यास

संज्ञः स्यात् ।

अनु०--यहाँ जो द्वित्व का विधान किया गया हैं (अर्थात् जो द्वित्व करके भुव-भूव अ बनाया गया है) उनमें से प्रथम भुव् की अभ्यास सज्ञा होती हैं ।

हलादि: शेषः । ७ । ४ । ६० । अभ्यासस्यादिर्हल् शिष्यते अन्ये हलो लुप्यन्ते । इति वलोपे ।

अनु०--अभ्यास का आदि हल् । बचा रहता है और अन्य हलों का लोप हो जाता है । इस सूत्र से प्रथम भुव् के व् कालोप होने पर ।

मू० ह्रस्वः ।७।४।५९ अभ्यासस्याचो ह्रस्वः स्यात् ।

अनु०--अभ्यास के अच् का ह्रस्व होता है ।

मू०--भवतेरः ।७।४।७३। भवतेरभ्यासस्योकारस्य अः स्याल्लिटि ।

अनु०--लिट् परे रहने पर भू धातु के अभ्यास के उकार का अ होता है ।

मू०--अभ्यासे चर्च । ४।५४ । अभ्यासे झलां चरः स्युः जशश्च । झलां जशः खयांचर इति विवेकः । बभूव, बभूवतुः, बभुवुः ।

अनु०--अभ्यास के झल् का चर होता है तथा जश् भी । झल् प्रत्याहार के वर्णों का जश् होता है तथा खय् प्रत्याहार के वर्णों का चर हो जाता है । यह (दोनों का) विवेक है ।

बभूव--भु धातु से 'परोक्षे लिट्' सूत्र द्वारा परोक्ष अनद्यतन भूव में लिट् लकार इ और ट् की इत्संज्ञा होने पर भू ल् की स्थिति होगी । प्रथम पुरुष एक वचन में तिप् सार्वधातुक प्रत्यय होकर 'भूति' यह स्थिति होगी । 'परस्मैपदानां णलतुसुस्-थलाथुस-णल्वमाः । सूत्र से ति का णलादेश होने पर ण् तथा ल् की इत्संज्ञा होने पर 'भूअ' बनेगा । भुवोवुग्लुङ लिटोः, से वुक् का आगम तथा अनुबन्धलोप होने पर भुव्+अ बनेगा । 'लिटिधातोरनभ्यासस्य'

से भूव् को द्वित्व होगा 'पूर्वोऽभ्यासः' से प्रथम भूव् की अभ्यास संज्ञा होगी। 'हलादिशेषः' से व् का लोप होकर भू-भूव् अ' होगा। 'ह्रस्वः' से प्रथम भू के ऊ का उ होगा। 'भवतेरः' से उ का अ होगा। भ भूव्अ' यह स्थिति होगा। 'अभ्यासे चर्च' से भ का ब होकर 'ब भूव् अ' बनेगा। व् जायेगा ऊ में तब बभूव बनेगा। बभूवतु;-में तस् का अतुस् आदेश होकर स का रुत्व विसर्ग होकर रूप सिद्ध होगा।

बभूवुः—झि का उस आदेश होने पर स् का रुत्व विसर्ग होकर बभुवुः बनेगा।

मू०—लिट् च ३।४।११५। लिङादेशस्तिङ् आर्धधातुकसंज्ञः।

अनु०—लिट् के स्थान में आदेश हुए तिङ् की आर्धधातुक संज्ञा होती है।

विमर्श—यह सूत्र 'तिङ् शित् सार्वधातुकम्' सूत्र का अनुवाद सूत्र है। लिट् लकार के मध्यम पुरुष एक बचन में सिप् के स्थान में जो थल् आदेश होगा वह भी व्यपदेशिवद्भाव से तिङ् ही माना जायेगा।

मू०—आर्धधातुकस्येड् वलादेः। ४।२।३५। वलादेरार्धधातुकस्येडागमः स्यात्। बभूविथ, बभूवथुः, बभूव बभूव, बभूविव, बभूविम।

अनु०—वलादि (जिसके आदि में वल् प्रत्याहार का वर्ण हो) आर्धधातुक को इट् का आगम होता है।

बभूविथ—भू धातु से 'परोक्षेलिट्' से लिट् लकार होकर इ ट् का इत्संज्ञ होकर भूल् होगा। मध्यम पुरुष एक वचन में सिप् प्रत्यय होकर सिप् के स्थान में 'परस्मैपदानां णलथुसुस्-थलथुस्-णल्वमाः' सूत्र से थल् आदेश होकर भू-थ बनेगा। 'लिट् च' से थल् को आर्धधातुक संज्ञा होकर, 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' से इडागम होकर 'भू इथ' होगा। लिट् संबन्धी अच् परे रहने

पर 'भुवो वुग् लुङ् लिटोः' से, वुगागम होकर भूव् को द्वित्व होकर 'भूव् भूव् इथ' होगा। 'पूर्वोऽभ्यासः' से अभ्यास संज्ञा तथा 'हलादि शेषः' से व् का लोप होकर 'भू भूव इथ' होगा। 'ह्रस्वः' से भू के ऊ का उ होकर 'भवतेरः' से उ का अ होगा। फिर 'अभ्यास से चर्च' से भका ब होकर बभूविथ बनेगा।

बभूवथुः- में थस् का अथुस् आदेश होगा। इसमे इडागम नहीं हागा।

बभूव-में थ के स्थान में अ तथा मिप् के स्थान में णल् आदेश होगा। बभूविव, बभूविम-में वस् मस् के स्थान में व और म आदेश होंगे। इडागम भी होगा।

मू०--अनद्यतने लुट् ३।३।१५ भविष्यत्यनद्यतने लुट्।

अनु०--अनद्यतन भविष्यत् अर्थ को बतलाने के लिए धातु से लुट् लकार आता है।

विमर्श--लुट् में उ तथा ट् की इत्संज्ञा तथा लोप होकर केवल ल् बचता है।

मू०-स्यतासी लृलुटोः ।३।१।३३। धातोः स्यतासीएतौ प्रत्ययौ स्तः लृलुटोः परतः। शवाद्यपवादः। लृ इति लृङ लृटोर्ग्रहणम्।

अनु०--लृट् तथा लुट् परे रहते धातु से स्य और तास् प्रत्यय होते हैं।

स्य तथा तासि विधि शप् आदि के अपवाद विधि है। सूत्रस्थ लृ के द्वारा लृट तथा लृङ् दोनों का ग्रहण होता है।

विमर्श--लृट् तथा लृङ् लकार में स्य प्रत्यय होता है तथा लुट् लकार में तास् प्रत्यय होता हैं।

मू०--आर्धधातुकं शेषः ३।४।११४। तिङ्शिद्भ्योऽन्यः धातो इति विहितः प्रत्यय एतत् संज्ञा स्यात्। इट।

अनु०—'धातोः' यह पञ्चम्यन्त उच्चारण करके जिन प्रत्ययों का विधान किया जाता है, उनमें तिङ् और शित् से भिन्न प्रत्ययों को आर्धधातुक संज्ञा होती है।

सू०—लुटः प्रथमस्य डारौरसः २।४।८५ लुटः प्रथमस्य डा रौ रस् एते क्रमात् स्युः। डित्वसामर्थ्यादभस्यापि टेर्लोपः। भविता।

अनु०—लुट् लकारके प्रथमपुरुषको क्रमसे डा, रौ और रस् आदेश होते हैं। (अर्थात् तिप् को डा, तस् को रौ, और झि को रस् आदेश होते हैं।) डित् होने के कारण भ संज्ञक नहीं होने पर भी टि का लोप हो गया।

विमर्श—डा में ड की इत्संज्ञा होकर लोप होता है। अतः इसे डित् कहते हैं। डा स्वादि कप् प्रत्ययान्त में नहीं आता, अतः इसकी भसंज्ञा नहीं होती है। भसंज्ञक नहीं होने से उसके टि का लोप भी नहीं प्राप्त है। फिर भी डित् होने के कारण इसके टिका लोप होगा।

भविता—भूधातु से 'अनद्यतने लुट्' सूत्र से लुट् लकार होने पर अनुबन्ध लोप होकर भू ल् यह स्थिति हुई। प्रथम पुरुष एक बचन में ल् के स्थान में तिप् प्रत्यय होकर भू ति हुआ। 'स्यातासिलृलुटोः' से लुट् परे रहने से तास् होकर भू तास् ति बना। 'आर्धधातुकं शेषः' से आर्धधातुकसंज्ञा होकर 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' से 'इडागम' होकर 'भू इ तास् ति' बना। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण होकर अवादेश होने पर 'भवितास् ति' बना। 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः' से ति के स्थान मे डा प्रत्यय हुआ। डकार की इत्संज्ञा हुई। डित्वसामर्थ्य के कारण टि 'आस्' का 'टेः' सूत्र से लोप होकर भविता बना।

सू०—तासस्त्योर्लोपः। ७।४।५०। तासेरस्तेश्च लोपः स्यात् सादौ प्रत्यये परे। भवितारौ, भवितारः, भवितासि, भवितास्थः, भवितास्थ।

भवितास्मि, भवितास्व, भवितास्म ।

अनु०—सकारादि प्रत्यय परे रहने पर तास् तथा अस् धातु का लोप होता है । इस सूत्र से सम्पूर्ण तास् का लोप होने पर । 'अलोन्त्य' परिभाषा से अन्त्य अल् स् का लोप होता है ।

सू०—रि च ७।४।५१। रादौ प्रत्यये तथा ।

अनु०—रकारादि प्रत्ययपरे रहने पर भी तास् और अस् के सकार का लोप होता है ।

विमर्श भवितारौ—भूधातु से लुट् लकार प्रथम पुरुष द्वि० व० में भू तस् होकर पूर्वोक्त प्रकार से तास् प्रत्यय । 'भूतास् तस्' होगा । तास् की आर्धधातुक संज्ञा । इडागम । आर्धधातुक होने से गुण अवादेश । भवितास् तस् होगा । तस् का रौ आदेश होकर भवितास् रौ होगा । 'रिच' से तास् के स् का लोप होकर भवितारौ रूप सिद्ध होगा । भवितासि—में पूर्वोक्त प्रकार से सभी कार्य होकर 'तासस्त्योर्लोपः' से तास् के सकार का लोप होगा ।

लृट शेषे च । ३।३।१३। भविष्यदर्थाद् धातोर्लृट् क्रियार्थायां क्रियायां सत्यामसत्याम् । स्यः । इट् । भविष्यति । भविष्यतः । भविष्यन्ति । भविष्यसि, भविष्थः । भविष्यथ । भविष्यामि । भविष्यावः । भविष्यामः ।

अनु०—भविष्यत् काल क्रिया का बोध होने पर धातु से लृट् लकार होता है, क्रियार्थक क्रिया विद्यमान रहे या न रहे । भविष्यति में स्य और इट् का आगम होता है ।

भविष्यति—भू धातु से लृट् लकार । प्रथम पुरुष एकवचन में तिप् होकर, 'स्यातासि लृलुटोः' से स्य प्रत्यय । आर्धधातुक संज्ञा, इडागम. आर्धधातुकनिमित्तक गुण, अवादेश । भविस्यति । प्रत्यय के अवयव सकार का षकार होकर भविष्यति होगा ।

भविष्यामि, भविष्यावः तथा भविष्यामः में 'अतो दीर्घो

यञि' से अदन्त अङ्ग स्थ गत य के अ का दीर्घ हो जायेगा ।

मू०--लोट् च । ३।३।१६२। विध्न्याद्यर्थेषु धातोर्लोट् ।

अनु०--विधि आदि अर्थों में घातु से लोट् लकार होता है।

विमर्श--वृत्ति के 'आदि' पद का अर्थ-निमन्त्रण, आमन्त्रण अधीष्ट, सम्प्रश्न और प्रार्थना है ।

विधि--नौकर आदि छोटे व्यक्तियों को आज्ञा देने को विधि कहते हैं । (भृत्यादेर्निकृष्टस्य प्रवर्तनम् विधिः ।) जैसे-तत्र गच्छ । यह प्रेरणात्मक विधि है ! प्रेर्य को उसका पालन नहीं करने पर दण्ड पाने का भय बना रहता है ।

निमन्त्रण--यह आग्रहात्मक होता है। इसमें आज्ञा का भाव प्रबल नहीं होता है । जैसे किसी को भोजन करने के लिए आग्रह पूर्वक बुलाना । जैसे-बन्धो ! अस्मिन् महोत्सवे भोजनार्थमवश्य-मागच्छ ।

आमन्त्रण--कामचारानुज्ञाको कहते हैं । इसमें निमन्त्रण की अपेक्षा कम बल होता है । प्रेर्य प्रेरणाके पालन करने अथवा नहीं करने में स्वतन्त्र सा रहता है ।

अधीष्ट--सत्कार पूर्वक प्रेरणात्मक व्यापार का नाम अधीष्ट है । यह प्रायः बड़ों के प्रति किया जाता है । जैसे अध्यापक को । भवान् मम पुत्रं पाठयतु ।

संप्रश्न--इस प्रेरणा में परामर्श लेने का भाव रहता है । संप्रधारणम् संप्रश्नः । किसी वस्तु के विषय में सहमति लेकर निश्चय करना जैसे-मित्र ! मैं व्याकरण पढ़ूँ या न्याय ? (मित्र ? अहं व्याकरणं पठानि न्यायं वा ?

प्रार्थना--इस प्रेरणा में कुछ मांगने का भाव रहता है । यह बड़ों से की जाती है ।

जैसे--गुरो ! मां पाठय ।

मू०--आशिषि लिङ् लोटौ ।३।३।१७३।

अनु०--आशीः के अर्थं में लिङ् लकार तथा लोट् लकार दोनों होते हैं ।

विमर्श--अप्राप्त इष्ट वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा को आशीः कहते हैं । आशीः के अर्थ को लङ तथा लोट् दोनों लकार अभिव्यक्त करते हैं ।

मू०--एरुः ३।४।८६। लोट इकारस्य उः । भवतु ।

अनु०--लोट् लकार के इकार को उ होता है ।

भवतु--लोट् लकार में भी तिप् प्रत्यय लाकर पहले भवति सिद्ध करके एरुः से भवति के इकार को उ करके भवतु बनेगा।

मू०--तुह्योस्तातङ् आशिष्यन्तरस्याम् ७।१।३५ आशिषि तुह्योस्तातङ् वा । परत्वात् सर्वादेशः । भवताद् ।

अनु०--(भवतु) के तु और (लोट् लकार के म० पु० ए० व० के सिप् के) हि को तातङ् आदेश होता है; विकल्प से । 'अनेकाल्शित्सर्वस्य' सूत्र की सहायता से सम्पूर्ण तु को तातङ् आदेश होगा, तातङ् के अङ् का लोप होकर तात् मात्र बचता है । और रूप बनता है भवतात् । विकल्पपक्ष में भवतु ही होगा ।

मू०--लोटो लङ्वत् ३।४।८५। लोटस्तामादयः सलोपश्च ।

अनु०--लङ् लकार के ही समान लोट् लकार में भी ताम् आदि आदेश और स का लोप होता है ।

मू०--तस्थस्थमिपां तांतंतामः ।३।४।१०१ ङितश्चतूर्णां तामादयः क्रमात् स्युः । भवताम् । भवन्तु ।

अनु०--ङित् (लङ्, लिङ्, लुङ् और लृङ्) चार लकारों में तस्, थस्, थ और मिप् के स्थान में क्रमशः ताम्, तम्, त और आम् आदेश होते हैं । उदाहरणार्थ-तस् के स्थान में ताम् आदेश होकर भवताम् बनता है । और लोट लकार में भवन्ति

बन जाने पर इ का उ होकर भवन्तु होता हैं।

भवताम्—भूधातु से लोट् लकार प्रथमपुरुष द्विवचन में तस् प्रत्यय होकर 'भू तस्' वनेगा। 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा होकर, कर्तरिशप्' से शप्। उसके श् प् की इत्संज्ञा तथा लोप होने पर 'भू अतस्' बनेगा। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः, से गुण होकर तथा अवादेश होकर भवतस् बनेगा। फिर लोटो लङ्वत्' इस अतिदेश सूत्र की सहायता से 'तस्थस्थमिपां तांतंतामः' सूत्र से तस् के स्थान में ताम् आदेश होकर भवताम् वनेगा।

मू०—सेह्यपिच्च—।३।४।८७ लोटः सेर्हिः सोऽपिच्च ।

अनु०—लोट् के सि (प्) को हि होता है, और वह अपित् होता है।

विमर्श—अपित् विधान का फल है कि वह 'सार्वधातुकमपित्' से ङिद्वत् हो जाता है। फिर ङित्व प्रयुक्त उसके गुणनिषेध आदि कार्य होते हैं।

मू०—अतो हेः ।६।४।१०५। अतः परस्य हेर्लुक्। भव; भवतात्, भवतम्। भवत।

अनु०—अदन्त अङ्ग के वाद में आने वाले हि का लुक होता है।

विभव—इस प्रयोग में लोट् लकार म०पु०ए०व० में सिप् होने पर शप्, गुण आदि कार्य होनें पर भवसि बनेगा। फिर लोट् लकार में, 'सेह्यपिच्च' सूत्र से सि का हि होगा और 'अतो हेः' सूत्र से हि का लुक् होने पर भव यह रूप बनेगा। पक्ष में हि का लुक् नहीं होने पर तुह्योस्तातङ्' सूत्र से 'हि' का तातङ् आदेश होकर भवतात् बनेगा।

भवतम्—मे थस् के स्थान में तम् आदेश होगा।

भवत—में थ के स्थान में त आदेश होगा। शेष शप् गुणादि कार्य पूर्ववत् होंगे।

मू०--मेर्निः ।३।४।८९। लोटो मेर्नि स्यात् ।

अनु०--लोट् लकार के मि (प्) को नि आदेश होता है ।

मू०--आडुत्तमस्य पिच्च ३।४।९२ लोडुत्तम याट् स्यात् पिच्च। भवानि । हिन्योरुत्वं न इत्योच्चारण सामर्थ्यात् ।

अनु०--लोट् लकार के उत्तम (पुरुष) को आट् का आगम होता है । जैसे भवानि में 'मेर्निः' से मि का नि होने पर 'आडुत्तमस्य पिच्च' से आडागम होने पर भवानि । हि और नि के इकार को 'एरुः' से उ नहीं होगा क्योंकि सूत्र में हि और नि का ही उच्चारण किया गया है । यदि इ का उ ही करना होता तो टु और नु ही सूत्र में उच्चारण किया गया ।

भवानि--भूधातु से लोट् लकार के स्थान में उत्तम पुरुष एक बचन में मिप् प्रत्यय होकर अनुबन्ध लोप होगा । 'भू मि' इस स्थिति में 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा होकर 'कर्तरिशप्' से शप् तथा अनुवन्ध लोप होने पर भू अमि बनेगा । सार्वधातुकार्ध धातुकयोः' से गुण होकर तथा अवादेश होकर भवमि बनेगा । मेर्निः से मिका नि तथा 'आडुत्तमस्यपिच्च' से आट् का आगम होकर भवानि बनेगा ।

मू०--ते प्राग्धातोः १।४।८० । ते गत्युपसर्गसञ्ज्ञकाः; धातोः प्रागेव प्रयोक्तव्याः ।

अनु०--वे (गति संज्ञक तथा उपसर्गसंज्ञक प्र आदि) धातु से पहले ही प्रयुक्त होते हैं । (जैसे-प्रभवति आदि में)

मू०--आनि लोट् ८।४।१६ उपसर्गस्थान्निमित्तात् परस्य लोडादेशस्य आनीत्यस्य परस्यणः स्यात् । प्रभवाणि ।

वा०--दुरः षत्वणत्वयोरुपसर्गत्वप्रतिषेधो वक्तव्यः । दुःस्थितिः दुर्भवानि ।

वा०-अन्तः शब्दस्याङ् विधिणत्वेषूपसर्गत्वं वाच्यम् ।

अन्तर्भवाणि ।

अनु--उपसर्ग में स्थित निमित्त (रकार षकार) से परे लोट् के स्थान में हुए आनि के नकार को णकार होता है। जैसे प्रभवाणि में। (यहां उपसर्ग स्थित निमित्त रकार प्र का र है उसके पश्चात् विद्यमान भवानि के न को ण होकर प्रभवाणि बनेगा।

वा० दुर इत्यादि—यदि षत्व एवं णत्व करना हो तो दुर को उपसर्ग नहीं मानना चाहिये। जैसे दुःस्थितिः दुर्भवानि में 'दुर षत्वणत्वयोः, से दुर् के उपसर्गत्व का निषेध होने के कारण दुःस्थिति में स्थितिः के सकार को 'उपसर्गात् सुनोतिसुवतिः इत्यादि सूत्र से षकार नहीं हुआ तथा दुर्भवानि में 'भवानि' के नकार को णकार नहीं हुआ।

वा०--अन्तःशब्दस्याङ्० इत्यादि-अङ् किविधि तथा णत्व के विषय में अन्तर् शब्द को उपसर्ग मान लेना चाहिये। जैसे अन्तर्भवाणि में अन्तर के उपसर्ग होने से ही 'आनिलोट्' से भवानि के नकार को णकार होकर अन्तर्भवाणि बना।

मू०--नित्यं ङितः ३।४।९९ सकारान्तस्य ङिदुत्तमस्य नित्यं लोपः। 'अलोन्त्यस्य' इति स लोपः। भवाव। भवाम।

अनु०--ङित् (लङ् लिङ, लुङ् और लृङ्) लकारों के सकारान्त उत्तम (पुरुषके वचनों वस्, मस्) का लोप होता है। 'अलोन्त्यस्य' सूत्र के सहकार से वस् एवं वस के अन्तिम अल् सकार का ही लोप होकर भवाव एवं भवाम होता है।

विमर्श--लट् लकार के भवावः तथा भवामः के ही समान लोट् लकार में भी भवावस् भवामस् बन जाने पर 'लोटो लङ्वत्' सूत्र के सहकार से 'नित्यं ङितः' से स् का लोप हो जाने पर भवाव एवं भवाम बनेंगे।

मू०--अनद्यतने लङ् ३।२।१११। अनद्यतन भूतार्थं वृत्तेर्धातोर्लङ् स्यात्।

अनु०--क्रिया के द्वारा अनद्यतन भूत को अभिव्यक्त करने के लिए धातु से लङ् लकार होता है।

टि०--अनद्यतन का अर्थ है जो आज का न हो। भूत और भविष्यत् दोनों अनद्यतन भूत का अर्थ हुआ कि जो क्रिया आज के भूतकाल की न हो। अतएव सामान्य भूतकाल के अर्थ में लुङ् लकार का प्रयोग होता है; लङ् का नहीं। 'अहम् तत्र परश्व अभवन्' यह प्रयोग ठीक है। किन्तु 'घण्टाद्वय प्रागहम् तत्राभवम्' यह प्रयोग अशुद्ध है। यहां पर 'आसम्' होना चाहिये।

मू०--लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः।६।४।७१। एष्वङ्गस्याट्।

अनु०--लुङ्, लङ्, लृङ् में से किसी के भी परे रहते (धातु के) अङ्ग को अट् का आगम होता है, और वह अनुदात्त होता है।

विमर्श--अट् के ट् की इत्संज्ञा होती है। अ केवल बचता है। टित् होने के कारण अडागम् धातु के आदि में होता है।

मू०--इतश्च ३।४।१०० ङितो लस्य परस्मैपदमिकारान्तं तदन्तस्य लोपः अभवत्, अभवताम्, अभवन्। अभवः, अभवतम्, अभवम्, अभवाव अभवाम।

अनु०--ङित् लकार (लुङ्, लङ् लृङ् लिङ्) सम्बन्धी इकारान्त परस्मैपद के अन्तिम वर्ण का लोप होता है।

अभवत्--भू धातु से 'अनद्यतने लङ्' सूत्र से अनद्यतन भूत के अर्थ में धातु से लङ् लकार तथा अनुबन्धलोप होकर भूल् बनेगा। फिर 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' सूत्र से अट् का आगम तथा अनुबन्ध लोप होकर अभूल् बनेगा। फिर प्रथम पुरुष एक बचन में तिप् प्रत्यय' 'तिङ् शित् सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा 'कर्तरि शप्' से शप्, श्, प् की इत्संज्ञा, सार्वधातुकार्धधातुकयोः से गुण, तथा अवादेश होकर 'अभवति' यह स्थिति होगी।

'इतश्च' सूत्र से ति के इका लोप होकर अभवत् यह रूप होगा।

अभवताम्--में 'तस्थस्थमिपां तांततामः' से तस् को तामा देश होकर अभवताम् बनेगा।

अभवन्—में बहुवचन में अट् और शेष कार्य लट् के समान करने पर अभवन्ति बनेगा। फिर 'इतश्च' सूत्र से अन्ति के इकार का लोप तथा त्का संयोगान्त लोप होने पर अभवन् बनेगा।

अभवाव—में केवल अट् आगम होगा शेष कार्य भवाव और भवाम के समान ही होंगे।

टिप्पणी--लुङ् और लृङ् लकार के भी उत्तम पुरुष द्वि० व० में अभवाव और अभवाम रूप होते हैं और उनको सिद्धि इसी प्रकार से होगी।

मू०--विधि मिमन्त्रणामन्त्रणाऽधीष्टसंप्रश्न प्रार्थनेषु लिङ् ।३।३।१३१। एष्वर्थेषु धातोर्लिङ् ।

अनु०--विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अधीष्ट, सम्प्रश्न और प्रार्थना के अर्थों में धातु से लिङ् लकार होता है!

मू०--यासुट् परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च। ३।४।१०३। लिङः परस्मैपदानां यासुड् आगमः उदात्तो ङिच्च।

अनु०--लिङ् लकार के परस्मैपद प्रत्ययों को यासुट् का आगम होता है, वह उदात्त और ङित् होता है।

मू०--लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य ७।२।७९। सार्वधातुकलिङोऽनन्त्यस्य सस्य लोपः। इति प्राप्ते।

अनु०—सार्वधातुक लिङ् के अनन्त्य (जो अन्त में न हो) सकार का लोप होता है। इस सूत्र से यास् के सकार का लोप प्राप्त होने पर।

मू०--अतोयेय! ।७।२।८०। अतः परस्यसार्वधातुकावयवस्य यास्

इत्यस्य इय् । गुणः ।

अनु०--अदन्त अङ्ग से परे सार्वधातुक के अवयव यास् को इय् आदेश होता है ।

मू०--लोपो व्योर्वलि ।६।१।६६। वलिवकारयकारयोर्लोपः । भवेत् भवेताम् ।

अनु०--वकार और यकारका लोप होता है, यदि उसके बाद कोई वल् प्रत्याहार का वर्ण हो तो ।

भवेत्--भू धातु से 'विधिनिमन्त्रण' इत्यादि से लिङ् लकार में, प्रथमपुरुष एकवचन में तिप् प्रत्यय होने पर, 'तिङ्शित् सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा होने पर, 'कर्तरिशप्' से शप् । अनुबन्ध लोप होकर 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण तथा 'एचोयवायावः' से अवादेश होकर भवति-बनने पर, 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तोङिच्च' सूत्र से 'यासुडागम' होकर 'भवयास् ति' बनेगा 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' से यास् के सकार का लोप प्राप्त होने पर 'अतोयेयः' सूत्र से यास् का इयादेश होकर 'आद्गुणः' से गुण होने पर भवेयति बनेगा । 'लोपो व्योर्वलि से य का लोप होने पर भवेति होगा । 'इतश्च' से ति के इ का लोप होने पर भवेत् बनेगा ।

भवेताम्--में 'तस्थस्थमिपां तांतंतामः से तस् को तामादेश होगा । शेष सभी कार्य भवेत् के तरह होगे ।

मू०--झेर्जुस् ।३।४।१८०। लिङो झेर्जुस् स्यात् । भवेयुः । भवेः, भवेतम्, भवेत । भवेयम्, भवेव, भवेम ।

अनु०--लिङ् लकार के झि को जुस् आदेश होता है ।

भवेयुः०--भू धातु से लिङ् लकार प्र० पु० ब० व० में झि आदेश होने पर 'तिङ् शित्सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा, 'कर्तरिशप्' से, शप्, अनुबन्ध लोप होकर भू अ झि बनेगा ।

'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण होने पर 'एचोयवायावः' से अवादेश होने पर 'भवझि' होगा। 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तोङिच्च' से यासुडागम होकर 'लिङःसलोपोऽनन्त्यस्य' से सकार का लोप प्राप्त होने पर 'अतोयेयः' से यास् के स्थान में इयादेश होकर तथा 'आद्गुणः' से गुण होकर भवेय् झि बनेगा। फिर 'झेर्जुस्' से झि को जुस् आदेश, जकार कोइत्संज्ञा तथा लोप होने पर भवेयुस् बनेगा। सकार का रुत्वविसर्ग होकर 'भवेयुः' बनेगा।

मू०—'लिङ् आशिषि' ३।४।११३। आशिषि लिङस्तिङ् आर्धधातुक संज्ञः स्यात्।

अनु०—आशिर्वाद के अर्थ में धातु से लिङ् लकार होता है, और उसके स्थान में आने वाला तिङ् आर्धधातुक होता है।

मू०—किद् आशिषि।३:४।१०४। आशिषि लिङो यासुट्, कित्। 'स्कोः संयोगाद्योः' इति स लोपः।

अनु०—आशीर्वाद के अर्थ में लिङ् से जो 'यासुडागम' होता है, वह कित् होता है। 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' सूत्र से पदान्त संयोग 'सत्' के आदि सकार का लोप होता है।

मू०—क्ङिति च।१।१।५। गित् कित् ङित् निमित्ते इग्लक्षणे गुण-वृद्धी न स्तः।' भूयात्, भूयास्ताम्, भूयासुः। भूयाः, भूयास्तम् भूयास्त। भूयासम्, भूयास्व, भूयास्म।

अनु०—गित् कित् तथा ङित् प्रत्ययों के परे रहते इग्लक्षण गुण और वृद्धि कार्य नहीं होते हैं।

भूयात्—भूधातु के आशीर्लिङ् के प्रथम पु० ए० वचन में तिप् प्रत्यय होने पर भूति बनेगा। 'लिङ् आशिषि' से तिप् की आर्धधातुक संज्ञा होने के कारण न तो शप् होगा और न तो सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से गुण ही। 'यासुट्परस्मैपदेषूदात्तो ङिच्च' से यासुडागम तथा अनुबन्ध लोप होकर 'भूयास्ति' बनेगा।

'इतश्च'से'ति' के इ कालोप होकर 'भूयास्त्' होगा। 'किदाशिषि' से यासुट् की कित् संज्ञा होगी 'स्कोः संयोगद्योरन्ते च' सूत्र से सँयोग 'सत्' के आदि स् का लोप हुआ। यहां पर 'सार्वधातुकार्धधातु-कयोः' से भू के इगन्त अङ्ग का गुण प्राप्त था किन्तु 'क्ङिति च' सूत्र से गुणा का निषेध हो जाने से 'भूयात्' यह रूप सिद्ध हुआ।

भूयास्ताम्—भूधातु से लिङ्लकार होने पर 'लिङाशिषि' से आर्धधातुक संज्ञा हुई। प्रथम पुरुष एकवचन में तस् प्रत्यय होने पर, 'तस्थस्थमिपां तांतंतामः' सूत्र से तस् के स्थान मे ताम् आदेश हुआ। 'किदाशिषि' से यासुट् आगम होने पर भूयास्ताम् बना।

भवेयुः—भूधातु से आशीर्लिङ् लकार होने पर 'लिङा-शिषि' से आर्धधातुकसंज्ञा होने पर-ल् के स्थान में प्र० पु० बहुबचन की विवक्षा मे झि प्रत्यय हुआ। 'झेर्जुस्' सूत्र से 'झि' का जुस् आदेश और अनुबन्ध लोप हुआ। 'किदाशिष' सूत्र से यासुडागम होने पर 'भूयासुस्' बना। स् का रुत्व विसर्ग होने पर भूयासुः बना।

भूयाः—भूधातु से आशीर्लिङ् लकार होने पर 'लिङाशिषि' आर्धधातुक संज्ञा होने पर म० पु० एकवचन की विवक्षा में सिप् प्रत्यय हुआ आर्धधातुक संज्ञा, यासुडागम, इतश्च से इकार का लाप तथा 'स्कोस्संयोगाद्योरन्ते च' से स् का लोप होकर भूयाः रूप सिद्ध होता है।

भूयास्तम्—भूधातु आशिर्लिङ् आर्धधातुक संज्ञा, यासुडागम मध्यम पुरुष द्वि० वचन थस् प्रत्यय तथा थस् को तम् आदेश होकर इस रूप की सिद्धि होती है।

भूयास्त—में केवल थ को त आदेश अधिक होता है शेष कार्य भूयास्तम् के समान होते हैं।

भूयासम्—में मिप् को अम् आदेश होता है। भूयास्व एवं भूयास्म में वस् मस् के स् का 'नित्यं ङितः' से लोप होगा।

मू०४३६—लुङ् ३।२।११० भूतार्थे धातोर्लुङ् स्यात्।

अनु०—(सामान्य) भूतकाल की क्रिया के अर्थ को प्रकट करने के लिए धातु से लुङ् लकार होता है।

मू०—४३७ माङि लुङ् ३।३।१७५ सर्वलकारापवादः।

अनु०—'माङ्' उपपद रहने पर धातु से लुङ् लकार होता है। यह सभी लकारों का अपवाद है। अर्थात् 'माङ्' उपपद रहने पर धातु से सभी लकारों के अर्थ में लुङ् लकार ही होता है।

मू० ४३८—स्मोत्तरे लङ् च ३।३।१७६ स्मोत्तरे माङि लङ् स्यात् चात् लुङ्।

अनु०—यदि 'माङ्' के उपपद के पश्चात् 'स्म' आये तो धातु से लङ् लकार होता है और लुङ् भी।

मू०४३९—च्लि लुङि ३।१।४३ शबाद्यपवादः।

अनु०—लुङ् लकार परे रहते धातु से च्लि (विकरण) होता है। यह (च्लि) विधि शप् आदि (श्यन् श् आदि) विकरण विधि का बाधक है।

मू०४४०—च्लेः सिच् ३।१।४४ इचावितौ। ४४१—गतिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु। एभ्यः सिचो लुक् स्यात्। गापाविह इणादेश पिवती गृह्येते। ४४२-भूसुवोस्तिङि ७।३।८८ भू सू एतयोस्सार्वधातुके तिङि परे गुणो न। अभूत्, अभूताम्, अभूवन्। अभूः, अभूतम्, अभूत। अभूवम्, अभूव, अभूम।

अनु०४४०—च्लि को सिच् आदेश होता है। सिच् के इ तथा च् की इत् संज्ञा होती है। केवल स् शेष रहता है। ४४१— गा, स्था, घुसंज्ञक, पा और भूधातुओं से परे सिच् का लुक् होता है।

२।४।७७ सूत्र में गा से इण् धातु के स्थान में आदेश होने वाले 'गा' का; तथा 'पा' से 'पा' धातु का ग्रहण होता है जिसका 'पिब्' आदेश होता है। ४४२–भू तथा सु धातुओं को गुण नहीं होता है, सार्वधातुक तिङ् परे रहते है।

विमर्श–अभूत्–भूधातु से सामान्य भूत के अर्थ में 'लुङ्' सूत्रसे लुङ् लकार। 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' से अडागम तथा तिप् प्रत्यय होने पर, 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा, होने पर 'कर्तरि शप्' से शप् की प्राप्ति हुई; किन्तु इसको बाधकर सूत्र लगा 'च्लिलुङि' इससे च्लि विकरण हुआ! 'च्लेःसिच्' से च्लिका सिच् हुआ। सिच् के इ और च् की इत्संज्ञा होने पर अभूस्ति बना। 'गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु' से सिच् के स् का लुक् होकर अभूति बना। सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से भू के इगन्त अंग ऊ के गुण की प्राप्ति होने पर उसको बाधकर सूत्र 'भूसुवो-स्तिङि' सूत्र ने गुण का निषेध कर दिया। 'इतश्च' से इ का लोप होने पर अभूत् रूप सिद्ध हुआ।

अभूताम्—भूधातु लुङ् लकार, अडागम, तस् प्रत्यय, तस् को तामादेश, च्लि, च्लि का सिच् सिच् का लुक् होकर भू के इगन्त अंग के गुण की प्राप्ति तथा उसके गुण का निषेध होकर अभूताम् भी बना।

अभूवन्–में भी भू धातु लुङ् लकार अडागम तथा झि प्रत्यय झि को अन्ति आदेश, च्लि; च्लि का सिच्, सिच् का लुक्, इतश्च से इ का लोप होकर भू के इगन्त अंग ऊ के गुण की प्राप्ति तथा उसका निषेध होकर 'संयोगान्तस्य लोपः' से' त् का लोप होकर अभूवन् बना।

अभूः में सिप् के इ का 'इतश्च' से लोप और स् का विसर्ग होगा। अभूतम्–में थस् को तम् आदेश होगा।

अभूत—में थ को त आदेश होगा। शेष कार्य अभूत के

समान होंगे ।

अभूवम्--भू धातु लुङ् लकार सार्वधातुकसंज्ञा, अडागम, मिप् प्रत्यय, मिप् का अमादेश, च्लि, च्लि का सिचादेश, सिच् का लुक्, तथा 'भुवोवुग्लुङ्लिटोः' में वुगागम होने पर अभूवम् बना ।

अभूव और अभूम--में वस् और मस् के स का लोप 'नित्यं ङितः' से होगा । शेष कार्य अभूत् के समान ।

मू०४४३--न माङ्योगे ६।४।७४ अडाटौ न स्तः । माभवान् भूत् । मास्म भवत् । मास्मभूत् ।

अनु०--माङ् के योग में लुङ् एवं लङ् लकार में अट् एवं आट् के आगम नहीं होते हैं । आप न रहें । आप न होए, यह न हो । माङ् का योग होने के कारण ही यहां पर भवत् मे तथा भूत् में अडागम 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' से नहीं हुआ है ।

मू०४४४--लिङ्निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ ३।३।१३ हेतु हेतुमद्भावादि लिङ्निमित्तम्, तत्र भविष्यत्यर्थे लृङ् स्यात । क्रियाया अनिष्पत्तौ गम्यमानायाम् । अभविष्यत्, अभविष्यताम् अभविष्यन् । अभविष्यः अभविष्यतम् अभविष्यत । अभविष्यम्, अभविष्याव, अभविष्याम । सुवृष्टिश्चेदभविष्यत्तदासुभिक्षमभविष्यत् । इत्यादि ज्ञेयम् ।

अनु --लिङ् के निमित्त (कारण) हेतहेतुमद्भाव आदि है । इन अर्थों में यदि क्रिया को निष्पत्ति भविष्यत् काल के अर्थ में प्रकट करनी हो ता धातु से लृङ् लकार होता है । इसका उदाहरण अच्छी वृष्टि होगी तो सुभिक्ष होगा इत्यादि जानना चाहिये ।

विमर्श--'श्रमेण पठेत् चेदुत्तीर्णो भूयात्' अर्थात् परिश्रम से पढे तो उत्तीर्ण हो जाय । इस वाक्य में उत्तीर्ण होने की क्रिया का कारण है परिश्रम से पढ़ना । अतएव परिश्रम से पढ़ना हेतु है और उत्तोर्ण होना हेतुमान् । दोनों क्रियाओं का संबन्ध हेतुहेतुमद्भाव हुआ । क्रिया के इस हेतुहेतुमदभाव को भविष्यत्

कालिक सूचित करने के लिए लृङ् लकार का प्रयोग होता है। जैसे यदि अच्छी वृष्टि होगी तो सुभिक्ष होगा।

'सुवृष्टिश्चेदभविष्यत्तदासुभिक्षमभविष्यत्।'

अभविष्यत्--भू धातु से लृङ् लकार होने पर, 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' सूत्र से अडागम होकर, तिप् प्रत्यय होगा तो 'अभूति' बनेगा। 'स्यतासी लृलुटोः' से स्य। 'आर्धधातुकं शेष' से आर्धधातुकसंज्ञा होकर 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' से इडागम होकर 'अभूइस्यति' बनेगा। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से इगन्त अंग को गुण होकर 'अभविष्यति' बनेगा। 'इतश्च' से इ का लोप होकर अभविस्यत् बनेगा। 'आदेश प्रत्ययोः' से षत्व होकर रूप बनेगा अभविष्यत्।

अभविष्यताम्--मे तस् का ताम् आदेश होगा। अभविष्यन् में झि को अन्ति आदेश होकर इ का 'इतश्च से लोप तथा त् का संयोगान्तलोप होकर रूप सिद्ध होगा।

अभविष्यः—में सिप् के इ का इतश्च से लोप तथा स् का रुत्व विसर्ग होगा। अभविष्यतम् में 'तस्' को 'तम्' आदेश होगा। अभविष्यत-'थ' को त आदेश होगा। शेष कार्य अभविष्यत् के समान होंगे।

अभविष्यम्--भू धातु लृङ् लकार, अडागम, उत्तम पुरुष एकवचन मिप् प्रत्यय। स्य, इट्, गुण, अवादेश, इकार लोप तथा षत्व होकर अभविष्यम् होगा। अभविष्याव तथा अभविष्याम में वस् एवं मस् के स् का 'नित्यंङितः' से लोप होगा।

आत्मनेपदी एधधातुः

मू०—एध वृद्धौ, ५११टित आत्मनेपदानां टेरे ६।४।७९ टितो लस्यात्मनेपदानां टेरेत्वम्। एधते।

अनु०—एध् धातुवृद्धि अर्थ में आता है। टित् (लट्, लिट्, लुट्,

लट् तथा लोट्) लकारों के स्थान में आदेश हुए आत्मनेपदी प्रत्ययों की टि के स्थान में ए आदेश होता है।

एधते—एध धातु से कर्ता अर्थ में लट् लकार अनुबन्धलोप होने पर एध्ल् यह स्थिति हुई। एध के अकार अनुदात्त एवं इत्संज्ञक होने के कारण 'तङानावात्मनेपदम्' से तङ् प्रत्यय ल् के स्थान में होंगे। अतएव 'तिप्तसुझि०' इत्यादि सूत्र से प्रथम पुरुष एकवचन में त प्रत्यय होगा। एध् त बनेगा। 'तिङ्शित् सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा, 'कर्तरि शप्' से शप् होकर 'एध् अत बनेगा। 'टित आत्मने पदानां टेरे' से त के टि को एत्वादेश होकर एधते रूप सिद्ध होगा।

मू०५११—आतो ङितः। ७।२।८१ अतः परस्य ङितामाकारस्य 'इय्' स्यात्। एधेते। एधन्ते।

अनु०—अकार से परे ङित् प्रत्ययों के आकार को 'इय्' आदेश होता है।

एधेते—एध् धातु से लट् लकार तथा प्रथम पुरुष द्विव०में आताम् प्रत्यय होने पर। 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा 'कर्तरि शप्' से शप् होकर 'एध् अ आताम्' यह स्थिति होगी। आतो ङितः' से आताम् के आ को इयादेश होकर, एध् इय् ताम् बनेगा। आद्गुणाः। मे गुण होकर एधेय् ताम्' बनेगा। 'लोपो व्योर्वलि' से य का लोप होकर 'एधेताम्' बनेगा। 'टित आत्मने पदानां टेरे' से टि आम् को एत्वा देश होकर 'एधेते' रूप बनेगा।

एधन्त—में 'झोन्तः' से झ को अन्तादेश होकर तथा 'टित आत्मने पदानां टेरे' से टि को एत्व होकर एधन्ते रूप बनेगा।

मू०—थासः से।३।४।८०। टितोलस्य थासः से स्यात्। एधसे। एधेथे। एधध्वे। अतोगुणे। एधे, एधावहे, एधामहे।

अनु०—टित् लकारों के थास् के स्थान में से आदेश होता

है। एधसे, एधेथे, एधध्वे, एधे एधावहे एधामहे ।

एधसे--एध् धातु से लट् लकार में थास् प्रत्यय होकर सार्वधातुक संज्ञा, शप होकर एध अ थास् बनेगा। 'थासः से' से थास् को से आदेश होकर 'एधसे' रूप बनेगा ।

एधेथे--एध् धातु से लट् लकार म० पु० द्वि० में आथाम्'प्रत्यय होकर सार्वधातुक संज्ञा, तथा शप् होने पर एध् आथाम् बनेगा। 'आतोङितः' से आ को इय् आदेश होने पर गुण होकर एधेय् थाम् बनेगा। 'लोपोव्योर्वलि' से य का लोप तथा 'टित आत्मनेपदानां टेरे' से थाम् के आम् टित् का एत्व होने पर एधेथे रूप बनेगा ।

एधध्वे--में 'ध्वम्' के टि आम् को ए होकर एधध्वे रूप बनेगा। .

एधे--एध् धातु से उत्तम पुरुष की विवक्षा में इट् प्रत्यय होने पर तिङ् शित् सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा तथा 'कर्तरि शप्' से शप् होने पर श् प् की इत्संज्ञा होकर 'एध् अ इ' बनेगा। टित आत्मने पदानां टेरे' से इ का होने पर 'एध् अ ए' बनेगा 'अतो गुणे' पर रूप होने पर एधे बनेगा।

एधावहे, एधामहे में भी 'टित आत्मने पदानां टेरे से वहि और महि प्रत्यय के इ को ए होकर एधावहे, और एधामहे रूप बनेंगे।

मू० ५१४--इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः ३।१।३६ इजादिर्यो धातुर्गुरुमान् ऋच्छत्यन्यः, तत आम् स्याल्लिट ।

अनु०--ऋच्छ् धातु का छोड़कर गुरुवर्ण वाले इजादि धातु से आम् होता है; 'लिट्' परे रहते हैं।

विमर्श--एध् धातु गुरुवर्णवाला इजादि धातु है। क्योकि 'एध्' का आदिवर्ण 'ए' है और वह इच् के अन्तर्गत आता है। तथा गुरु वर्ण भी है।

मू० ५१५--आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य १।३।६३। आम्प्रत्ययो यस्माद्विति। अतद्गुसंविज्ञाना बहुव्रीहिः। आम्प्रकृत्या तुल्यमनुप्रयुज्यमानात् कृञोऽप्यात्मने पदम्।

अनु०--आम् प्रत्यय जिससे हुआ हो उसे आम्प्रत्यय कहेंगे। आम्प्रत्ययवत् पद में अतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहि समास है। आम् की प्रकृति (धातु) एध् स होने योग्य जो आत्मनेपद उसके पश्चात् प्रयुक्त होने वाले 'कृञ्' का भी आत्मने पद होता है।

विमर्श--'आम्प्रत्ययवत्' शब्द में वत् तुल्यार्थक है। आम्प्रत्ययो यस्मात्' इस विग्रह के अनुसार आम्प्रत्यय में अतद्गुण संविज्ञान बहुव्रीहि समास है। बहुव्रीहिसमास दो प्रकार का होता है-तद्गुणसंविज्ञान और अतद्गुणसंविज्ञान। 'तस्य प्रधानीभूतस्यान्यार्थस्य गुणाः विशेषणानि, संविज्ञायन्ते क्रियान्वितया ज्ञायन्ते यत्र सः तद्गुणसंविज्ञानः' अर्थात् बहुव्रीहि समास में अन्य पदार्थ ही प्रधान होता है। उस प्रधान अर्थ की क्रिया में जब विशेषण पदों के अर्थ का अन्वय (सम्बन्ध) हो जाय तो तद्गुणसंविधान बहुव्रीहि होता है। जैसे लम्बोदरको लाओ, यह आदेश पाने पर यदि कोई व्यक्ति उस पुरुष को लाता है तो उस पुरुष के साथ साथ पुरुष का लम्बा उदर भी आ जाता है। पीताम्बरः, कमलनयनः, इत्यादि तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि के उदाहरण हैं। जब प्रधानीभूत अन्यार्थ की क्रिया के साथ उसके विशेषणी भूत पदों के अर्थों का अन्वय नहीं होता है उस बहुव्रीहि को अतद्गुण संविज्ञान बहुव्रीहि कहते हैं। आयोध्यिकमानय-यह सुनकर अयोध्या वासी पुरुष को लाने पर उसके साथ अयोध्या को नहीं लाया जा सकता है। आम्प्रत्यय में अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि है। क्योंकि यहां अन्यपदार्थ एध् धातु है और उसके आत्मनेपद होने की क्रिया में आम् का सम्बन्ध नहीं हो सकता है। आष्

प्रत्ययान्त एध् से कृ, भू और अस् का अनुप्रयोग होता है।

म र्षि पाणिनि ने इस सूत्र का प्रणयन इसलिए किया है कि क्रिया के मुख्यफल के कर्तृव्यतिरिक्तगामी होने पर भी एधाञ्चक्रे इत्यादि में आत्मने पद ही हो, परस्मैपद नहीं।

मू०——लिटस्तझयोरेशिरेच् ३।४।८१ लिडादेशयोस्तझयोः एश् इरेच् एतौ स्तः। एधाञ्चक्रे, एधाञ्चक्राते। एधाञ्चक्रिरे। एधाञ्चकृषे, एधाञ्चक्राथे।

अनु०——लिट् के स्थान में आदिष्ट, त, और झ को क्रमशः एश् और इरेच् आदेश होते हैं।

विमर्श—एधाञ्चक्रे—एध् धातु से लिट् लकार इ ट् की इत्संज्ञा होकर एध् ल् बना। 'इजादेश्चगुरुमतोनृच्छः' सूत्र से आम् होने पर एध् आम् ल् बना। 'कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि' ।३।१।४०। से एधाम् से कृ का अनुप्रयोग होने पर 'एधाम् कृ ल्' बना। यहां पर परगामीक्रियाफल के अर्थ में कृञ् से परस्मैपद की प्राप्ति हुई किन्तु 'आम्प्रत्ययवत् कृञोऽनुप्रयोगस्य' इस सूत्र से आत्मने पद संज्ञा हो गयी और प्रथमंपुरुष एकवचन की विवक्षा में त प्रत्यय होकर 'एधाम्कृत' बना। 'लिटस्तझयोरेशिरेच्' सूत्र से त का एश् होकर अनुबन्ध लोप होने पर 'एधाम्कृ ए' बना। 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' सूत्र से कृ को द्वित्व हो गया 'पूर्वोऽभ्यासः' से पहले कृ की अभ्याससंज्ञा होने पर 'उरत्' से ऋ को अ होकर 'एधाम्ककृ ए' बना। 'कुहोश्चुः' सूत्र से क का च होकर 'एधाम्च कृ ए' बना। 'इकोयणचि' से ऋ का र् यण् होने पर 'एधाञ्चक्रे' रूप बना।

एधाञ्चक्राते—में भी उपर्युक्त प्रकार से एध् धातु से, लिट् लकार में आम्, कृ, होने पर आत्मने पदी आताम् प्रत्यय होगा। फिर कृ का द्वित्व होकर, पहले कृ की अभ्यास संज्ञा तथा कृ के ऋ का 'उरत्' से अ होने पर क् का च् होने पर, यण् होने

पर पररूप होकर एधाञ्चक्राताम् बना, टित् आम् का ए होकर एधाञ्चक्राते रूप बना।

एधाञ्चक्रिरे—सभी कार्य एधाञ्चक्रे के ही समान होंगे केवल 'लिटस्तझयोरेशिरेच्' से झ को इरेच् आदेश अधिक होगा।

एधाञ्चकृषे—मे भी एध्-धातु से लिट् लकार प्रथम पुरुष ए० व० में थास् होने पर 'एध् आम्, कृ-थास्'-द्वित्व, अभ्यास; झ का अ, क का च होकर एधाञ्चकृथास हो जायेगा। थास् का 'थासः से' से से होकर आदेश प्रत्यययोः' से स् का ष् होने पर एधाञ्चकृषे बनता है।

एधाञ्चक्राथे में आथाम् के आम् का ए होकर एधाञ्चक्राथे रूप सिद्ध होगा।

सू० ५१७—इणः षीध्वं लुङ्लिटां धोऽङ्गात् ८।३।७८। इणन्ताङ्गात्परेषां षीध्वंलुङ्लिटां धस्य ढः स्यात्। एधाञ्चकृढ्वे, एधाञ्चक्रे, एधाञ्चकृवहे, एधाञ्चकृमहे।

अनु०—इणन्त अङ्ग से परे षीध्वं, लुङ्, और लिट् के धकार को ढकार होता है।

विमर्श—एधाञ्चकृढ्वे-में एधाञ्चकृ ध्वम् बना लेने पर 'इणः षीध्वंलुङ्लिटां धोऽङ्गात्' ८।३।७८ सूत्र से ध्वम् के ध को ढ् होने पर तथा 'ढ्वम्' के 'अम्' को 'टित आत्मने पदानां टेरे' से 'ए' होने पर 'एधाञ्चकृढ्वे रूप बनेगा।

एधाञ्चक्रे—पहले के ही समान बनेगा। इसमें केवल इट् के इ को ए होगा।

एधाञ्चकृवहे, और 'एधाञ्चकृमहे-में एधाञ्चकृ' बना लेने पर वहि और महि के टित् 'इ' को 'ए' होकर रूप की सिद्धि होगी।

एधाम्बभूव—एध् धातु से लिट् लकार में 'इजादेश्च गुरुमतोऽनृच्छः' से आम् होने पर, 'कृञ्चानुप्रयुज्यते लिटि' से 'भू' का अनुप्रयोग होने पर एधाम्भू बनेगा। फिर प्रथम पुरुष एक

वचन की विवक्षा में तिप् को 'परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः' से णल् आदेश होने पर ण् ल् की इत्संज्ञा होने पर एधाम्भू अ बनेगा। 'भुवावुग्लुङ्लिटोः' से वुगागम, 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' भूव को द्वित्व, 'पूर्वोऽभ्यासः' से प्रथम भूव् की अभ्यास संज्ञा, 'हलादिशेषः' से अभ्यास भूव् के व्कालोप, तथा 'ह्रस्वः' से भू को ह्रस्व तथा 'भवतेरः' से उ को अ होने पर एधाम्भभूव' बनेगा। 'अभ्यासेचर् च' से भ को ब होने पर एधाम्बभुव रूप बनेगा।

एधिता, एधितारौ, एधितारः इन तीनों रूपों की भविता, भवितारौ भवितारः के समान सिद्धि होगी। एधितासे—में 'थासः से, से 'थास्' का से होकर तथा 'तासस्त्योर्लोपः' से स् का लोप होकर रूप की सिद्धि होगी।

मू०—धिच ।८।२।२५। धादौ प्रत्यये परे सस्यलोपः। एधिताध्वे।

अनु०—धकारादि प्रत्यय परे रहने पर स् कालोप होता है।

विमर्श—एधिताध्वे—एध्धातु से लुट् लकार मध्यम पुरुष बहुवचन में 'ध्वम्' प्रत्यय होने पर, एध् ध्वम् बना। 'स्यतासी-लृलुटोः' सूत्र से तास् होने पर 'आर्धधातुकं शेषः' से आर्धधातुक संज्ञा होने पर 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' से इडागम होने पर 'एधि-तास्ध्वम्' बना। 'टेः' से तास् के 'स्' का लोप तथा 'टित् आत्मने पदानां टेरे' से आम् का ए होने पर एधिताध्वे रूप बना।

मू० ५१९—ह एति ७।४।५२।४तासस्त्योः सस्य हः स्यादेति परे। एधिताहे, एधितास्वहे, एधितास्महे। एधिष्यते, एधिष्येते, एधिष्यन्ते। एधिष्यसे, एधिष्येथे, एधिष्यध्वे। एधिष्ये, एधिष्यावहे, एधिष्यामहे।

अनु०—तास् तथा अस् धातु के स् का ह् होता है। ए परे रहते।

विमर्श--एधिताहे-एधू धातु से लुट् लकार उत्तम पुरुष एक वचन में इट् प्रत्यय आने पर 'स्यतासिल्लुटोः' से तास् होकर 'अर्धधातुक शेषः' से आर्धधातुकसंज्ञा, 'आर्धधातुकस्येड्वलादे' से इडागम होकर 'एधितास् इ' बनेगा। टित आत्मने पदानां टेरे' से इ का ए होने पर 'ह एति' से स् का ह होने पर एधिताहे बना।

सू०५२०--आमेतः ३।४।९० लोट एकारस्यामं स्यात्। एधताम एधेताम्, एधन्ताम्।

अनु०--लोट् लकार के ए का आम् होता है।

एधताम्--एध् धातु से लोट् लकार आत्मने पद में त प्रत्यय होने पर' 'तिङ्शित् सार्वधातुकम्, से सार्वधातुकसंज्ञा होने पर कर्तरि शप्' से शप् होगा श् प् की इत्संज्ञा होकर एध् अ त बना। 'टित आत्मने पदानां टेरे' से त के अ का ए आदेश होने पर एधते बना। आमेतः, सूत्र से ते के एका आम् होकर एधताम् बना।

एधेताम्--और एधन्ताम्। में भी लोट् लकार द्विबचन और बहुबचन में आताम् और झ प्रत्यय करके एधेते और एधन्ते बना लेने पर 'आमेत;' सूत्र से ए का आम् आदेश करके एधेताम् और एधन्ताम् रूप बनेंगे।

सू०५२१--स वाभ्यां वामौ ३।४।९१ सवाभ्यं परस्य लोडेतः क्रमाद् वाऽमौ स्तः। एधस्व एधेथाम्, एधध्वम्

अनु०--स् और व से परे लोट् के ए को क्रमश व और अम् होता है।

विमर्श--एधस्व-एध्धातु लोट् लकार में भी मध्यमपुरुष एक बचन में आत्मने पदी थास् प्रत्यय करके 'एध् से' बना लेने पर सवाभ्यां वामौ, से एका व हो जाने पर एधस्व बनेगा।

एधे ाम्--एधेथे बनाकर 'आमेतः' से ए का आम् हो जाने पर 'एधेथाम्' बनेगा।

एधेध्वम्--एधध्वे बनाकर 'सवाभ्यां वामौ' से ए का अम् होने पर एधध्वम् बनेगा।

सू०--'एत ऐ' ३।४।९३। लोडुत्तमस्य एत ऐ स्यात्। एधै, एधाव है एधमहै। आटश्च-ऐधत 'ऐधताम् ऐधन्त। ऐधेथाः' ऐधेथाम् ऐधेध्वम्। ऐधे, ऐधावहि, ऐधामहि।

अनु०--लोट् के उत्तम पुरुष के ए को ऐ होता है।

विमर्श--एधे-लट् लकार उत्तम पुरुष के समानएधे बनाकर 'एत ऐ' सूत्र से ए का ऐ करके एधै बना : इसी तरह एधावहे और एधामहे बनाकर 'एत ऐ' सूत्र से 'ए' का ऐ करने पर एधावहै और एधामहै, बनेंगे।

ऐधत--एध् धातु से लङ् लकार प्रथम पुरुष एक वचन में त प्रत्यय होने, पर 'तिङ् शित् सार्वधातुकम्' से सार्वधातुकसंज्ञा होकर 'कर्तरि शप्' से शप्, शप् की इत्संज्ञा होने पर एधत होगा। 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' सूत्र से अडागम होकर, आटश्च, से वृद्धि होकर ऐधत रूप की सिद्धि होगी।

सू०५२३--लिङः सीयुट् ३।४।१०२ लिङात्मनेपदस्य सीयुडागमः स्यात्। सलोपः। एधेत, एधेयाताम्।

अनु०--लिङ् के स्थान में आये हुये आत्मनेपद के प्रत्ययों का 'सीयुट' का आगम होता है। सू का लोप होकर एधेत बनता है।

विमर्श एधेत--एधधातु से विधिलिङ् में प्रथम पुरुष एक वचन में 'त' प्रत्यय होकर, 'तिङ् शित् सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा होकर, 'कर्तरि शप्' से शप् होकर श् प् की इत्संज्ञा होने पर 'एध् अ त' बना। 'लिङः सीयुट्' से सीयुट् होकर 'एध् अ

सीयुत' बना। सार्वधातुक होने के कारण 'लिङः सलोपोऽनन्त्यस्य' से सीय् के स् का लोप, तथा 'लोपोव्योर्वलि' से य् का लोप होकर 'एध इत' बना 'आद्गुणः' से गुण होकर एधेत बना।

एधेयाताम्--में आताम् प्रत्यय होगा। शेष सभी कार्य एधेत के ही समान होंगे। केवल य का लोप, 'लोपो व्योर्वलि' से नहीं होगा।

मू०५२४--झस्य रन् ३।४।१०५ लिङो झस्य रन् स्यात् एधेरन्। एधेयाथाम् एधेध्वम्।

एधेरन्--एध्धातु से विधिलिङ् लकार में प्रथम पुरुष बहुवचन में आत्मनेपद का झ प्रत्यय आयेगा। 'तिङ्शित् सार्वधातुकम्'से सार्वधातुकसंज्ञा, 'कर्तरि शप्' से शप् होकर, शप् की इत्संज्ञा होने पर; 'लिङःसीयुट्' से सीयुट् आगम होने पर 'एध् अ सीय झ' बन 'लिङःसलोपोऽनन्त्यस्य' से स् का लोप तथा 'लोपो व्योर्वलि' से य का लोप होने पर गुण होकर, एधेझ बना। 'झस्य रन्' से झ का रन् होने पर एधेरन् बना।

मू०५२५--इटोऽत् ३।४।१०६ लिङादेशस्य इटोऽत स्यात्। एधेय, एधेवहि, एधेमहि।

अनु०-लिङ् के स्थान में आदेश हुए इट् प्रत्यय को अ होता है।

एधेय--एध्धातु लिङ्लकार उत्तम पुरुष एकवचन में सभी काम एधेत के समान होंगे केवल य् का लोप नहीं होगा तथा अन्त में इट् का 'इटोऽत्' सूत्र से 'अ' होकर एधेय रूप की सिद्धि होगी।

मू०५२६--सुट् तिथोः ३।४।१०७ लिङस्तथोस्सुट्। यलोपः, आर्धधातुकत्वात् सलोपो न। एधिषीष्ट, एधिषीयास्ताम् एधिषीरन्। एधिषीष्ठाः, एधिषीयास्थाम्, एधिषीध्वम्। एधिषीय, एधिषीवहि, एधिषीमहि।

ऐधिष्ट । ऐधिषाताम्-

अनु०--लिङ् के त् और थ् का सुट् का आगम होता है।

एधिषीष्ट--में य् का लोप होता है किन्तु आर्धधातुक होने के कारण स् का लोप नहीं होता है।

विमर्श--एधिषीष्ट- एध् धातु से आशीर्लिङ में प्रथम पुरुष एक बचन में आत्मनेपद का त प्रत्यय होगा। 'लिङाशिषि' से आर्धधातुक संज्ञा 'आर्धधातुकस्येड वलादेः' से इट् का आगम होकर तथा 'लिङ्स्सीयुट्' से सीयुट् होकर एधिसीयत' बना। 'सुट् तिथोः' से सुट् का आगम होने पर 'एधिसीय स् त' बना। 'लोप व्योर्वलि' से य् का लोप होने पर 'एधिसीस्त' बना। लिङ् के आर्धधातुक' होने से 'लिङः सलोपोऽनन्त्य' से स् का लोप नहीं होगा। आदेश प्रत्यययोः' से षत्व हो गया और 'ष्टुनाष्टुः' ष्टुत्व होने से एधिषीष्ट' बना।

एधिषीयास्ताम्--में 'लोपो व्योर्वलि' से य का लोप नहीं होगा तथा 'एधिषीरन्' में 'य्' का लोप होगा तथा झ का 'रन्' होगा। एधिषीष्ठाः में थास् के चलते 'सुट् तिथोः' से सुडागम, यलोप षत्व, ष्टुत्व तथा स का रुत्व विसर्ग होगा।

ऐधिष्ट--एध्धातु से लुङ् लकार में 'लुङ् लङ् लुङ् क्ष्वडुदात्तः से अडागम, तथा 'आटश्च' से वृद्धि होने पर ऐध बना फिर प्रथम पुरुष एक बचन की विवक्षा में त प्रत्यय होकर 'च्लिलुङ्' से च्लि तथा च्लेः सिच्' से च्लि का सिच् होने पर, एवं 'आर्ध-धातुकस्येड वलादेः' से इडागम होने पर ऐधिसत बना। 'आदेश प्रत्यययोः' से षत्व तथा 'ष्टुनाष्टुः' से ष्टुत्व होकर एधिष्ट रूप की सिद्धि हुई।

ऐधिषाताम्--एध्, लुङ्, अट्, वृद्धि, आताम् प्रत्यय, च्लि, सिच् इडागम तथा षत्व करके ऐधिषाताम् रूप की सिद्धि हुई।

सू० ५२७—आत्मनेपदेष्वनतः ७।१।५। अनकारात् परस्यात्मनेपदेषु झस्य 'अत्' इत्यादेशस्स्यात्। ऐधिषत। ऐधिष्ठाः, ऐधिषाथाम्, ऐधिढ्वम्। ऐधिषि, ऐधिष्वहि, ऐधिष्महि। ऐधिष्यत, ऐधिष्येताम्, ऐधिष्यन्त। ऐधिष्यथः, ऐधिष्येथाम् ऐधिष्यध्वम्। ऐधिष्ये, ऐधिष्यावहि, ऐधिष्यामहि।

अनु०—अकारभिन्न वर्ण से परे आत्मनेपदो झ को अत आदेश होता है (अन्त नहीं)।

विमर्श-ऐधिषत—एध् धातु से लुङ्लकार में, 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वड्उदात्तः' सूत्र से अडागम 'आटश्च' से वृद्धि होकर, तथा प्रथम पुरुष बहुवचन की विवक्षा में झ प्रत्यय होकर 'च्लिलुङि' से च्लि, तथा 'च्लेः सिच्' से च्लि का सिच् होने पर, एवं आर्धधातुकस्येड्वलादेः' से इडागम होने पर 'एधिसझ' बना। आदेश प्रत्ययोः से षत्व होने पर तथा 'आत्मने पदेष्वनतः' से झ का अतादेश होकर ऐधिषत की सिद्धि हो गयी।

ऐधिष्ठाः—एध् से लुङ्, अट्, वृद्धि, थास् प्रत्यय; च्लि, च्लि का सिच्। इडागम, षत्व तथा ष्टुत्व स् का रुत्वविसर्ग होकर ऐधिष्ठाः बना।

ऐधिढ्वम्—एध्, लुङ्, अट, वृद्धि, ध्वम् प्रत्यय, च्लि; च्लि का सिच् षत्व, तथा स् को लोप् होकर ध का ढ् होकर ऐधिढ्वम् बना।

ऐधिष्यत—एध् धातु से लृङ् लकार, 'लुङ्लङ् लृङ्क्ष्वड्उदातः' से अडागम, 'अतश्च' से वृद्धि, तथा प्रथम पुरुष एक वचन की विवक्षा में त प्रत्यय होकर, 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' से इडागम होकर, एवं 'स्यतासि लृलुटोः' से स्य का आगम होकर ऐधिस्यत बना। 'आदेशप्रत्ययोः' से षत्व होकर ऐधिष्यत बना।

अथ तिङन्ते अदादिगणः, अद्धातुः

सू०—अद भक्षणे। ५५५-अदिप्रभृतिभ्यः शपः।२।४:७२। लुक्

स्यात् । 'अत्ति' अत्तः, अदन्ति । अत्सि, अत्थः अत्थ । अद्मि, अद्वः अद्मः ।

अनु०--अद्धातु भक्षणार्थक (भोजन करने के अर्थ में आता) है । अदादिगण में पढ़ गये अद् आदि धातु से हुए शप् का लुक होता है ।

विमर्श--अत्ति-अद्धातु से वर्तमानार्थक लट् लकार में 'तिप् तस् झि०' इत्यादि सूत्र से तिप् प्रत्यय हुआ । तिङ्शित्सार्वधातुकम्-से सार्वधातुक संज्ञा होने पर 'कर्तरिशप' से शप् प्रत्यय होने परे 'आदिप्रभृतिभ्यः' शपः' से शप् का लुक् होने पर 'अदति', बना । 'खरिच' से द् का त् होने पर अत्ति बना ।

अत्तः-तस् प्रत्ययान्त इस रूप की भी सिद्धि अत्ति के ही समान होती है ।

अदन्ति--में 'झोन्तः' से झि के झ् का अन्तादेश होकर 'अदन्ति' रूप की सिद्धि होती है । सिप् प्रत्यय होकर अत्सि । थस् प्रत्यय होने पर 'अत्थः' और थ प्रत्यय होने पर 'अत्थ' रूप की सिद्धि हुई । मिप् 'प्रत्यय होने पर अद्मि, वस् और मस् प्रत्यय होने पर अद्वः और अद्मः रूप बनेंगे ।

मू०५५६--लिट्यन्यतरस्याम् २।४।४० अदोघस्लृ वास्याल्लिटि । जघास । उपधालोपः । ५५७शासिवसिघसीनां च ८।३।६० । इणकुभ्यां परस्यषां सस्य षः स्यात् । घस्य चर्त्वम् ८८जक्षतुः जक्षुः । जघसिथ, जक्षथुः जक्ष । जघास-जघस, जक्षिव, जक्षिम । आद, आदतुः, आदुः ।

अनु०--लिट् परे रहते अद् धातु को बिकल्प से घस्लृ आदेश होता है । जघास । उपधा का लोप होता है । ५५७-इण् और कवर्ग से परे शास् (शासन करना) धातु, वस् (निवास करना) धातु और घस् (खाना) धातु के अवयव भूत स् का ष होता है । घ क चर् होकर जक्षतुः आदि रूप बनते हैं ।

विमर्श-जघास--अद् धातु से परोक्षअर्थ में लिट् लकार होने पर 'लिट्यन्यतरस्याम्' सूत्र से अद् को घस्लृ आदेश होने पर प्रथम पुरुष एकवचन की विवक्षा में तिप् प्रत्यय हुआ। 'परस्मैपदानां णलतुसुस्-थलथुस-णल्वमाः। से णलादेश होकर 'घस् बनेगा। 'लिटिधातोरनभ्यासस्य' से घस् का द्वित्व होकर 'घस्-घस् अ' बनेगा। 'पूर्वोऽभ्यासः' से प्रथम घस् की अभ्यास संज्ञा होगी। 'हलादिशेषः' से प्रथम घस् के स् का लोप होकर 'घघस् अ' बनेगा। 'अभ्यासे चर्च' से जश्त्व होकर 'जघस् अ' बनेगा। अत उपधायाः' से अ परे रहते उसके उपधाभूत घ के अ को आ वृद्धि होकर जघास बना।

जक्षतुः--अद्धातु से लिट् लकार 'लिट्यन्तरस्याम्' सूत्र से अद् को 'घस्लृ' आदेश होने पर प्रथम पुरुष द्विवचन में तस् प्रत्यय होने पर 'परस्मैपदानांणलतुसुस्-थलथुस-णल्वमाः' सूत्र से तस् के स्थान में 'अतुस्' आदेश होने पर घस् अतुस् बना। 'लिटिधातोरनभ्यासस्य' सूत्र से घस् का द्वित्व होने पर 'पूर्वोभ्यासः' सूत्र से प्रथम घस् को अभ्यास संज्ञा होने पर 'हलादि शेषः' से अभ्यास के स् का लोप होने पर घघस् अतुस् बना। 'अभ्यसेचर्च' से घ को जश्त्व होने पर जघस् अतुस् बना। 'गमहनजनखनघसां लोपः क्ङित्यनङि' सूत्र से उपधा स् के अ का लोप होने पर जघ्सतुस्' हुआ। 'शासिवसिघसीनांच' सूत्र से स का षत्व होने पर जघ्षतुस् बना 'खरिच' सूत्र से घ्का क् हो गया। क+ष=क्ष होकर 'जक्षतुस्' रूप बना। स् का रुत्व विसर्ग होकर जक्षतुः बना।

। जक्षुः--भी ऐसे ही बनेगा। केवल 'झि' का उस् आदेश होगा।

आद--जहां पर 'लिट्यन्यतरस्याम्' से अद् को घस्लृ आदेश

नहीं होगा वहां पर अद धातु से लिट् लकार में तिप् णल् , द्वित्व अभ्यास संज्ञा अभ्यास संज्ञक अद् के द् का लोप अअद् अ बनेगा। सवर्णदीर्घ होकर आद बनेगा।

आदतुः---में अतुस् आदेश होगा तथा, आदुः में उस् आदेश होगा।

जघसिथ---अद् धातु से लिट् लकार में 'लिट्यन्तरस्याम्' से अद् को घस्लृ आदेश होने पर अनुबन्ध लोप होकर सिप् प्रत्यय एवं सिप् को थल् आदेश होने पर, 'लिटिधातोरनभ्यासस्य' सूत्र से घस् कोद्वित्व होगा। फिर 'पूर्वोभ्यासः' से प्रथमघस् की अभ्यास संज्ञा होने पर 'हलादिशेषः' से अभ्यास के स् का लोप होने पर 'घघस् थ बना। कुहोश्चुः से चुत्व होने पर 'अभ्यासे चर् च' सूत्र से झ को जश् होकर 'जघस्थ' बना। आर्धधातुकस्येड्बलादेः से इडागम होकर जघसिथ बनेगा।

लुट् लकार में रूप अत्ता, अत्तारौ, अत्तारः होगा तथा लृट् लकार में अत्स्यति, अत्स्यतः, अत्स्यन्ति रूप होगा। लोट् लकार में रूप, अत्तु, अत्ताम्, अदन्तु चलेगा।

सू० ५५८---इडत्त्यर्तिव्ययतीनाम् ७।२।६६। अद् , ऋ, व्येञ् एभ्यस्थलो नित्यमिट्स्यात्। आदिथ। अत्ता। अत्स्यति। अत्तु, अत्तात्, अत्ताम्; अदन्तु।

अनु०—अद, ऋ, और व्येञ् धातुओं से परे थल् को नित्य ही इट् का आगम होता है।

आदिथ---अद् धातु से लिट् लकार में थल् प्रत्यय होने पर थास् को 'परस्मैपदानां णलतुसुस् थलथुसणल्वमाः' सूत्र से थल् आदेश होने पर 'लिटिधातोरनभ्यासस्य' से द्वित्व होगा। 'पूर्वोभ्यासः' से प्रथम अद् की अभ्यास संज्ञा होने पर 'हलादि शेषः' से अद् के द् का लोप होने पर दीर्घ होकर 'आदथ' बनेगा। फिर

'इडत्यर्तिव्ययतीनाम्' से इडागम होने पर 'आदथ' रूप सिद्ध हुआ ।

मू०५५९–हुझल्भ्यो हेर्धिः ६।४।१०१ होर्झलन्तेभ्यश्च हेर्धिः स्यात् । अद्धि-अत्तात् । अत्तम । अत्त । अदानि । अदाव । अदाम ।

अनु०हु (हवन करना) और झलन्त धातुओं से परे हि को धि होता है ।

अत्तात्, आद्धि—अद् धातु से लोट लकार सिप् प्रत्यय होने पर 'कर्तरि शप्' से शप् होगा तथा शप् का 'अदिप्रभृतिभ्यः सार्व-धातुकसंज्ञा शपः' से लुक् होगा । फिर 'सेर्ह्यपिच्च' सूत्र से सि को हि होकर 'हुझल्भ्योहेर्धिः' से ही को धि आदेश होने पर अद्धि बना । जहाँ पर हि को धि नहीं होगा वहाँ पर 'तुह्योस्ता-तङ्' से तातङ् आदेश होकर 'अदतात्' बनेगा । 'खरि च' से द् का चर् होकर अत्तात् बनेगा ।

मू०५६०—अदः सर्वेषाम् ७।३।१०० अदः परस्यापृक्त सार्वधातुक स्य अट् स्यात् सर्वमतेन । आदत्, आत्ताम्, आदन् । आदः, आत्तम्, आत । आदम्, अदव आदम । अद्यात् अद्याताम् अद्युः । अद्यात् अद्यास्ताम्, अद्यासुः ।

अनु०—सबों के मतानुसार अद् से परे अपृक्तसार्वधातुक को अट् का आगम होता है ।

आदत्—अद्धातु से लङ् लकार होकर 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' से अडागम होगा । तिप् प्रत्यय होने पर 'तिङ्शित्सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा तथा 'कर्तरिशप्' से 'शप्' होने पर 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' से शप् का लुक् होकर । आदति बना । 'इतश्च' से इ का लोप तथा 'अदः सर्वेषाम्' से अट् का आगम होने पर आदत यह रूप सिद्ध हुआ ।

आत्ताम्—अद्-लङ्-अडागम-तस्-तस्को तामादेश-चर्त्व

होने पर आताम् रूप सिद्ध होगा।

आदन्—में झि के झ को अन्ता देश होकर इतश्च से इ का लोप, तथा त् का संयोगान्त लोप होगा। शेष कार्य पूर्ववत् होंगे।

अद्यात्—अद् धातु से विधि लिङ् लकार तिप् प्रत्यय होकर 'अद् ति' बना। 'यासुट् परस्मैपदेषूदात्तोङिच्च' से यासुडागम हुआ अनुबन्ध लोप होने पर 'लिङःसलोपो नन्त्यस्य' से स् का लोप होने पर 'अद्याति' बना। 'इतश्च' से इ का लोप होने पर अद्यात् बना।

अद्याताम्—मे तस् को 'तस्थस्थमिपां तां तंतामः' से तामादेश होगा। अद्यासुः—में झेर्जुस् से झि को जुस् आदेश होकर स का रुत्व विसर्ग होकर अद्यासुः रूप बनेगा।

अद्यात्—अद् धातु से आशीर्लिङ् में तिप् प्रत्यय होगा।

'लिङाशिषि' से आर्धधातुक संज्ञा तथा 'किदाशिषि' से यासुडागम होने पर 'लिङःसलोपोऽनन्त्यस्य' से स् का लोप तथा 'इतश्च से इ का लोप होने पर अद्यात् रूप बनेगा।

अद्यास्ताम्—में स् का लोप नहीं होगा शेष कार्य पूर्ववत् होंगे।

सू०५६१—लुङ्सनोर्घस्लृ २।४।३७ अदो घस्लृस्यात् लुङि सनि च। लृदित्वादङ्, अघसत्, आत्स्थत्।

अनु०—अद् धातु का लुङ् और सन् परे रहते घस्लृ आदेश होता है।

अघसत्—अद् धातु से लुङ् लकार, अडागम, 'लुङ्सनोर्घस्लृ' सूत्र से अद् को घस्लृ आदेश होने पर, प्रथम पुरुष एक बचन की विवक्षा में तिप् प्रत्यय होने पर 'अघस ति' बना। 'च्लि लुङ्' सूत्र से च्लि आगम होने पर, 'च्लि' को 'पुषादिद्युताद्लृदितः परस्मैपदेषु' सूत्र से अङादेश होकर 'अघसति' बना। 'इतश्च' से इ का लोप होकर अघसत् रूप बना।

आत्स्यत्--अद् धातु से लुङ् लकार में अडागम होने पर 'आद् ति' 'स्यतासीलृलुटोः' से स्य प्रत्यय होने पर 'खरि च' से चर्त्व होने पर आत्स्यति बना। 'इतश्च' से 'इ' का लोप होने पर आत्स्यत् बना।

अथ जुहोत्यादिगणः-हु धातुः

मू०--'हु' दानाऽदनयोः ६०७-जुहोत्यादिभ्यः श्लुः २।४।७५ शपः श्लुः स्यात्। ६०८-श्लौ ६।१।१० धातोर्द्वे स्तः। जुहोति, जुहुतः।

अनु०--हु धातु दान तथा खाने के अर्थ में आता है। ६०७-जुहोत्यादि गण में पठित धातुओं से शप् को श्लु (लोप) होता है। ६०८-श्लु होने पर धातु को द्वित्व होता है।

जुहोति--हु धातु से लट् लकार प्रथम पुरुष एक बचन में तिप् प्रत्यय होने पर तिङ्शित्सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा होकर 'कर्तरि शप्' से शप् होने पर शप् का 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' से श्लु (लोप) होगा। फिर 'श्लौ' सूत्र से 'हु' का द्वित्व होने पर 'हुहुति' बनेगा। पूर्वोऽभ्यासः' से प्रथम हु की अभ्यास सज्ञा होने पर 'कुहोश्चुः' से चुत्व होने पर 'झुहुति' बनेगा। 'अभ्यासे चर् च' से झ का जश् होकर जुहुति बनेगा। 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से इगन्त अङ्ग उ का गुण होकर जुहोति बनेगा।

जुहुतः--में तस् के अपित् सार्वधातुक होने के कारण ङिद्वत् होने के कारण गुण का निषेध हो जायेगा। शेष सभी कार्य जुहोति के ही समान होंगे।

विमर्श--हुधातु के देना रूप अर्थ का तात्पर्य आहुति देने में है। अतएव इसका अर्थ होगा आहुति देना।

मू०६०९--अदभ्यस्तात् ७।१।४ झस्यात्स्यात्। 'हुश्नुवोः' इति यण्-जुह्वति।

अनु०--अभ्यास से परे झ को अत् आदेश होता है। 'हुश्नुवोः

सार्वधातुके' से यण् होकर जुह्वति रूप बनता है।

जुह्वति--हु धातु से लट् लकार में झि प्रत्यय होने पर, सार्वधातुक संज्ञा, 'कर्तरिशप्' से शप्, शप् का 'जुहोत्यादिभ्यः श्लुः' से शप् का श्लु होने पर 'श्लौ' से द्वित्व होकर 'पूर्वोभ्यासः' से प्रथम हु की अभ्याससंज्ञा होकर 'कुहोश्चुः' से चुत्व होगा। 'अभ्यासे चर्च' से झ को जश् होने पर 'जुहु झि' बना। यहां पर झि के झ को 'झोन्तः' सूत्र से अन्तादेश प्राप्त था किन्तु उसको बाधकर सूत्र लगा 'अदभ्यःस्तात्' और इससे झ् को अत् होकर तथा 'हुश्नुवोः सार्वधातुके' से यण् होकर जुह्वति बना।

सू० ६१०--'भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च ३।१।३९। एभ्योलिटि आम् वा स्यात्। आमि श्लाविव कार्यं च। जुहवाञ्चकार, जुहाव। होता। होष्यति।

जुहोतु--जुहुतात्, जुहुताम्, जुह्वतु, जुहोधि; जुहवानि। अजुहोत्, अजुहुताम्।

अनु०--भी (डरना) ह्री (लजाना) भृ (पालन करना) और हु (हवन करना) इन धातुओं से लिट् परे रहे तो विकल्प से आमागम होता है तथा आम् परे रहने पर भी श्लु के विषय में होने वाले द्वित्वादि कार्यं भी होते हैं।

जुहवाञ्चकार--हु धातु से लिट् लकार आने पर 'भीह्रभृहुवां श्लुवच्च' सूत्र से आमागम होकर, आम् के परे रहते श्लुवद् कार्यं द्वित्व होगा। 'पूर्वोभ्यासः' से पूर्व हु को अभ्याससंज्ञा होने पर 'कुहोश्चुः' से चुत्व होने पर तथा 'अभ्यासेचर्च' सूत्र से जश्त्व होकर जुहुआम् बनेगा। यण् होकर जुहुवाम् बनेगा। फिर 'कृञ्चानुप्रयुज्युते लिटि' सूत्र से कृ का अनुप्रयोग होगा तो 'जुहुहवांम्कृ' बनेगा। फिर उससे तिप् तथा उसको 'परस्मैपदा-

नाम्' इत्यादि सूत्र से णलादेश होने पर, लिटिधातोरनभ्यासस्य' से कृ का द्वित्व होकर 'पूर्वोऽभ्यासः' से अभ्याससंज्ञा होकर 'उरत्' से पहले कृ के ऋ का अ होने पर से 'उरणरपरः' से रपर होकर 'जुहवाम् कर कृ अ' तथा 'हलादिःशेषः' से र का लोप होगा। 'कुहोश्चुः' से क का च होकर तथा म् का अनुनासिक ञ् होकर 'जुहुवाञ्चकृ अ' बनेगा। 'अतउपधायाः' से अन्तिम कृ के ऋ को आर् वृद्धि होकर 'जुहुवाञ्चकार' बनेगा।

जुहाव—जहां पर 'भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च' सूत्र से लिट् लकार में हु से आमागम नहीं होगा वहां पर हु को द्वित्व, अभ्यास संज्ञा चुत्व, जश्त्व, 'अतउपधाया' से उपधा को वृद्धि तथा आवादेश होकर जुहाव बनेगा।

होता—हु धातु से लुट् लकार 'स्यतासी लृलुटोः' से तास्, तिप् प्रत्यय होकर, 'आर्धधातुके शेषः' से आर्धधातुकसंज्ञा। 'लुटः प्रथमस्य डारौरसः' से तिका डा आदेश तथा अनुबन्ध लोप होने पर हु को आर्धधातुकगुण 'सार्वधातुकार्धधातुकयोः' से होकर होता बनेगा।

होष्यति—में स्य आदेश तथा षत्व होगा।

जुहोतु-जुहुतात्—हुधातु से लोट् लकार में जुहोति बनाकर 'एरुः' सूत्र से इ का उ होने पर जुहोतु बनेगा। पक्ष में 'तु को' तातङ् आदेश होकर जुहुतात् होगा। तातङ् के ङित् होने से सार्वधातुक गुण नहीं होगा।

जुहुधि—में सिप् का 'सेह्यपिच्च' से सि का हि होकर, 'हुझल्भ्योहेर्धिः' से हिका धि होने पर जुहुधि बनेगा।

अजुहोत्—लङ् लकार में अडागम तथा 'इतश्च' सेइकालोप होगा।

मू० ६११—जुसिच ७।३।८३। इगन्ताङ्गस्य गुणोऽजादौ जुसि अजहुवः जुहुयात्। हूयात्। अहौषीत्। असोष्यत्।

अनु०--इगन्त अङ्ग को गुण होता है, अजादि जुस् परे रहने पर। (लुङ् लकार में गुण का निषेध करने के लिए अजादि विशेषण दिया गया है)।

अजुहवुः--हुधातु लङ् लकार अडागम, झि प्रत्यय, सार्वधातुक संज्ञा, शप्, शप् का श्लु, धातु को द्वित्व, चुत्व तथा जश्त्व होने पर, झि का जुस् होकर 'अजुहु उस्' बनेगा। सार्वधातुक इगन्त अंग को गुण तथा अवादेश होकर स का रुत्व विसर्ग होकर अजहवुः रूप बनेगा।

जुहुयात्--हुधातु से विधिलिङ् में यह रूप होगा।

हूयात्--हु धातु आ० लि० तिप्, आर्धधातुक संज्ञा, शप् और श्लु कार्य नही होने से धातु के द्वित्व का अभाव, यासुडागम होकर स् का संयोगान्तलोप, इतश्च से इ का लोप होकर हुयात् बनेगा 'अकृत् सार्वधातुकयोः' से हुकीदीर्घ होकर हूयात् बनेगा।

अहौषीत्--हुधातु लुङ् लकार में अडागम तथा तिप् प्रत्यय होकर, च्लि तथा च्लि को सिच् होकर, 'अस्तिसिचोऽपृक्ते' से ईडागम होकर, स् काषत्व होकर 'अहुषीति बनेगा। 'सिचिवृद्धिः परस्मैपदेषु' से वृद्धि तथा इतश्च से इ का लोप होने पर 'अहौषीत्' बनेगा।

अहोष्यत्--लृङ् लकार में रूप बनेगा।

सम्पूर्ण 'हु' धातु का रूप इस प्रकार है--

लट्-प्र० पु०-जुहोति-जुहुतः-जुह्वति। म० पु०-जुहोषि-जुहुथः-जुहुथ। उ० पु०-जुहोमि-जुहुवः-जुहुमः।

लिट्-प्र० पु०-जुहाव, जुहवाञ्चकार-जुहुतः, जुहवाञ्चक्रतुः-जुहुवुः. जुहवाञ्चक्रुः। म० पु०-जुहविथ. जुहवाञ्चकर्थ-जुहुवथुः, जुहवाञ्चक्रथुः-जुहुव. जुहवाञ्चक्र। उ० पु०-जुहाव. जुहव.

जुह्वाञ्चकार, जुहवाञ्चकर-जुहविव, जुहवाञ्चकृव-जुहुविम, जुहवाञ्चकृम।

लुट्-प्र० पु०-होता-होतारौ-होतारः। म० पु०-होतासि-होतास्थः-होतास्थ। उ० पु०-होतास्मि-होतास्वः-होतास्मः।

लृट्-प्र० पु०-होष्यति-होष्यतः-होष्यन्ति। म० पु०-होष्यसि होष्यथः-होष्यथ। उ० पु०-होष्यामि-होष्यावः-होष्यामः।

लोट्-प्र० पु०-जुहोतु, जुहुतात्-जुहुताम्-जुह्वतु। म० पु०-जुहोधि, जुहुतात्-जुहुतम्-जुहुत। उ० पु० जुहवानि-जुहवाव-जुहवाम।

लङ्-प्र० पु०-अजुहोत्-अजुहुताम्-अजुहवुः। म० पु०-अजुहोः अजुहुतम्-अजुहुत। उ० पु०-अजुहवम्-अजुहुव-अजुहुम। वि० लि० प्र० पु०-जुहुयात्-जुहुयाताम्-जुहुयुः। म० पु०-जुहुयाः-जुहुयातम्-जुहुयात। उ० पु०-जुहुयाम्-जुहुयाव जुहुयाम।

आ० लि० प्र० पु०-हूयात्-हूयास्ताम्-हूयासुः। म० पु० हूयाः-हूयास्तम्-हूयास्त। उ० पु०-हूयासम्-हूयास्व-हूयास्म।

लुङ्-प्र० पु० अहौषीत्-अहौष्टाम्-अहौषुः। म० पु०-अहौषीः अहौष्टम्-अहौष्ट। उ० पु०-अहौषम्-अहौष्व-अहौष्म।

लृङ्-प्र० पु०-अहोष्यत्-अहोष्यताम्-अहोष्यन्। म० पु०-अहोष्यः-अहोष्यतम्-अहोष्यत। उ० पु०-अहोष्यम्-अहोष्याव-अहोष्याम।

अथ दिवादिगणः × दिव् धातुः

मू०---दिवु-क्रीडाविजगीषा व्यवहार-द्युति-स्तुति-मोद-मद-स्वप्न कान्ति-गतिषु। ६३२-दिवादिभ्यः श्यन् ।३।१।६९। शपोऽपवादः। हलि च-इति दीर्घः-दीव्यति। दिदेव। देविता। देविष्यति। दीव्यतु। अदीव्यत्। दीव्येत्। दीव्यात्। अदेवीत्। अदेविष्यत्।

अनु०---दिव्-धातु-क्रीडा, जुआ खेलना, व्यवहार, चमकना,

स्तुति करना, प्रसन्न होना, नशा करना, सोना, कान्ति तथा गति के अर्थ में आता है।

६२३--दिवादिगण में पढ़े गये धातुओं से 'श्यन्' होता है। यह 'श्यन्' विधि शप् आदि विधि का बाधक है। 'हलिच' सूत्र से दीर्घ होकर दीव्यति आदि रूप बनते हैं।

दीव्यति--दिव् धातु लट् लकार प्र०पु०ए० व० की विवक्षा में तिप् प्रत्यय होकर दिव् ति बना। 'तिङ् शित् सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा होने पर 'कर्तरिशप्' से शप् की प्राप्ति होने पर 'दिवादिभ्यः श्यन्' से श्यन् होकर दिव्यति बना। 'हलिच' से दीर्घ होकर दीव्यति बना।

दिदेव--दिव् धातु लिट् लकार तिप् प्रत्यय णलादेश द्वित्व, अभ्यास संज्ञा, हलादि शेष् तथा 'पुगन्तलघूपधस्य च' सूत्र से लघुपधका गुण होकर 'दिदेव' बना।

सम्पूर्ण--दिव् धातु का रूप इस प्रकार है।

लट्--प्र०पु०-दीव्यति-दीव्यतः। दीव्यन्ति। म०पु०-दीव्यसि-दीव्यथः-दीव्यथ, उ०पु०-दीव्यामि,-दीव्यावः दीव्यामः।

लिट्--प्र०पु०-दिदेव दिदिवतुः-दिदिवुः। म०पु०-दिदेविथ, दिदिवथुः-दिदिव। उ०पु०-दिदेव-दिदिविव-दिदिविम।

लुट्--प्र०पु०-देविता-देवितारौ-देवितारः। म०पु०-देवितासि देवितास्थः-देवितस्थ। उ०पु०-देवितास्मि-देवितास्वः देवितास्मः।

लृट्--प्र०पु०-देविष्यति-देविष्यतः-देविष्यन्ति। म०पु०-देविष्यसि-देविष्यथः-देविष्यथ। उ०पु०-देविष्यामि देविष्यावः-देविष्यामः।

लोट्--प्र०पु०-दीव्यतु-दीव्यतात्-दीव्यताम्-दीव्यन्तु। म०पु०-दीव्य-दीव्यतात्--दीव्यतम्--दीव्यत। उ०पु०--दीव्यानि--दीव्याव दीव्याम।

लङ्-प्र० पु०-अदीव्यात्-अदीव्यताम्-अदीव्यन् । म०पु०-अदीव्यः अदीव्यतम्-अदीव्यत । उ०पु०-अदीव्यम्-अदीव्याव-अदीव्याम ।

वि०लिङ्-प्र०पु०-दीव्येत्-दीव्येताम्-दीव्येयुः । म०पु०-दीव्येः-दीव्येतम्-दीव्येत । उ-पु०-दीव्येम्-दीव्येव-दीव्येम ।

आ०लिङ्-प्र०पु०-दीव्यात्-दीव्यास्ताम्-दीव्यासुः । म०पु०-दीव्याः-दीव्यास्तम्-दीव्यास्त । उ०पु०-दीव्यासम् दीव्यास्व दीव्यास्म ।

लुङ्-प्र० पु०-अदेवीत्-अदेविष्टाम्-अदेविषुः । म० पु० अदेवीः-अदेविष्टम्-अदेविष्ट । उ०पु०-अदेविषम्-अदेविष्व अदेविष्म ।

लृङ्-प्र०पु०-अदेविष्यत्-अदेविष्यताम्-अदेविष्यन् । म०पु०-अदेविष्यः-अदेविष्यतम्-अदेविष्यत । उ०पु०-अदेविष्यम् अदेविष्याव-अदेविष्याम ।

अथ स्वादिगणः × सु धातुः

मू०--षुञ् अभिषवे । ६४८-स्वादिभ्यः श्नुः ३।१।७३ शपोपवादः । सुनोति, सुनुतः हुश्नुवोः-इति यण्-सुन्वन्ति । सुन्वः-सुनुवः । सुनुते, सुन्वाते, सुन्वते । सुन्वहे-सुनुवहे । सुषाव, सुषुवे । सोता । सुनु, सुनवानि सुनवै । सुनुयात् । सूयात ।

अनु०षुञ् धातु अभिषव (निचोड़ने), या सोमलता का रस निकालने) के अर्थ में आता है । स्वादिगण में पढ़े गये धातुओं से श्नु होता है । यह (श्नु) विधि शप् विधिकी बाधिका विधि है ।

विमर्श--षुञ् धातु ञित् होने के कारण उभयपदी है । यह स्वादिगण का सर्व प्रथम धातु है । स्वादिगण का विकरण श्नु शित् होने के कारण सार्वधातुक है एवं अपित् होने के कारण ङिद्वत् है । अतएव ङिद्वत् मानकर गुण वृद्धि का निषेध होगा । यह अजन्त एकाच् एवं अनिट् धातु है ।

सुनोति--षु को 'धात्वादेः षः सः' से ष का स होने पर सु धातु से लट् लकार में तिप् प्रत्यय। 'सार्वधातुकसंज्ञा' होने पर, 'कर्तरिशप्' से शप् की प्राप्ति होने पर उसको बाध करके स्वादिभ्यः श्नुः' से श्नु प्रत्यय होने पर, अनुबन्ध लोप होकर, 'सुनुति' होगा। फिर 'सार्वाधतुकार्धधातुकयोः' से सु के उ का ओ गुण होकर सुनोति रूप बना।

सुनुतः—में केवल गुण नहीं होगा अपित् होने के कारण।

सुन्वन्ति--में षुञ् के ष का स होकर सु से लट् के स्थान में झि आयेगा और 'सार्वधातुकसंज्ञा होकर शप् की प्राप्ति होने पर उसको बाधकर श्नु होगा। झि को 'झोन्तः' से अन्तादेश होने पर 'सुनु अन्ति' बनेगा। 'अचिश्नुधातुभ्रुवांयोरियङुवङौ' से उवङ् की प्राप्ति होने पर उसको बाधकर 'हुश्नुवोः सार्वधातुके' सूत्र से यण होकर सुन्वन्ति रूप बनेगा।

सुन्वः, सुनुवः--सु धातु से लट् लकार में उ०पु०द्वि०व० में वस् प्रत्यय होने प॰ सार्वधातुक संज्ञा होने पर शप् की प्राप्ति हुई; उसको बाधकर 'स्वादिभ्यः श्नुः' से श्नु होकर 'सुनु वस्' हो गया। 'लोपश्चास्याऽन्यतरस्यांम्वोः' से वस् परे रहते नु के उ का विकल्प से लोप हो जाने पर स् का रुत्व विसर्ग होकर 'सुन्वः' बना, जहां स् का लोप नहीं हुआ वहां 'सुनुवः' बना।

सुन्मः, सुनुमः—भी मस् प्रत्यय होन पर सुन्वः सुनुवः के समान बनेंगे।

सुनुते—जब सु धातुसे लट् लकार में आत्मनेपद का त प्रत्यय होगा तब 'टित आत्मने पदानां टेरे' से एत्व होकर सुनुते रूप बनेगा।

सुन्वाते—सुधातु से लट्–आताम–श्नु–एत्व तथा 'हुश्नुवोः सार्वधातुके ' से यण् होकर सुन्वाते बनेगा। सुन्वते–में झ को

'अत्' होकर यण् होने पर 'सुन्वते' होगा। सुषाव-सुधातु से लिट् तिप्, णल् द्वित्व, अभ्यासकार्य, धातु के सकार को षत्व होकर सुषाव बनेगा।

सुषुवे—सु धातु से लिट् लकार आत्मनेपद में त प्रत्यय का एश आदेश होकर तथा उवङ् आदेश होकर सुषुवे रूप बनेगा।

६४६—स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मैपदेषु' ७।२।७२। एभ्यः सिच इट् स्यात् परस्मैपदेषु। आसवीत्। असोष्ट।

अनु०—स्तु, सु तथा धुञ् धातुओं से परे सिच् को इड़ागम होता है, परस्मैपद के प्रत्ययों को परे रहते हैं।

असावीत्—सुधातु से लुङ् लकार 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' में अडागम होने पर तिप् च्लि, च्लि कोसिच् होकर असुसति' बना। इतश्च से इ का लोप होकर 'असुस्त्' बना। स्तुसुधुञ्भ्यः परस्मैपदेषु, से इडागम, अस्तिसिचोऽपृक्ते से अपृक्त तकार को इडागम, तथा दोनों इट् का सवर्ण दीर्घ होने पर 'सिचिवृद्धिः परस्मैपदेषु' से वृद्धि होकर तथा अवादेश होकर 'असावीत्' रूप बनता है।

असोष्ट—सुधातु से लुङ् लकार में अडागम होने पर त प्रत्यय होकर च्लि तथा च्लि का सिच् होकर 'असुस्त' बना। आर्धधातुक गुण तथा सिच् के स् को षत्व होकर तकार का ष्टुत्व होकर 'असोष्ट' रूप बनेगा।

सु—धातु का सम्पूर्ण रूप इस प्रकार है-

लट्—परस्मैपद-प्र०पु०-सुनोति-सुनुतः-सुन्वन्ति। म० पु०-सुनोषि-सुनुथः-सुनुथ। उ०पु०-सुनोमि-सुनुवः-सुन्वः-सुनुमः-सुन्मः। आत्मनेपदी-प्र०पु०-सुनुते-सुन्वाते-सुन्वते। म०पु०-सुनुषे सुन्वाथे सुनुध्वे। उ०पु०-सुन्वे-सुनुवहे, सुन्वहे-सुनुमहे सुन्महे।

लिट्--परस्मैपदी-प्र०पु०-सुषाव-सुषुवतुः-सुषुवुः । म०पु०-सुषविथ-सुषोथ-सुषुवथुः-सुषव । उ०पु०-सुषाव-सुषव-सुषुविव-सुषुविम । आत्मनेपदी--प्र०पु०-सुषुवे-सुषुवाते--सुषुविरे । म०पु०-सुषुविषे-सुषुवाथे-सुषविध्वे-ढ्वे । उ०पु०-सुषुवे-सुषुविवहे-सुषुविमहे ।

लुट्--परस्मैपदी-प्र०पु०-सोता-सोतारौ-सोतारः । म०पु०-सोतासि-सोतास्थः-सोतास्थ । उ०पु०-सोतास्मि-सोतास्वः-सोतास्मः । आत्मनेपदी-प्र०पु०-सोता-सोतारौ-सोतारः । म०पु०-सोतासे-सोतासाथे-सोताध्वे । उ०पु०-सोताहे-सोतास्वहे-सोतास्महे ।

लृट्-परस्मैपदी-प्र०पु०-सोष्यति-सोष्यतः सोष्यन्ति । म०पु०-सोष्यसि-सोष्यथः-सोष्यथ । उ०पु०-सोष्यामि-सोष्यावः-सोष्यामः आत्मनेपदी-प्र०पु०-सोष्यते-सोष्येते-सोष्यन्ते । म०पु०-सोष्यसे-सोष्येथे-सोष्यध्वे । उ०पु०-सोष्ये-सोष्यावहे-सोष्यामहे ।

लोट्--परस्मैपद-प्र०पु०-सुनोतु-सुनुतात-सुनुताम्-सुन्वन्तु । म०पु०-सुनु-सुनुतात्-सुनुतम्-सुनुत । उ०पु०-सुनवानि-सुनवाव-सुनवाम ।

आत्मनेपद-प्र०पु०-सुनुताम्-सुन्वाताम्-सुन्वताम् । म०पु०-सुनुष्व-सुन्वाथाम्-सुनुध्वम् । उ०पु०-सुनवै-सुनवावहै-सुनवामहै ।

लङ्-परस्मैपद-प्र०पु-असुनोत्-असुनुताम्-असुन्वन् । म०पु०-असुनोः-असुनुतम्-असुनुत । । उ०पु०-असुनवम्-असुनुव-असुन्व-असुनुम-असुन्म ।

आत्मनेपद-प्र०पु०-असुनुत-असुन्वाताम्-असुन्वन्त । म०पु०-असुनुथाः-असुन्वाथाम्-असुनुध्वम् । उ० पु०-असुन्वि-असुनुवहि-असुन्वहि,-असुनुमहि-असुन्महि ।

विधिलिङ्-परस्मैपद-प्र०पु०-सुनुयात्-सुनुयाताम्-सुनुयुः । म०पु०-सुनुयाः-सुनुयातम्-सुनुयात । उ०पु०-सुनुयाम्-सुनुयाव-सुनुयाम ।

आत्मनेपद--प्र०पु०--सुन्वीत--सुन्वीयाताम्--सुन्वीरन् ।

म०पु०-सुन्वीथा;-सुन्वीयाथाम्--सुन्वीध्वम् । उ० पु०--सुन्वीय-सुन्वीवहि-सुन्वीमहि ।

आ०लिङ्-०परस्मैपद-प्र०पु०-सूयात्--सूयास्ताम्-सुयासुः । म०पु०-सूयाः-सूयास्तम् सूयास्त । उ०पु०-सूयासम्-सूयास्व-सूयास्म । आत्मनेपद--प्र०पु०-सोषीष्ट--सोषीयास्ताम्-सोषीरन् । म०पु०-सोषीष्ठाः-सोसीयास्थाम्-सौषीढ्वम् । उ०पु०-सोषीय-सोषीवहि-सोषीमहि ।

लुङ्--परस्मैपद-प्र०पु०-असावीत्-असाविष्टाम्-असाविषुः । म०पु०-असावीः-असाविष्टम्-असाविष्ट । उ०पु०-असाविषम्-असाविष्व-असाविष्म ।

आत्मनेपद-प्र०पु०-असोष्ट-असोषाताम्-असोषत । म०पु० असोष्ठाः--असोषाथाम्-असोढ्वम् । उ०पु०-असोषि--असोष्वहि-असोष्महि ।

लृङ्--परस्मैपद-प्र पु०-असोष्यत्-असोष्यताम्-असोष्यन् । म०पु०-असोष्यः--असोष्यतम्--असोष्यत । उ०पु०--असोष्यम्-असोष्याव-असोष्याम ।

आत्मनेपद--प्र०पु-असोष्यत-असोष्येताम् असोष्यन्त । म०पु-असोष्यथाः-असोष्येथाम्-असोष्यध्वम्-उ०पु०-असोष्ये-असोष्यावहि असोष्यामहि ।

अथ तुदादिगणः × तुद् धातु

मू०-तुद व्यथने । ६५४-तुदाऽऽदिभ्यः शः ३।१।७७ शपोऽपवादः । तुदति, तुतोद, तुतोदिथ । तुतुदे । तोत्ता । अतौत्सीत्, अतुत्त ।

अनु०-तुद धातु पीडित करने के अर्थ में आता है ।

तुददिगण-में पढ़े गये धातुओं से 'श' प्रत्यय होता है । श विधि शप् विधि की अपवाद विधि है ।

विमर्श—तुद् धातु स्वरितेत् होने के कारण उभयपदी है। तथा अनिट् धातु है। 'श' विकरण के अपित् होने के कारण ङिद्वत् होने से गुण का निषेध हो जाता है।

तुदति—तुद् धातु से लट् लकार में तिप् प्रत्यय होने पर सार्व धातुक संज्ञा होने पर शप् की प्राप्ति होगी; उसको बाधकर 'तुदादिभ्यः शः' से श होता है। फिर श का अनुबन्ध लोप होकर अ बचता है। इस तरह तुदति रूप सिद्ध होता है।

तुदते—आत्मनेपद में यह रूप होगा।

तुतोद—तुद्-लिट्-तिप्-णल् द्वित्व, अभ्यासकार्य तथा उत्तर खण्ड को गुण होकर यह रूप बनेगा।

तुतुदे—तुद् धातु से लिट् लकार आत्मनेपद में त प्रत्यय। त का एश् 'लिटस्तझयोरेशिरेचि' से होकर द्वित्व, अभ्यासकार्य; होने पर यह रूप बनता है।

लुट्—तोत्ता। लृट् में-तोत्स्यति-तोत्स्यते। लोट् में-तुदतु-तुदताम्।

लङ्—अतुदत्-अतुदत। वि० लिङ्-तुदेत्-तुदेत। आ० लिङ्-तुद्यात्-तुत्सीष्ट। लुङ्-अतौत्सीत्-अतुत्त। लृङ्-अतोत्स्यत् अतोत्स्यत।

सम्पूर्ण तुद् धातु का रूप इस प्रकार है—

लट्-परस्मैपद-प्र० पु०-तुदति-तुदतः-तुदन्ति। म० पु०-तुदसि-तुदथः-तुदथ। उ० पु०-तुदामि-तुदावः-तुदामः।

आत्मनेपद-प्र० पु०-तुदते-तुदेते-तुदन्ते। म० पु०-तुदसे तुदेथे-तुदध्वे। उ० पु०-तुदे-तुदावहे-तुदामहे।

लिट्-परस्मैपद-प्र० पु०-तुतोद-तुतुदतुः-तुतुदुः। म०पु० तुतोदिथ-तुतुदथुः-तुतुद। उ० पु०-तुतोद-तुतुदिव-तुतुदिम।

आत्मनेपद-प्र० पु०-तुतुदे-तुतुदाते-तुतुदिरे। म० पु०

तुतुदिषे-तुतुदाथे-तुतुदिध्वे । अ० पु०-तुतुदे-तुतुदिवहे-तुतुदिमहे ।

लुट्-परस्मैपद-प्र० पु०-तोत्ता-तोत्तारौ-तोत्तारः । म० पु०-तोत्तासि-तोत्तास्थः-तोत्तास्थ । उ० पु०-तोत्तास्मि-तोत्तास्वः तोत्तास्मः ।

आत्मनेपद—प्र० पु०-तोत्ता-तोत्तारौ-तोत्तारः । म० पु०-तोत्तासे-तोत्तासाथे-तोत्ताध्वे । उ० पु०-तोत्ताहे-तोत्तास्वहे-तोत्तास्महे ।

लृट्-परस्मैपद-प्र० पु०-तोत्स्यति-तोत्स्यतः-तोत्स्यन्ति । म० पु०-तोत्स्यसि-तोत्स्यथः-तोत्स्यथ । उ० पुं०-तोत्स्यामि-तोत्स्यावः-तोत्स्यामः ।

आत्मनेपद-प्र० पु०-तोत्स्यते-तोत्स्येते-तोत्स्यन्ते । म० पु०-तोत्स्यसे-तोत्स्येथे-तोत्स्यध्वे । उ०पु०-तोत्स्ये-तोत्स्यावहे-तोत्स्यामहे ।

लोट्-परमैपद-प्र० पु०-तुदतु, तुदतात्-तुदताम्-तुदन्तु । म० पु०-तुद, तुदतात्-तुदतम्-तुदत । उ० पु०-तुदानि-तुदाव-तुदाम ।

आत्मनेपद-प्र० पु०-तुदताम्-तुदेताम्-तुदन्ताम् । म० पु०-तुदस्व-तुदेथाम्-तुदध्वम् । उ० पु०-तुदै-तुदावहै-तुदामहै ।

लङ्-परस्मैपद-प्र० पु०-अतुदत्-अतुदताम्-अतुदन् । म० पु०-अतुदः-अतुदतम्-अतुदत । उ० पु०-अतुदम्-अतुदाव-अतुदाम ।

आत्मनेपद-प्र० पु०-अतुदत-अतुदेताम्-अतुदन्त । म० पु०-अतुदथाः-अतुदेथाम्-अतुदध्वम् । उ० पु०-अतुदे-अतुदावहि-अतुदामहि ।

वि० लि० परस्मैपद-प्र० पु०-तुदेत्-तुदेताम्-तुदेयुः म० पु०-तुदेः-तुदेतम्-तुदेत । उ० पु०-तुदेयम्-तुदेव-तुदेम ।

आत्मनेपद-प्र० पु०-तुदेत-तुदेयाताम्-तुदेरन् । म० पु०-तुदेथाः-तुदेयाथाम्-तुदेध्वम् । उ० पु०-तुदेय-तुदेवहि-तुदेमहि ।

आ० लि० परस्मैपद-प्र० पु०-तुद्यात्-तुद्यास्ताम्-तुद्यासु । म० पु०-तुद्याः-तुद्यास्तम्-तुद्यास्त । उ० पु०-तुद्यासम्-तुद्यास्व तुद्यास्म ।

आत्मनेपद-प्र०पु०-तुत्सीष्ट-तुत्सीयास्ताम्-तुत्सीरन् । म०पु०-तुत्सीष्ठाः-तुत्सीयास्थाम्-तुत्सीध्वम् । उ० पु०-तुत्सीय-तुत्सीवहि-तुत्सीमहि ।

लुङ्-परस्मैपद-प्र० पु०-अतौत्सीत्-अतौत्ताम्-अतौत्सुः । म० पु०-अतौत्सीः-अतौत्तम्-अतौत्त । उ० पु०-अतौत्सम्-अतौत्स्व-अतौत्सम ।

आत्मनेपद-प्र० पु०-अतुत्त-अतुत्साताम्-अतुत्सत । म० पु०-अतुत्थः-अतुत्साथाम्-अतुद्ध्वम् । उ० पु०-अतुत्सि-अतुत्स्वहि-अतुत्स्महि ।

लृङ्-परस्मैपद-प्र०पु०-अतोत्स्यत्-अतोत्स्यताम्-अतोत्स्यन् । म० पु०-अतोत्स्यः-अतोत्स्यतम्-अतोत्स्यत । उ० पु०-अतोत्स्यम्-अतोत्स्याव-अतोत्स्याम ।

आत्मनेपद-प्र० पुं०-अतोत्स्यत-अतोत्स्येताम्-अतोत्स्यन्त । म० पु०-अतोत्स्यथाः-अतोत्स्येथाम्-अतोत्स्यध्वम् । उ० पु०-अतोत्स्ये-अतोत्स्यावहि-अतोत्स्यामहि ।

अथ रुधादिगणः × रुध् धातुः

मू० रुधिर् आवरणे । ६६९-रुधादिभ्यःश्नम् ३।१।७८। शपोऽप-
वादः । रुणद्धि । श्नसोरल्लोपः । रुन्धः । रुधन्ति । रुणत्सि-रुन्धः-रुन्ध ।
रुणध्मि-रुन्ध्वः-रुन्ध्मः । रुन्धे-रुन्धाते-रुन्धते । रुरोध-रुरुधे । रोद्धा-
रोत्स्यति-रोत्स्यते । रुणद्धु-रुन्धात् रुन्धाम्-रुन्धन्तु । रुन्धि, रुणधानि,
रुणधाव । रुणधाम । रुन्धाम्-रुन्धाताम्-रुन्धताम् । रुन्त्स्व ।
रुणधै-रुणधावहै-रुणधामहै । अरुणत्-अरुणद्-अरुन्धाम्-अरुन्धन् । अरु-
णत्-अरुणः । अरुन्ध-अरुन्धताम्-अरुन्धत । अरुन्धाः । रुन्ध्यात् । रुन्धीत ।

रुध्यात्--रुत्सीष्ट । अरुधत्--अरौत्सीत्-अरुद्ध--अरुत्साताम्--अरुत्सत । अरोत्स्यत्-अरोत्स्यते ।

अनु०-रुधिर् धातु रोकने के अर्थ में आता है। रुधादिगण में पढे गये धातुओं से श्नम् होता है । श्नम् विधि शप् आदि विधियों की अपवाद विधि है। रुणद्धि-रोकता है । हलादि ङित् सार्वधातुक परे रहते श्नम् के अकार का लोप 'श्नसोरल्लोपः' से होकर रुन्धः बनेगा ।

विमर्श--रुधिर् अनिट् धातु है। इसका इर् इत्संज्ञक है और उसका फल है लुङ् लकार में च्लि का चङ् होना । यह उभयपदी धातु है ।

रुणद्धि—रुध् धातु से लट् लकार तिप् प्रत्यय तथा सार्वधातुकसंज्ञा होने पर शप् की प्राप्ति हुई उसको बाधित करके 'रुधादिभ्यः श्नम्' सूत्र से श्नम् हो गया । यह मित् होने के कारण रु और ध् के बीच में हुआ । 'झषस्तथोर्धोधः' से ति के त् का ध् होकर 'रुनध्धि' बना। 'खरि च' धातु के धकार का जश् होकर, तथा न का ण होकर रुणद्धि बना ।

रुन्धः—रुध् धातु से लट् लकार प्रथम पुरुष द्वि०व० मे तस् प्रत्यय तथा श्नम् होकर 'रुन्ध तस्' होता है। 'श्नसोरल्लोपः' से न् के अ का लोप हुआ । 'झषस्तथोर्धोऽधः' सूत्र से तस् के त का ध हो गया। 'झरो झरि सवर्णे' सूत्र से प्रथम ध का लोप हो गया पुनः स् का रुत्व विसर्ग होकर 'रुन्धः' रूप सिद्ध हुआ ।

रुन्धन्ति—में झि का अन्ति होगा। शेष सभी कार्य रुन्धः के समान होते हैं ।

रुणत्सि—रुध्धातु से लट् लकार म० पु० ए०ब० में सिप् प्रत्यय तथा श्नम् होकर 'रुनुधसि' बना । 'खरि च' से चर् होकर ध का त् होकर, तथा न का ण होकर रुणत्सि बना ।

रुन्धः—रुध् धातु लट् लकार म० पु० द्वि० व० मे यह रूप बनेगा।

'झषस्तथोर्धोधः' से थ का ध यहां होगा। शेष कार्य उपयुक्त 'रुन्धःके' समान होंगे।

रुन्ध—लट् म० पु० व० व० में थ का ध होकर यह रूप बनेगा।

लट् लकार उ० पु० में–रुणध्मि, रुन्ध्वः, रुन्ध्मः रूप होंगे।

रुन्धे—रुध् धातु से लट् लकार प्रथम पुरुष एक वचन में आत्मने पदीय त प्रत्यय होकर श्नम् होगा। फिर 'टित आत्मने पदानां टेरे' से ए तथा 'झषस्तथोर्धोधः' से त का ध एवं 'झरोझरि सवर्णे' से धातु के ध् का लोप होकर रुन्धे रूप बनेगा।

लट् के प्र०पु०द्वि०व० और व०व० में रुन्धाते, रुधते रूप होंगे।

रुरोध—रुध् धातु से लिट् लकार तिप् को णल आदेश द्वित्व तथा अभ्यास कार्य होकर रुरोध रूप होगा। आत्मनेपद में 'रुरुधे' होगा। लुट् में रोद्धा रूप होगा। लृट् परस्मैपद में रोत्स्यति और आत्मनेपद में रोत्स्यते बनेगा।

रुन्धि—लोट् म० पु० ए० व० में सिप् का 'हुज्झल्भ्योर्हेर्धिः' से हि का धि होकर, रुन्धि बनेगा।

रुन्धाम्—रुध् धातु से आत्मनेपद प्रथम पुरुष ए० व० में त प्रत्यय तथा श्नम् होकर रुन्ध त बना। टित आत्मने पदानां टेरे' से ए तथा 'झषस्तथोर्धोधः' से त को ध एवं 'झरोझरि सवर्णे' से प्रथम ध् का लोप होने पर रुन्धे रूप बना 'आमेतः से ए का आम् होकर 'रुन्धाम्' रूप बना।

रुत्सीष्ट—रुध् धातु आ० लि० में 'लिङ् सिचावात्मनेपदेषु' सूत्र से सीयुट् के कित् होने के कारण गुण नहीं होकर यह रूप बनेगा।

अरौत्सीत्—लुङ् लकार प्रथम पुरुष एकवाचन में अडागम तिप् होने पर आटश्च से वृद्धि; च्लि, सिच्, ईडागम चर् त्व तथा इतश्च से इ कालोप होकर अरौत्सोत् यह रूप बना।

रुध् धातु के सम्पूर्ण रूप इस प्रकार हैं—

लट् परस्मैपद--प्र-पु०-रुणद्धि--रुन्द्धः-रुन्धन्ति। म०पु०-रुणत्सि-रुन्द्धः-रुन्द्ध। उ०पु०-रुणध्मि-रुन्ध्वः-रुन्ध्मः।

लट् आत्मनेपद--प्र०पु-रुन्धे-रुन्धाते-रुन्धते। म०पु०-रुन्त्से रुन्धाथे-रुन्द्ध्वे। उ०पु०-रुन्धे-रुन्ध्वहे-रुन्ध्महे।

लिट् परस्मैपद--प्र०पु०--रुरोध-रुरुधतुः--रुरुधुः। म०पु०-रुरोधिथ-रुरुधथुः-रुरुध। उ०पु०-रुरोध-रुरुधिव-रुरुधिम।

लिट् आत्मनेपद--प्र०पु०-रुरोध-रुरुधतुः-रुरुधुः। म०पु०-रुरोधिथ-रुरुधथुः-रुरुध। उ०पु०-रुरोध-रुरुधिव-रुरुधिम।

लिट् आत्मनेपद--प्र०पु०-रुरुधे-रुरुधाते-रुरुधिरे। म०पु०-रुरुधिषे-रुरुधाथे-रुरुधिध्वे। उ०पु०-रुरुधे-रुरुधिवहे-रुरुधिमहे।

लुट् परस्मैपद—प्र०पु०रोद्धा-रोद्धारौ--रोद्धारः। म०पु०-रोद्धासि-रोद्धास्थः-रोद्धास्थ। उ०पु०-रोद्धास्मि-रोद्धास्वः-रोद्धास्मः

लुट् आत्मनेपद--प्र०पु०-रोद्धा-रोद्धारौ-रोद्धारः। म०पु०-रोद्धासे-रोद्धासाथे-रोद्धाध्वे। उ०पु०-रोद्धाहे-रोद्धास्वहे-रोद्धास्महे।

लृट्--परस्मैपद-प्र०पु०-रोत्स्यति-रोत्स्यतः-रोत्स्यन्ति। म०पु०-रोत्स्यसि-रोत्स्यथः-रोत्स्यथ। उ०पु०-रोत्स्यामि-रोत्स्यावः-रोत्स्यामः।

लृट् आत्मनेपद--प्र०पु०-रोत्स्यते-रोत्स्येते-रोत्स्यन्ते। म०पु०-रोत्स्यसे-रोत्स्येथे-रोत्स्यध्वे। उ०पु०-रोत्स्ये-रोत्स्यावहे-रोत्स्यामहे।

लोट् परस्मैपद--प्र०पु०-रुणद्धु-रुन्द्धात्--रुन्द्धाम्-रुन्धन्तु। म०पु०-रुन्द्धि-रुन्द्धात्-रुन्द्धम्-रुन्द्ध। उ०पु०रुणधानि-रुणधाव-रुणधाम।

लोट् आत्मनेपद--प्र० पु०-रुन्द्धाम्-रुन्धाताम्-रुन्धताम् । म० पु०-रुन्त्स्व-रुन्धाथाम्-रुन्द्धम् । उ० पु०-रुणधै-रुणधावहै-रुणधामहै ।

लङ्-परस्मैपद--प्र० पु०-अरुणत्-अरुन्द्धाम्-अरुन्धन् । म० पु०-अरुणः, अरुणत्-अरुन्द्धम्-अरुन्द्ध । उ० पु०-अरुणधम्-अरुन्ध्व-अरुन्ध्म ।

आत्मनेपद--प्र० पु०-अरुन्द्ध-अरुन्धाताम्-अरुन्धत् । म० पु०-अरुन्द्धाः-अरुन्धाताम्-अरुन्द्धम् । उ० पु० अरुन्धि-अरुन्ध्वहि-अरुन्ध्महि ।

वि० लि०-परस्मैपद--प्र० पु०-रुन्ध्यात्-रुन्ध्याताम्-रुन्ध्युः । म० पु०-रुन्ध्याः-रुन्ध्यातम्-रुन्ध्यात । उ० पु०-रुन्ध्याम्-रुन्ध्याव-रुन्याम ।

आत्मनेपद--प्र० पु० रुन्धीत-रुन्धीयाताम्-रुन्धीरन् । म०पु० रुन्धीथाः-रुन्धीयाथाम्-रुन्धीध्वम् । उ० पु०-रुन्धीय-रुन्धीवहि-रुन्धीमहि ।

आ० लि०-परस्मैपद-प्र० पु०-रुध्यात्-रुध्यास्ताम्-रुध्यासुः । म० पु०-रुध्याः-रुध्यास्तम्-रुध्यास्त । उ० पु०-रुध्यासम-रुध्यास्व-रुध्यास्म ।

आत्मनेपद--प्र० पु०-रुत्सीष्ट-रुत्सीयास्ताम्-रुत्सीरन् । म० पु०-रुत्सीष्ठाः-रुत्सीयास्थाम-रुत्सीध्वम् । उ० पु०-रुत्सीय-रुत्सीवहि-रुत्सीमहि ।

लुङ्-परस्मैपद--प्र० पु०-अरुधत्-अरुधताम्-अरुधन् । म० पु०-अरुधः-अरुधतम्-अरुधत । उ० पु०-अरुधम्-अरुधाव-अरुधाम ।

पक्ष में—प्र० पु०-अरोत्सीत्, अरौत्सीत्-अरौद्धाम्-अरौत्सुः । म० पु०-अरौत्सीः-अरौद्धम्-अरौद्ध । उ० पु०-अरौत्सम्-अरौत्स्व-अरौत्स्म ।

अरौत्सीत्—लुङ् लकार प्रथम पुरुष एकवाचन में अडागम तिप् होने पर आटश्च से वृद्धि; च्लि, सिच्, ईडागम चर्त्व तथा इतश्च से इ कालोप होकर अरौत्सोत् यह रूप बना ।

रुध् धातु के सम्पूर्ण रूप इस प्रकार हैं—

लट् परस्मैपद--प्र-पु०-रुणद्धि--रुन्द्धः-रुन्धन्ति । म०पु०-रुणत्सि-रुन्द्धः-रुन्द्ध । उ०पु०-रुणध्मि-रुन्ध्वः-रुन्ध्मः ।

लट् आत्मनेपद--प्र०पु-रुन्धे-रुन्धाते-रुन्धते । म०पु०-रुन्त्से रुन्धाथे-रुन्द्ध्वे । उ०पु०-रुन्धे-रुन्ध्वहे-रुन्ध्महे ।

लिट् परस्मैपद--प्र०पु०--रुरोध-रुरुधतुः--रुरुधुः । म०पु०-रुरोधिथ-रुरुधथुः-रुरुध । उ०पु०-रुरोध-रुरुधिव-रुरुधिम ।

लिट् आत्मनेपद--प्र०पु०-रुरोध-रुरुधतुः-रुरुधुः । म०पु०-रुरोधिथ-रुरुधथुः-रुरुध । उ०पु०-रुरोध-रुरुधिव-रुरुधिम ।

लिट् आत्मनेपद--प्र०पु०-रुरुधे-रुरुधाते-रुरुधिरे । म०प०-रुरुधिष्-रुरुधाथे-रुरुधिध्वे । उ०पु०-रुरुधे-रुरुधिवहे-रुरुधिमहे ।

लुट् परस्मैपद—प्र०पु०रोद्धा-रोद्धारौ--रोद्धारः । म०पु०-रोद्धासि-रोद्धास्थः-रोद्धास्थ । उ०पु०-रोद्धास्मि-रोद्धास्वः-रोद्धास्मः

लुट् आत्मनेपद--प्र०पु०-रोद्धा-रोद्धारौ-राद्धारः । म०पु०-रोद्धासे-रोद्धासाथे-रोद्धाध्वे । उ०पु०-रोद्धाहे-रोद्धास्वहे-रोद्धास्महे ।

लृट्--परस्मैपद-प्र०पु०-रोत्स्यति-रोत्स्यतः-रोत्यन्ति । म०पु०-रोत्स्यसि-रोत्स्यथः-रोत्स्यथ । उ०पु०-रोत्स्यामि-रोत्स्यावः-रोत्स्यामः ।

लृट् आत्मनेपद--प्र०पु०-रोत्स्यते-रोत्स्येते-रोत्स्यन्ते । म०पु०-रोत्स्यसे-रोत्स्येथे-रोत्स्यध्वे । उ०पु०-रोत्स्ये-रोत्स्यावहे-रोत्स्यामहे ।

लोट् परस्मैपद--प्र०पु०-रुणद्धु-रुन्द्धात्--रुन्द्धाम्-रुन्धन्तु । म०पु०-रुन्द्धि-रुन्द्धात्-रुन्द्धम्-रुन्द्ध । उ०पु०रुणधानि-रुणधाव-रुणधाम ।

लोट् आत्मनेपद--प्र० पु०-रुन्द्धाम्-रुन्धाताम्-रुन्धताम् । म० पु०-रुन्त्स्व-रुन्धाथाम्-रुन्द्धम् । उ० पु०-रुणधै-रुणधावहै-रुणधामहै ।

लङ्-परस्मैपद--प्र० पु०-अरुणत्-अरुन्द्धाम्-अरुन्धन् । म० पु०-अरुणः, अरुणत्-अरुन्द्धम्-अरुन्द्ध । उ० पु०-अरुणधम्-अरुन्ध्व-अरुन्ध्म ।

आत्मनेपद--प्र० पु०-अरुन्द्ध-अरुन्धाताम्-अरुन्धत् । म० पु०-अरुन्द्धाः-अरुन्धाताम्-अरुन्द्धम् । उ० पु० अरुन्धि-अरुन्ध्वहि-अरुन्ध्महि ।

वि० लि०-परस्मैपद--प्र० पु०-रुन्ध्यात्-रुन्ध्याताम्-रुन्ध्युः । म० पु०-रुन्ध्याः-रुन्ध्यातम्-रुन्ध्यात । उ० पु०-रुन्ध्याम्-रुन्ध्याव-रुन्ध्याम ।

आत्मनेपद--प्र० पु० रुन्धीत-रुन्धीयाताम्-रुन्धीरन् । म०पु० रुन्धीथाः-रुन्धीयाथाम्-रुन्धीध्वम् । उ० पु०-रुन्धीय-रुन्धीवहि-रुन्धीमहि ।

आ० लि०-परस्मैपद-प्र० पु०-रुध्यात्-रुध्यास्ताम्-रुध्यासुः । म० पु०-रुध्याः-रुध्यास्तम्-रुध्यास्त । उ० पु०-रुध्यासम-रुध्यास्व-रुध्यास्म ।

आत्मनेपद--प्र० पु०-रुत्सीष्ट-रुत्सीयास्ताम्-रुत्सीरन् । म० पु०-रुत्सीष्ठाः-रुत्सीयास्थाम-रुत्सीध्वम् । उ० पु०-रुत्सीय-रुत्सीवहि-रुत्सीमहि ।

लुङ्-परस्मैपद--प्र० पु०-अरुधत्-अरुधताम्-अरुधन् । म० पु०-अरुधः-अरुधतम्-अरुधत । उ० पु०-अरुधम्-अरुधाव-अरुधाम ।

पक्ष में—प्र० पु०-अरोत्सीत्, अरौत्सीत्-अरौद्धाम्-अरौत्सुः । म० पु०-अरौत्सीः-अरौद्धम्-अरौद्ध । उ० पु०-अरौत्सम्-अरौत्स्व-अरौत्स्म ।

आत्मनेपद--प्र० पु०-अरुद्ध-अरुत्साताम्-अरुत्सत । म० पु०-अरुद्धाः-अरुत्साथाम्-अरुद्धम् । उ०पु० अरुत्सि-अरुत्स्वहि-अरुत्स्महि ।

लृङ-परस्मैपद--प्र० पु०-अरोत्स्यत्-अरोत्स्यताम्-अरोत्स्यन् । म० पु०-अरोत्स्यः-अरोत्स्यतम्-अरोत्स्यत । उ० पु०-अरोत्स्यम्-अरोत्स्याव-अरोत्स्याम ।

आत्मनेपद-प्र० पु०-अरोत्स्यत-अरोत्स्येताम्-अरोत्स्यन्त । म०पु०-अरोत्स्यथाः-अरोत्स्येथाम्-अरोत्स्यध्वम् । उ०पु०-अरोत्स्ये-अरोत्स्यावहे-अरोत्स्यामहे ।

अथ तनादिगणः × तन् धातुः

मू०-तनु-विस्तारे । ६८६-तनाऽऽदिकृञ्भ्य उः ।३।१।७९ शपोऽपवादः । तनोति, तनुते । ततान, तेने । तनितासि, तनितासे । तनिष्यति, तनिष्यते । तनोतु, तनुताम् । अतनोत्, अतनुत । तनुयात्, तन्वीत । तन्यात्, तनिषीष्ट । अतानीत्, अतनीत् ।

अनु०--तन् धातु फैलाने के अर्थ में आता है । (यह सेट् धातु है तथा उभयपदी धातु है । इस धातु के उदित होने के कारण निष्ठा में इट् का निषेध होता है) ।

तनादिगण में पठित धातु तथा कृ धातु से उ प्रत्यय होता है । उ विधि शप् विधि की अपवाद विधि है ।

तनोति--तन् धातु से लट् लकार में परस्मैपदी तिप् प्रत्यय होने पर तथा 'तिङ् शित् सार्वधातुकम्' से सार्वधातुक संज्ञा होने पर 'कर्तरि शप् से शप् की प्राप्ति होने पर उसको बाधकर के सूत्र लगा 'तनाऽदिकृञ्भ्यः उः' इस सूत्र से उ प्रत्यय होने पर 'तनुति' बना । सार्वधातुकार्धधातुकयोः से गुण होकर तनोति रूप की सिद्धि हुई ।

तनुते--तन् धातु से लट् लकार में आत्मनेपदीय त प्रत्यय होने पर 'तनादिकृञ्भ्यः उः' से उ प्रत्यय हुआ । त के अपित्

सार्वधातुक होने के कारण सार्वधातुक गुण का निषेध होने से 'टित आत्मनेपदानां टेरे' से त के 'टि' अ का ए आदेश होकर तनुते इस रूप की सिद्धि हुई।

ततान--तन् धातु से लिट् लकार में तिप् प्रत्यय होने पर तिप् को 'परस्मैपदानां णलतुसुस्-थलथुस-णल्वमाः' सूत्र से णलादेश होने पर तन् को 'लिटिधातोरनभ्यासस्य' से द्वित्व होकर प्रथम तन् को अभ्याससंज्ञा होनेपर 'हलादि शेषः' से तन के न् का लोप होगा। 'अतउपाधाया' सूत्र से उपधा की वृद्धि होकर ततान रूप की सिद्धि हुई।

तेने--तन्धातु से लिट् लकार प्रथम पुरुष एक बचन में त प्रत्यय के अपित् सार्वधातुक होने तथा उसके कारण एत्व तथा अभ्यास का लोप होकर तेने रूप बनता है।

मू०६७७-तनादिभ्यस्तथासोः २।४।७९ तनादेः सिचो वा लुक् स्यात् तथा सोः। अतत्। अतनिष्ट। अतथाः, अतनिष्ठाः। अतनिष्यत् अतनिष्यत।

अनु०-तन् आदि धातुओं से परे सिच् का लुक् विकल्प से होता है। त और थास् प्रत्ययों के परे रहते।

अतत--अतनित्-तन् धातु से लुङ् लकार में अडागम होने के पश्चात् आत्मनेपदीय त' प्रत्यय होने पर 'च्लिलुङ्' से च्लि तथा 'च्लेः सिच्' से 'सिच्' होकर 'तनादिभ्यस्तथासोः' से त प्रत्यय परे रहते सिच् का लोप होकर तथा 'अनुदात्तोपदेश वनति तनोत्यादीनाम् अनुनासिकलोपो झलि क्ङिति' सूत्र से नकार का लोप होकर अतत रूप बनेगा। जहां 'सिच्' का लोप नहीं होगा वहां पर उसे इडागम होकर 'अतनिष्ट' यह रूप सिद्ध होगा।

अतथाः-अतनिष्ठाः-में अडागम होकर के लुङ्लकार में आत्मनेपदीय थास् प्रत्यय के होने पर च्लि तथा च्लि का सिच् होगा

एवं सिच् का लोप होकर अतथास् हुआ। तथा न का 'अनुदात्तोपदेश:' आदि सूत्र से लोप होकर स् का रुत्व विसर्ग होकर 'अ तथा:' रूप सिद्ध हुआ। जहां सिच् का लोप नहीं हुआ वहां पर इडागम होकर तथा षत्व एवं ष्टुत्व होकर 'अतनिष्ठा:, रूप होगा।

तन् धातु का सम्पूर्णरूप इस प्रकार है।

लट्--परस्मैपद-प्र०पु०-तनोति-तनुत'-तन्वन्ति। म०पु०-तनोसि-तनुथ:-तनुथ। उ०पु०--तनोमि-तनुव:,-तन्व:--तनुम: तन्म:।

आत्मनेपद--तनुते-तन्वाते-तन्वते। म०पु०-तनुषे-तन्वाथे-तनुध्वे। उ०पु०-तन्वे-तनुवहे, तन्वहे-तनुमहे-तन्महे।

लिट् परस्मैपद--प्र०पु०-ततान--तेनतु:-तेनु:। म०पु०-तेनिथ-तेनथु:-तेन। उ०पु०-ततान-ततन-तेनिव-तेनिम।

आत्मनेपद--प्र०पु० तेने-तेनाते-तेनिरे। म०पु०-तेनिषे-तेनाथे-तेनिध्वे। उ०पु०-तेने-तेनिवहे-तेनिमहे।

लुट् परस्मैपद-प्र०पु०-तनिता-तनितारौ-तनितार:। म०पु० तनितासि-तनितथस्य:-तनितास्थ। उ०पु०-तनितास्मि-तनितास्व: तनितास्म:।

आत्मनेपद--प्र०पु०-तनिता-तनितारौ-तनितार:। म०पु०-तनितासे-तनितासाथे-तनिताध्वे। उ०पु०-तनिताहे-तनितास्वहे-तनितास्महे।

लृट्परस्मैपद—प्र०पु०-तनिष्यति-तनिष्यत:--तनिष्यन्ति। म०पु०-तनिष्यसि-तनिष्यथ:--तनिष्यथ! उ०पु०--तनिष्यामि-तनिष्याव:-तनिष्याम:।

आत्मनेपद—प्र०पु०-तनिष्यते-तनिष्येते-तनिष्यन्ते। म०पु०-तनिष्यसे-तनिष्येथे--तनिष्यध्वे। उ०पु०-तनिष्ये--तनिष्यावहे-

तनिष्यामहे ।

लोट्-परस्मैपद-प्र० पु०-तनोतु, तनुतात्-तनुताम्-तन्वन्तु । म० पु०-तनु, तनुतात्-तनुतम्-तनुत । उ० पु०-तनवानि-तनवाव-तनवाम ।

आत्मनेपद—प्र०पु०-तनुताम्-तन्वाताम्-तन्वताम् । म०पु० तनुस्व-तन्वाथाम्-तनुध्वम् । उ० पु०-तनवै-तनवावहै-तनवामहै ।

लङ्-परस्मैपद-प्र० पु०-अतनोत्-अतनुताम्-अतन्वन् । म०-पु०-अतनोः-अतनुतम्-अतनुत । उ० पु०-अतनवम्-अतनुव, अतन्व-अतनुम, अतन्म ।

आत्मनेपद-प्र० पु०-अतनुत-अतन्वातम्-अतन्वत् । म० पु०-अतनुथाः-अतन्वाथाम् अतनुध्वम् । उ० पु०-अतन्वि-अतनुवहि, अतन्वहि-अतनुमहि-अतन्महि ।

वि० लिङ्०-परस्मैपद--प्र०पु०-तनुयात्-तनुयाताम्-तनुयुः । म० पु०-तनुयाः-तनुयाताम्-तनुयात् । उ० पु०-तनुयाम्-तनुयाव-तनुयाम ।

आत्मनेपद--प्र० पु०-तन्वीत-तन्वीयाताम्-तन्वीरन् । म० पु०-तन्वीथाः-तन्वीयाथाम्-तन्वीध्वम् । उ० पु०-तन्वीय-तन्वीवहि-तन्वीमहि ।

आ०लिङ्-परस्मैपद-प्र०पु०-तन्यात्-तन्यास्ताम्-तन्यासुः । म० पु०-तन्याः-तन्यास्तम्-तन्यास्त । उ० पु०-तन्यासम्-तन्यास्व-तन्यास्म ।

आत्मनेपद--प्र० पु०-तनिषोष्ट-तनिषीयास्ताम्-तनिषीरन् । म० पु०-तनिषीष्ठाः-तनिषीयास्थाम्-तनिषीध्वम् । उ० पु०-तनिषीय-तनिषीवहि-तनिषीमहि ।

लुङ्-परस्मैपद--प्र०पु०-अतानीत्-अतानिष्टाम्-अतानिषुः । म० पु०-अतानीः-अतानिष्टम्-अतानिष्ट । उ० पु०-अतानिषम्-अतानिष्व-अतानिष्म ।

पक्षे—प्र० पु०-अतनीत्-अतनिष्टाम्-अतनिषुः। म० पु०-अतनीः-अतनिष्टम्-अतनिष्ट। उ० पु०-अतनिषम्-अतनिष्व-अतनिष्म।

आत्मनेपद—प्र० पु०-अतत-अतनिष्ट-अतनिषाताम्-अतनिषत। म० पु०-अतथाः अतनिष्ठाः-अतनिषाथाम्-अतनिढ्वम्। उ० पु०-अतनिषि-अतनिष्वहि-अतनिष्महि।

लृङ्-परस्मैपद—प्र० पु०-अतनिष्यत्-अतनिष्यताम्-अतनिष्यन्। म० पु०-अतनिष्यः-अतनिष्यतम्-अतनिष्य०। उ०पु०-अतनिष्यम्-अतनिष्याव-अतनिष्याम।

आत्मनेपद-प्र० पु०-अतनिष्यत-अतनिष्येताम्-अतनिष्यन्त। म० पु०-अतनिष्यथाः-अतनिष्येथाम्-अतनिष्यध्वम्। उ० पु०-अतनिष्ये-अतनिष्यावहि-अतनिष्यामहि।

अथ क्र्यादिगणः × क्री धातुः

मू०—डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये। ६८७-क्र्यादिभ्यःश्ना ।३।१।८१। शपोऽपवादः-क्रीणाति-ईहल्यघोः-क्रीणीतः। श्नाभ्यस्तयोरातः-क्रीणन्ति। क्रीणासि-कीणीथः-क्रीणीथ। क्रीणामि-क्रीणीवः-क्रोणीमः। क्रीणीते-क्रीणाते-क्रीणते। क्रीणीषे-क्रीणाथे-क्रणीध्वे। क्रीणे-क्रीणीवहे-क्रीणीमहे। चिक्राय-चिक्रीयतुः-चिक्रियुः। चिक्रेथ, चिक्रयिथ-चिक्रिये। क्रेता। क्रेष्यति-क्रेष्यते। क्रीणातु-क्रीणीतात्। क्रीणीताम्। अक्रीणात्-अक्रीणीत्। कोणीयात्-क्रोणीत। क्रीयात्-क्रेषीष्ट। अक्रैषीत्-अक्रेष्ट। अक्रेष्यत्-अक्रेष्यत।

अनु०—डुक्रीञ् धातु खरिदने के अर्थ में आता है। (यह धातु ञित् होने के कारण उभयपदी है। अनिट एवं ङिद्वत् भी है। डुक्रीञ् के डु तथा ञ् का लोप होकर केवल क्री मात्र बचता है। क्री से ही सभी कार्य होते हैं)।

क्री आदि क्र्यादिगण में पढे गये धातुओं से श्ना होता है।

श्नाविधि शर् आदि विधियों की अपवाद विधि है। क्रीणाति-खरीदता है। 'ई हल्यघोः' सूत्र से ईकार होकर क्रीणीते बनता है। 'श्नाभ्यस्तयोरातः' सूत्र से श्ना के आ का लोप होकर क्रीणन्ति रूप बनता है।

विमर्श-क्रीणाति—क्री धातु से लट् लकार परस्मैपदी तिप् प्रत्यय होने पर सार्वधातुकसंज्ञा 'क्र्यादिभ्यः श्ना' से श्ना प्रत्यय होकर तथा न को 'अट्कुप्वाङ् नुम्व्यवायेऽपि' से ण होकर क्रीणाति रूप बना।

क्रीणीतः--क्रीधातु से लट् लकार प्र०पु० द्वि०व० में तस् प्रत्यय होकर 'क्र्यादिभ्यः श्ना' मे श्ना प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध लोप होकर क्रीनातस् बना न का ण होकर तथा 'ई हल्यघोः' से ना के आ का ई होकर क्रीणीतस् बना। स् का रुत्व विसर्ग होकर क्रीणीतः रूप बना।

क्रीणन्ति--क्रीधातु से लट् लकार प्रथम पु० ब० व० मे झि प्रत्यय तथा श्ना होकर 'क्रीनाझि' बना। 'झोन्तः' से झ का अन्तादेश होकर 'क्रीना अन्ति' बना। न का ण होकर तथा 'श्नाभ्यस्तयोरातः' सुत्र से श्नाः के आ का लोप होकर 'क्रीणन्ति' रूप सिद्ध हुआ।

क्रीणीते--क्रीधातु से लट् लकार प्रथम पु० एक बचन में आत्मनेपदी त प्रत्यय होने पर श्ना प्रत्यय होकर तथा 'टित आत्मने पदानां टेरे' से टि का ए होने पर 'क्री ना ते' बना। न का ण होकर तथा 'ईहल्यघोः' से आ का ई होकर क्रीणीते रूप बना।

क्रीणते-क्रीधातु से आताम् प्रत्यय होकर श्ना होने पर तथा 'टित आत्मनेपदानाँ टेरे' से ए होकर 'क्रीना आते' बना। 'श्नाभ्यस्तयोरातः' से आ का लोप होकर तथा न का ण होकर क्रीणाते रूप बना।

चिक्राय—क्री धातु से लिट् लकार परस्मैद तिप् प्रत्यय होने पर तिप् को णलादेश तथा द्वित्वकार्य एवं अभ्यास संज्ञा होकर 'क्रीकी आ' बना। 'हलादिशेषः' सूत्र से प्रथम क्री के र का लोप होने पर 'ह्रस्वः' सूत्र से ई का ह्रस्व हुआ। फिर कुहोश्चुः से चुत्व कार्य होकर 'चिक्री अ' बना। अचोञ्णित' से क्री के ई की ऐ वृद्धि होकर अयादेश हुआ तो चिक्राय रूप बना।

चिक्रियतुः—क्री धातु से लिट् लकार में तस् प्रत्यय होकर तस् को अतुस् आदेश हुआ। फिर द्वित्व तथा आभास कार्य एवं 'हलादिशेष' होने पर ह्रस्वः से ह्रस्व तथा 'कुहोश्चुः' से चुत्व होने पर 'चिक्रीअतुस् बना। 'अचिश्नुधातुभ्रुवाँ योरियङुवङौ' से इयङादेश होने पर तथा स् का रुत्व विसर्ग होकर 'चिक्रियतुः' रूप सिद्ध हुआ।

क्रीणीतात्—में लोट लकार तिप् को तातङ् आदेश होकर तथा 'ई हल्यघोः से आ का ई होकर क्रीणीतात् रूप बना।

क्रीधातु का सम्पूर्णरूप इस प्रकार है।

लट्—परस्मैपद—प्र०पु०—क्रीणाति—क्रीणीतः—क्रीणन्ति। म०पु०—क्रीणासि—क्रीणीथः—क्रीणीथ। उ०पु०—क्रीणामि—क्रीणीवः—क्रीणीमः।

आत्मनेपद—प्र०पु०—क्रीणीते—क्रीणाते क्रीणते। म०पु०—क्रीणीषे क्रीणाथे—क्रीणीध्वे। उ०पु०—क्रीणे—क्रीणीवहे—क्रीणीमहे।

लिट्—परस्मैपद—प्र०पु०—चिक्राय—चिक्रीयतु—चिक्रीयुः। म०पु०—चिकयिथ, चिक्रेथ—चिक्रियथुः—चिक्रिय। उ०पु०—चिक्राय—चिकय-चिक्रियिव—चिक्रियिम।

आत्मनेपद—प्र०पु०—चिक्रिये—चिक्रियाते—चिक्रियिरे। म०पु०—चिक्रियिषे—चिक्रियाथे—चिक्रियिध्वे—ढ्वे। उ०पु०—चिक्रिये—चिक्रियिवहे—चिक्रियिमहे।

लुट्—परस्मैपद—प्र०पु०—क्रेता—क्रेतारौ—क्रेतारः। म०पु०—

क्रेतासि-क्रेतास्थः-क्रेतास्थ। उ०पु०-क्रेतास्मि-क्रेतास्वः-क्रेतास्मः।

आत्मनेपद-प्र० पु०-क्रेता-क्रेतारौ-क्रेतारः। म०पु०-क्रेतासे-क्रेतासाथे-क्रेताध्वे। उ० पु०-क्रेताहे-क्रेतास्वहे-क्रेतास्महे।

लृट्-परस्मैपद-प्र० पु०-क्रेष्यति-क्रेष्यतः-क्रेष्यन्ति। म०-पु०-क्रेष्यसि-क्रेष्यथः-क्रेष्यथ। उ० पु०-क्रेष्यामि-क्रेष्यावः-क्रेष्यामः।

आत्मनेपद—प्र० पु०-क्रेष्यते-क्रेष्येते-क्रेष्यन्ते। म० पु०-क्रेष्यसे-क्रेष्येथे-क्रेष्यध्वे। उ० पु०-क्रेष्ये-क्रेष्यावहे-क्रेष्यामहे।

लोट्-परस्मैपद-प्र०पु०-क्रीणातु-क्रीणीतात्-क्रीणीताम्-क्रीणन्तु। म० पु०-क्रीणीहि, क्रीणीतात्-क्रीणितम्-क्रीणीत। उ० पु०-क्रीणानि-क्रीणाव-क्रीणाम।

आत्मनेपद-प्र० पु०-क्रीणीताम्-क्रीणाताम्-क्रीणताम्। म०-पु०-क्रीणीष्व-क्रीणाथाम्-क्रीणीध्वम्। उ० पु०-क्रीणै-क्रीणावहै-क्रीणमहै।

लङ्-परस्मैपद-प्र० पु०-अक्रीणात्-अक्रीणीताम्-अक्रीणन्। म० पु०-अक्रीणाः-अक्रीणीतम्-अक्रीणीत। उ० पु०-अक्रीणाम्-अक्रीणीव-अक्रीणीम।

आत्मनेपद-प्र० पु०-अक्रीणीत-अक्रीणाताम्-अक्रीणत। म० पु०-अक्रीणीथाः-अक्रीणाथाम्-अक्रीणीध्वम्। उ० पु०-अक्रीणि। अक्रीणीवहि-अक्रीणीमहि।

वि० लि० परस्मैपद—प्र० पु०-क्रीणीयात्-क्रीणीयाताम्-क्रीणीयुः। म० पु०-क्रीणियाः-क्रीणियातम्-क्रीणीयात। उ०पु०-क्रीणीयाम्-क्रीणीयाव-क्रीणीयाम।

आत्मनेपद-प्र० पु०-क्रीणीत-क्रीणीयाताम्-क्रीणीरन्। म०-पु०-क्रीणीथाः-क्रीणीयाथाम्-क्रीणीध्वम्। उ० पु०-क्रीणीय-क्रीणीवहि-क्रीणिमहि।

आशीर्लिङ् परस्मैपद—प्र०पु०-क्रीयात्-क्रीयास्ताम्-क्रीयासुः। म०पु०-क्रीयाः-क्रीयास्तम्-क्रीयास्त। उ०पु०-क्रीयासम्--क्रीयास्त्र-क्रियास्म।

आत्मनेपद—प्र०पु०--क्रेषीष्ट--क्रेषीयास्ताम्--क्रेषीरन्। म०पु०-क्रेषीष्ठाः-क्रेषीयास्थाम्—क्रेषीढ्वम्। उ०पु०-क्रेषीय-क्रेषीवहि-क्रेषीमहि।

लुङ् परस्मैपद—प्र०पु०--अक्रैषीत्--अक्रैष्टाम्--अक्रैषुः। म०म०-अक्रैषीः-अक्रैष्टम्-अक्रैष्ट। उ०पु०-अक्रैष्टम्-अक्रैष्व-अक्रैष्म।

आत्मनेपद--प्र०पु०-अक्रेष्ट-अक्रेषाताम्-अक्रेषत। म०पु०-अक्रेष्ठाः--अक्रेषाथाम्--अक्रेढ्वम्। उ०पु०--अक्रेषि--अक्रेष्वहि-अक्रेष्महि।

लृङ् परस्मैपद—प्र०पु०-अक्रेष्यत्--अक्रेष्यताम्-अक्रेष्यन्। म०पु०-अक्रेष्यः-अक्रेष्यतम्-अक्रेष्यत। उ०पु०-अक्रेष्यम्-अक्रेष्याव अक्रेष्याम

अथ चुरादिगणः-चुर्धातु०

मू०--चुरस्तेये। ६५७-सत्यापपाशरूपवीणातूलश्लोकसेना लोमत्व चवर्मवर्णचूर्णचुरादिभ्यो णिच्। ३।१।२५। एभ्यो णिच् स्यात्। चूर्णान्तेभ्यः 'प्रातिपदिकाद्धात्वर्थे' इत्येव सिद्धे तेषामिह ग्रहणं प्रपञ्चार्थम्, चुरादिभ्यस्तु स्वर्थे। पुगन्त इति गुणः। सनाद्यन्ता इति धातुत्वम्। तिप् शवादि, गुणायादेशौ। चोरयति।

अनु०-चुर्धातु चोरी करने के अर्थ में आता है। ६९७-सत्याप-पाश-रूप-वीणा-तूल-श्लोक-सेना-लोमन्-त्वच्-वर्मन्-वर्ण-चूर्ण तथा चुर् आदि धातुओं से णिच् प्रत्यय होता है। (णिच् के ण् और च् की इत्संज्ञा तथा लोप होकर केवल इ मात्र बचता है। णिच् णित् होने के कारण अवसरानुसार गुण और वृद्धि का कारण होता है।)

सूत्र के सत्याप शब्द से लेकर चूर्ण पर्यन्त सभी शब्दों की 'प्रातिपदिकाद् धात्वर्थे' इत्यादि वार्तिक से ही धातुसंज्ञा होकर णिच् प्रत्यय होना संभव होने से यहां पर (इस सूत्र में) इन सभी शब्दों का संग्रह करके उनसे णिच् का विधान करना विस्तार के लिए ही है। उनका कोई विशेष प्रयोजन नहीं है।

हां चुरादि गण में पढ़े गये चुर आदि धातुओं से णिच् का विधान स्वार्थ (धात्वर्थ) में ही होता है। (यहां पर णिच् प्रत्यय का धात्वर्थ से कोई अतिरिक्त अर्थ नहीं होता है। चोरयति में पुगन्तलघूपधस्य' सूत्र से गुण होता है तथा 'चोरि' की 'सनाद्यन्ता धातवः' से धातुसंज्ञा होकर तिप् प्रत्ययादि होते हैं।

चोरयति—चुर् धातु से 'सत्यापपाशरूपवीणाः इत्यादि सूत्र से णिच् प्रत्यय तथा अनुबन्ध लोप होने पर णिच् के आर्धधातुक होने से पुगन्तलघू। 'पधसूत्र' से चुर् के इगन्त अंग उ का ओ गुण होकर 'चोरि' बना फिर 'सनाद्यन्ता धातवः' से 'चोरि' की धातुसंज्ञा हुई। फिर चोरि से लट् लकार प्रथम पुरुष ए०व० में तिप् प्रत्यय होकर उसकी 'सार्वधातुक संज्ञा' हुई और शप् होकर 'सार्वधातुकार्ध धातुकयोः। से गुण होकर अयादेश होने पर चोरयति इस रूप की सिद्धि हुई।

मू०—६९८–णिचश्च १।३।७४। णिजन्तादात्मनेपदं स्यात् कर्तृगामिनि क्रिया फले। चोरयते। चोरयामास। चोरयिता। चोर्यात् चोरयिषीष्ट।

अनु०–यदि क्रिया का मुख्य फल कर्ता को प्राप्त हो तो णिजन्त से आत्मनेपद के प्रत्यय होते हैं।

चोरयते चुर्धातु से 'सत्यापयाशरूपवीणा' इत्यादि सूत्र से णिच् प्रत्यय होने पर। णिच् के आर्धधातुक होने से 'पुगन्तलघूपधस्य' से गुण होकर 'चोरि' बना। 'सनाद्यन्ताधातवः' से चोरि की धातु संज्ञा होने पर।

'णिचश्च' सूत्र के सहकार से आत्मनेपदीय त प्रत्यय होकर 'टित आत्मने पदानां टेरे' से एत्व हुआ फिर 'सार्विधातुकार्धधातु-कयोः' से इगन्त अंग का गुण होने पर अयादेश होकर 'चोरयते' इस रूप की सिद्धि हुई।

लिट् लकार में 'चोरयामास' रूप बना।

मू०—णिश्रीतिचङ्, णौचङीतिह्रस्वः, चङीति द्वित्वम्, हलादिशेषः, दीर्घोलघोरित्यभ्यासस्य दीर्घः। अचूचुरत्-अचूचुरत।

अनुवाद—अचूचुरत् में-णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरिचङ्' से कर्ता अर्थ में च्लि को चङ् आदेश होता है। 'णौ चङ्युपधायाः' सूत्र से उपधा को ह्रस्व होता है। 'चङि' सूत्र से धातु के एकाच् (एक अच् वाले) अवयव को द्वित्व होता है। 'हलादिशेषः' से अन्तिम हल् का लोप होता है तथा 'दार्घोलघोः' सूत्र से अभ्यास को दीर्घ होता है।

अचूचुरत्-चुर् धातु से लुङ् लकार में अडागम होने पर प्र० पु० ए० व० में तिप्प्रत्य होकर, 'च्लिलुङि' से च्लि हुआ और च्लि को 'णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरिचङ्' से चङ् हो गया। 'चङि' से चुर को द्वित्व होकर अचुर्चुरति बना'। 'हलादिशेषः' से प्रथम 'चुर्' के र् का लोप होकर 'अचुचुरति' बना। 'दीर्घो लघोः' से प्रथम चु के उ का दीर्घ हुआ और 'इतश्च' इ का लोप होकर अचूचुरत् रूप की सिद्धि हुई।

आत्मनेपद में अचूचुरत रूप होगा।

चुर् धातु के सम्पूर्ण रूप इस प्रकार है

लट्-परस्मैपद—प्र० पु०—चोरयति—चोरयतः-चोरयन्ति। म० पु०—चोरयसि-चोरयथः-चोरयथ। उ० पु०—चोरयामि—चोरयावः—चोरयामः।

आत्मनेपद—प्र० पु०—चोरयते-चोरयेते-चोरयन्ते। म० पु०—चोरयसे-चोरयेथे-चोरयध्वे। उ०पु०—चोरये-चोरयावहे-चोरयामहे।

लिट्-परस्मैपद--प्र० पु०-चोरयामास-चोरयामासतुः-चोरयामासुः । म० पु०-चोरयामासिथ-चोरयामासथुः-चोरयामास । उ० पु०-चोरयामास-चोरयामासिव-चोरयाभासिम ।

आत्मनेपदे--प्र० पु०-चोरयाञ्चके-चोरयाञ्चक्राते-चोरयाञ्चक्रिरे । म० पु०-चोरयाञ्चकृषे-चोरयाञ्चक्राथे-चोरयाञ्चकृढ्वे । उ० पु०-चोरयाञ्चक्रे-चोरयाञ्चकृवहे-चोरयाञ्चकृमहे ।

लुट्-परस्मैपद-प्र० पु०-चोरयिता-चोरयितारौ-चोरयितारः । म० पु०-चोरयितासि-चोरयितास्थः-चोरयितास्थ । म० पु०-चोरयितास्मि-चोरयितास्वः-चोरयितास्मः ।

आत्मनेपद--प्र० पु०-चोरयिता-चोरयितारौ-चोरयितारः । म० पु०-चोरयितासे-चोरयितासाथे-चोरयिताध्वे। उ० पु०-चोरयिताहे-चोरयितास्वहे-चोरयितास्महे ।

लृट्-परस्मैपद--प्र० पु०-चोरयिष्यति-चोरयिष्यतः-चोरयिष्यन्ति । म० पु०-चोरयिष्यसि-चोरयिष्यथः-चोरसिष्यथ । उ०-पु०-चोरयिष्यामि-चोरयिष्यावः-चोरयिष्यामः ।

आत्मनेपद--प्र० पु०-चोरयिष्यते-चोरयिष्येते-चोरयिष्यन्ते । म० पु०-चोरयिष्यसे-चोरयिष्येथे-चोरयिष्यध्वे । उ० पु०-चोरयिष्ये-चोरयिष्यावहे-चोरयिष्यामहे ।

लोट्-परस्मैपद--प्र० पु०-चोरयतु, चोरयतात्-चोरयताम्-चोरयन्तु । म० पु०-चोरय, चोरयतात्-चोरयतम्-चोरयत । म०-पु०-चोरयाणि-चोरयाव-चोरयाम ।

आत्मनेपद--प्र० पु०-चोरयताम्-चोरयेताम्-चोरयन्ताम् । म० पु०-चोरयस्व-चोरयेथाम्-चोरयध्वम् । उ० पु०-चोरयै-चोरयावहै-चोरयामहै ।

लङ्-परस्मैपद—अचोरयत्-अचोरयताम्-अचोरयन् । म०पु०-अचोरयः-अचोरयतम्-अचोरयत । उ० पु०-अचोरयम्-अचोरयाव-

अचोरयाम।

आत्मनेपद—प्र० पु०—अचोरयत–अचोरयेताम्–अचोरयन्त। म०पु०—अचोरयथाः–अचोरयेथाम्–अचोरयध्वम्। उ० पु०—अचोरये–अचोरयावहि–अचोरयामहि।

वि० लि०—परस्मैपद–प्र० पु०—चोरयेत्–चोरयेताम्–चोरयेयुः। म० पु०—चोरयेः–चोरयेतम्–चोरयेत। उ० पु०—चोरयेयम्–चोरयेव–चोरयेम।

आत्मनेपद—प्र० पु०—चोरयेत–चोरयेयाताम्–चोरयेरन्। म०-पु०—चोरयेथाः–चोरयेयाथाम्–चोरयेध्वम्। उ० पु०—चोरयेय–चोरयेवहि–चोरयेमहि।

आ० लि०—परस्मैपद—प्र० पु०—चोर्यात्–चोर्यास्ताम्–चोर्यासुः। म० पु०—चोर्याः–चोर्यास्तम्–चोर्यास्त। उ० पु०—चोर्यासम्–चोर्यास्व–चोर्यास्म।

आत्मनेपद—प्र० पु०—चोरयिषीष्ट–चोरयिषीयास्ताम्–चोरयिषीरन्। म०पु०—चोरयिषीष्ठाः–चोरयिषीयास्थाम्–चोरयिषीध्वं–ढ्वं। उ० पु०—चोरयिषीय–चोरयिषीवहि–चोरयिषीमहि।

लुङ्—परस्मैपद—प्र० पु०—अचूचुरत्–अचूचुरताम्–अचूचुरन्। म० पु०—अचूचुरः–अचूचुरतम्–अचूचुरत। उ० पु०—अचूचुरम्–अचूचुराव–अचूचुराम!

आत्मनेपद—प्र० पु०—अचूचुरत–अचूचुरेताम्–अचूचुरन्त। म० पु०—अचूचुरथाः–अचूचुरेथाम्–अचूचुरध्वम्। उ० पु०—अचूचुरे–अचूचुरावहि–अचूचुरामहि।

लृङ्—परस्मैपद—प्र० पु०—अचोरयिष्यत्–अचोरयिष्यताम्–अचोरयिष्यन्। म० पु०—अचोरयिष्यः–अचोरयिष्यतम्–अचोरयिष्यत। उ० पु०—अचोरयिष्यम्–अचोरयिष्याव–अचोरयिष्याम।

आत्मनेपद—प्र० पु०—अचोरयिष्यत—अचोरयिष्येताम्–

अचोरयिष्यन्त। म०पु-अचोरयिष्यथाः-अचोरयिष्येथाम्--अचरयिष्यध्वम्। उ०पु०-अचोरयिष्ये-अचोरयिष्यावहि-अचोरयिष्यामहि।

अथण्यन्तप्रक्रिया

सू०-७०१-स्वतन्त्रः कर्ता १।४।५४। क्रियायां स्वातंत्र्येण विवक्षितोर्थः कर्ता स्यात्।

अनु०-क्रिया के करने में जो कारक स्वतंत्र रूप से विवक्षित होता है उसे कर्ता कहते हैं।

विमर्श-विवक्षित कहने का अभिप्राय है कि कर्ता वाक्य प्रयोक्ता के मनके अनुसार कोई भी हो सकता है। 'रामो गच्छति' वाक्य का कर्ता राम है क्योंकि वह गमन क्रिया के करने में स्वतन्त्र रूप से विवक्षित है। इसी तरह 'नदी बहति' में कर्ता नदी है तथा 'खगाः उड्डीयन्ते' वाक्य का कर्ता खगाः शब्द है।

सू०७०२--तत्प्रयोजको हेतुश्च १।४।४४। कर्तुः प्रयोजको हेतुसंज्ञः कर्तृसंज्ञश्च स्यात्।

अनु०-कर्ता का जो प्रेरक होता है उसकी हेतु संज्ञा और कर्तृसंज्ञा भी होता है।

विमर्श--कर्ताको क्रिया करने के लिए यदि कोई दूसरा व्यक्ति उसे प्रेरित करता है- तो उस प्रेरित करने वाले व्यक्ति को प्रयोजक अथा प्रेरक कहते हैं। उस प्रेरक की प्रकृतसूत्र से हेतु संज्ञा और कर्ता संज्ञा होती है। उदाहरणार्थ- छात्रः पठति गुरुस्त पठितुं प्रेरयति' इस अर्थ में वाक्य होगा 'गुरुछात्रं पाठयति'। इस वाक्य में पढने वाले छात्र से भिन्न उसका गुरु उसे पढने के लिए प्रेरित करते हैं अतः गुरु को प्रयोजक कहा जायगा; और प्रकृत सूत्र से उस प्रयोजक की हेतुसंज्ञा और कर्तृसंज्ञा होगी।

७०३--हेतुमति च ३।१।२६ प्रयोजक व्यापारे पेषणादो वाच्ये धातोणिच् स्यात्। भवन्तं प्रेरयति भावयति।

अनु०—यदि प्रयोजक के व्यापार प्रेषण आदि वाच्य हों तो धातु से णिच् प्रत्यय होता है। जैसे—होने के लिये प्रेरित कर रहा हैं। इस अर्थ को बतलाने के भू धातु से प्रेरणार्थक णिच् प्रत्यय का प्रयोग करके भावयति वाक्य बनता है।

भावयति—'भवन्तं प्रेरयति' (होने के लिए प्रेरणा करता है-इस अर्थ में भू धातु से 'हेतुमति च' सूत्र के द्वारा णिच् प्रत्यय हुआ। णिच् का अनुबन्ध लोप होने पर णिच् के णित् होने के कारण 'अचोञ्णिति' सूत्र से भू के उ की औ वृद्धि हुई और उसको आवादेश होने पर 'भावि' बना फिर भावि की 'सनाद्यन्ता धातवः' सूत्र से धातुसंज्ञा हुई और उससे तिप् प्रत्यय होकर उसकी सार्वधातुकसंज्ञा हुई। 'कर्तरि शप्' से शप् तथा सार्वधातुकार्धधातुकयोः' सूत्र से गुण होने पर, अयादेश होकर भावयति इस रूप की सिद्धि हुई।

मू०—ष्ठा गति निवृत्तौ। ७०५—अर्ति-ह्री-व्ली री-क्नूयी-क्ष्माय्यातां पुङ्णौ।७।३।३६। स्थापयति।

अनु३—'ष्ठा' धातु रुक जाने के अर्थ में आता हैं। ७०५—ऋ, ह्री, ब्ली, री, क्नूयी, क्ष्मायी तथा अकारान्त धातुओं से पुक् का आगम होता है। (पुक् में उ और क् की इत्संज्ञा होती हैं, केवल प् ही बचा रहता है।)

स्थापयति—गति निवृत्यर्थक (रुक जाना अर्थवाले) ष्ठा-धातु के ष् का 'धात्वादेः षः सः' इस सूत्र से स होजाने पर हेतुमति च सूत्र से णिच् हुआ। उसका अनुबन्ध लोप होने पर 'अर्ति ह्री-ब्ली-री-क्नूयी-क्ष्माय्यातां-पुङ्णौ' सूत्र से पुक् का आगम हुआ तो स्थापि बना। पुनः 'सनाद्यन्ता धातवः' से धातुसंज्ञा; होकर प्रथम पुरुष एक वचन कीविवक्षा। में तिप् प्रत्यय और उसकी सार्वधातुकसंज्ञा हुई। 'कर्तरिशप्' से शप् हुआ और सार्व-

धातुकार्धधातुकयोः' से इगन्त अंग का गुण होकर अयादेश होकर स्थापयति इस रूप की सिद्धि हुई।

अथ सनन्तप्रक्रिया

मू०-७०८ धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा। ३।१।७। इषिकर्मण: इषिणैककर्तृकाद् धातोः सन् प्रत्ययो वा स्यादिच्छायाम्। पठ-व्यक्तायां वाचि।

अनु०-इच्छा के कर्म और कर्ता दोनों ही यदि धातु वाच्य क्रिया के वाच्य हों तो इच्छा के अर्थ में धातु से सन् प्रत्यय होता है विकल्प से। पठ् धातु पढने के अर्थ में आता है।

विमर्श-सन् प्रत्यय इच्छार्थक है। यह वैकल्पिक प्रत्यय है। अतएव इसके बदले में तुमुन् का भी प्रयोग किया जा सकता है। इच्छा की जाने वाली क्रिया को कर्म के रूप होने पर ही सन् प्रत्यय होता है। सन् का स् ही शेष रहता है।

मू०-७०९-सन्यङोः ६।१।९ सनन्तस्य यङन्तस्य च प्रथमस्यैकाचो द्वे स्तः अजादेस्तु द्वितीयस्य। सन्यतः-पठितुमिच्छति-पिपठिषति।

अनु०-सनन्त एवं यङन्त धातु के प्रथम एकाच् को द्वित्व होता है तथा अजादि धातु हो तो उसके द्वितीय एकाच् को द्वित्व होता है।

सन्यतः सूत्र से अभ्यास के अकार को इकार होकर 'पढना चाहता है' इस अर्थ में पिपठिषति रूप बनता।

विमर्श-पिपठिषति--पठ् धातु से इच्छा अर्थ में 'धातोः कर्मणः समान कर्तृकादिच्छायां वा' सूत्र से सन् प्रत्यय हुआ। सन् को आर्धधातुकसंज्ञा हुई और उसके वलादि आर्धधातुक होने से 'आर्धधातुकस्येड् वलादेः' से इडागम होकर पठिस बना। स् का ष होकर पठिष् बना। फिर 'सन्यङोः' सूत्र से पठ् को द्वित्व

होकर 'पठ्पठिष' बना। पठ की अभ्यास सञ्ज्ञा और 'हलादिशेष' होकर पपठिष बना। 'सन्यतः' सूत्र से अभ्यास के अ का इ होकर पिपठिष् होने पर 'सनाद्यन्ताधातवः' से धातु संज्ञा हुई। धातुत्वात् तिप् शप् होकर पिपठिषति बना।

मू०-७११ इकोझल्_ १।२।९। इगन्ताद् झलादिः सन् कित् स्यात्। ऋत इद्धातोः। कर्तुमिच्छति-चिकीर्षति।

अनु०—इगन्त से परे झलादि सन् कित् होता है। 'ऋत इद्धातोः' सूत्र से ऋ का इर् होकर चिकीर्षति रूप 'करना चाहता है' के अर्थ में बनता है।

चिकीर्षति--करना चाहता है इस अर्थ में कृ धातु से इच्छा अर्थ में सन् प्रत्यय होने पर 'एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्' सूत्र से 'आर्धधातुक इडागम की प्राप्ति का निषेध हो गया और 'अज्झनगमां सनि' सूत्र से कृ को दीर्घ हो गया। फिर 'इकोझल्' सूत्र से सन् कित् हो गया। अतएव 'विङतिच' सूत्र से ऋकार के प्राप्त आर्धधातुक गुण का निषेध हो गया। 'ऋतइद् धातोः' सूत्र से ऋ को इर आदेश होने पर 'किर स्' बना। 'हलि च' से इको दीर्घ होने से 'कीर् स्' बना। फिर 'सन्यङोः' सूत्र से द्वित्व तथा अभ्यास कार्य होने पर 'कीकीर् स' बना। 'ह्रस्वः' से ह्रस्व तथा 'कुहोश्चुः' से चुत्व होने पर 'चिकीर् स्' बना। इसके पश्चात् 'सनाद्यन्ता-धातवः' से धातु संज्ञा होने पर तिप्, शप्, षत्व कार्य होकर 'चिकीर्षति' बना।

मू० ७१३-सनिग्रहगुहोश्च ७।२।१२। ग्रहेः गुहेः, उगन्ताच्च सन इण्नस्यात् ।बुभूषति।

अनु०--ग्रह, गुह और उगन्त धातुओं से परे सन् को इट् नहीं होता है। होना चाहता है-इस अर्थ में बुभूषति रूप बनता है।

बुभूषति--'भवितुमिच्छति' के अर्थ में भू धातु से 'धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां' सूत्र से सन् प्रत्यय होने पर सन् के आर्धधातुक होने के कारण आर्धधातुक इट् की प्राप्ति हुई, किन्तु 'सनिग्रहगुहोश्च' सूत्र से इट् का निषेध हो जाने पर 'इको झल्' सूत्र से सन् कित् हो गया। और उसके कारण गुण का निषेध हो गया। फिर 'सन्यङोः' सूत्र से द्वित्व तथा अभ्यास कार्य होने पर 'ह्रस्वः' से ह्रस्व होकर भूभुस् बना। 'अभ्यासे चर्च' से भ को जश् ब होने पर बुभूस् बना। फिर 'सनाद्यन्ता धातवः' से धातुसंज्ञा और धातुत्वांङ तिप्, शप् और षत्व होकर बुभूषति रूप बना।

अथ यङन्तप्रक्रिया

सू० ७१४-धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्। ३।१।२२। पौनः पुन्ये भृशार्थे च द्योत्ये धातोरेकाचो हलादेर्यङ् स्यात्।

अनु०--क्रिया के बार-बार होने अथवा अत्यधिक होने के अर्थ का सूचित करने के लिए एकाच् हलादि धातु से यङ् होता है।

विमर्श--यङ् प्रत्यय का विधान उपर्युक्त सूत्र एकाच् और हलादि धातु से करता है, अतएव अनेकाच् और अजादिधातु से यङ् प्रत्यय नहीं होगा।

यङ् प्रत्यय धातु से विकल्प से होता है, अतएव इस प्रत्यय का जहां प्रयोग नही होता है वहाँ पर इस प्रत्यय के अर्थ का अभिव्यक्त करने के लिए अर्थ का भी प्रयोग किया जाता है। जैसे-पुनः पौन्येन भवति, 'भृशं भवति' इत्यादि।

सू० ७१५-गुणो यङ्लुकोः ७।४।८२। अभ्यासस्य गुणो यङि लुकि च परतः। ङिदन्तत्वादात्मने पदम्। पुनः पुनरतिशयेन वा भवति बोभूयते।

अनु०—यङ् अथवा यङ् लुक् परे रहते अभ्यास को गुण होता है। यङ् ङित् प्रत्यय है अतएव उससे आत्मनेपद के प्रत्यय होंगे। बार-वार अथवा अधिक होने के अर्थ में बोभूयते रूप बनता है।

बोभूयते—पुनः पुनः अतिशयेन वा भवति इस अर्थ में भू धातु से 'धातोरेकाचोहलादेः क्रिया समभिहारे' सूत्र से यङ् प्रत्यय होकर 'भूय' बना। 'सन्यङोः' सूत्र से प्रथम एकाच् भू को द्वित्व होकर 'भूभूय्' बना 'पूर्वोभ्यासः' से प्रथम भू की अभ्यास संज्ञा होने पर 'गुणोयङ् लुकोः' से प्रथम भू को गुण होकर 'भोभूय' बना। 'अभ्यासे चर् च' से जश होकर बोभूय' बना। फिर आत्मनेपदी 'त' प्रत्यय तथा 'शप्' होकर तथा 'अतोगुणे' से पररूप होकर बोभूयते बना। 'टित आत्मनेपदानां टेरे' से एहोकर 'बोभूयते' यह रूप सिद्ध हुआ।

अथ यङ्लुक्प्रक्रिया

मू०—७२१-यङोऽचि च २।४।७४। यङोचि प्रत्यये लुक् स्यात्; चकारत्तंविनापि क्वचित् अनंमित्तिकोऽयमन्तरङ्गत्वादादौ भवति। ततः प्रत्ययलक्षणेन यङन्तत्वाद्द्वित्वम्। अभ्यासकार्यम्। धातुत्वाल्लडादयः। शेषात्कर्तरीति परस्मैपदम्। चर्करीतं च-इति अदादीगाठात् शपोलुक्।

अनु०—अच् प्रत्यय परे रहे तो भी यङ् का लुक् होता है और कहीं-कहीं पर अच् प्रत्यय नहीं परे रहने पर भी यङ् का लुक् होता है। यङ् के लुक् होने का कोई कारण नहीं है, अतएव यह यङ् का लुक् अनिमित्ति है। अनिमित्तकक होने के कारण यह अन्तरङ्ग है, जो अन्तरङ्ग होता है वह पहले होता है अतएव यङ् का लुक् पहले होगा और 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' इस नियम के अनुसार यङन्त मानकर द्वित्व तथा अभ्यास आदि कार्य एवं धातुसंज्ञा होकर लट् आदि का आदेश कार्य पीछे

होगा । चर्करीतम् यह अदादिगण में पाठ है । चर्करीत यङ्लुक् को कहते हैं । यङ्लुक् का अदादिगण में पाठ है । अतएव यहां शप् आदि का लोप होगा ।

मू०--यङो वा ७।३।९४। यङ्लुगन्तात्परस्य हलादेः पितः सार्व-धातुकस्येड् वा स्यात् । 'भू-सुवोः' इति गुणनिषेधो यङ्लुकि भाषायां न । 'बोभूतु-तेतिक्ते' इति छन्दसि । बोभवीति ।

अनु०--यङ् लुगन्त से परे हलादि सार्वधातुक को इट् का आगम विकल्प से होता है । 'बोभूतु तेतिक्ते' यह सूत्र यङ् का लुक् होने पर छान्दस गुण का निषेध निपातनात् करता है । इससे सूचित होता है कि लौकिक-संस्कृत (भाषा) में गुण का निषेध नहीं होता है । क्योंकि यदि लौकिक संस्कृत में भी यङ् लुक् रहने पर गुण का निषेध होता ही तो फिर 'बोभूतु-तेति-क्ते' सूत्र से निपातनात् छान्दस गुण का निषेध क्यों किया जाता ?

बोभवीति बोभोति--'पुनः पुनः अतिशयेन वा भवति' के अर्थ में भू धातु से यङ् प्रत्यय हुआ और उसका 'यङोऽचि च' सूत्र से लोप हो गया । पुनः 'प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम्' नियम के अनुसार भू का द्वित्व हो गया । फिर 'पूर्वोऽभ्यासः' से अभ्यास संज्ञा हुई । प्रथम भू के उका गुण होकर तथा भ का जश् होकर 'बोभू' बना । इसकी पुनः 'सनाद्यन्ताधातवः' से धातुसंज्ञा होकर धातुत्वात् लट् तिप् तथा तिप् के हलादिपित् सार्वधातुक होने के कारण 'यङोवा' सूत्र से इडागम हो गया । पुनः 'सार्वधातुकार्ध-धातुकयो.' से भू के उका ओ गुण होकर तथा अवादेश होकर 'बोभवीति' रूप बना । जहां पर इडागम नहीं हुआ वहां 'बोभोति' बना ।

* अथ कृदन्तप्रकरणम् *

अथ कृत्य प्रक्रिया

मू०७६९--धातोः ३।१।९१। आतृतीयाध्याय प्रर्यन्तं ये प्रत्ययाः, धातोः ऐव स्युः। कृदतिङ् इति 'कृत्' संज्ञा।

अनु०-३।१।९१ सूत्र से लेकर तीसरे अध्याय की समाप्ति पर्यन्त जो प्रत्यय कहे गये हैं वे धातु से परे होते हैं। उन धातुओं से परे होने वाले प्रत्ययों की 'कृदतिङ्' सूत्र से कृत्संज्ञा होती है।

मू०-७७०-वाऽसरूपोऽस्त्रियाम् ३।१।९४। अस्मिन् धात्वधिकारेऽसरूपोऽपवादप्रत्यय उत्सर्गस्य बाधको वा स्यात् स्त्र्यधिकारोक्तं विना।

अनु -इस धातु के अधिकार में कहा गया जो असरूप अपवाद प्रत्यय वह उत्सर्ग (सामान्य) का बाधक विकल्प से होता है। किन्तु स्त्रियाम् क्तिन् ३।१।९४। सूत्र के अधिकार में कहे गये प्रत्ययों को छोड़कर।

विमर्श-असरूप अपवाद प्रत्ययों के वैकल्पिक होने के कारण ही 'अचोयत्' 'ऋहलोर्ण्यत्' इत्यादि सूत्रों से होने वाले प्रत्ययों के प्रवृत्तिस्थल में 'तव्यत्' आदि भी प्रत्यय हो जाते हैं। इस सूत्र का प्रयोजन यह है कि सर्वत्र अपवाद शास्त्र की ही प्रवृत्ति न हो कहीं-कहीं सामान्य शास्त्र की भी प्रवुत्ति हो। इसीलिए कर्तव्यम् करणीयम्-कार्यम्, भव्यम्-भवितव्यम् आदि भी प्रयोग होते हैं।

मू० ७७१--कृत्या ७।१।९५। 'ण्वुलतृचौ' ३।१।१३३। इत्यतः प्राक् कृत्यसंज्ञाः स्युः।

अनु०--'ण्वुलतृचौ' सूत्र से पहले होने वाले प्रत्ययों की कृत्य संज्ञा होती है।

मू० ७७२--कर्तरि कृत् . ३।४।६७। कृत्प्रत्ययः कर्तरि स्यात्। इति प्राप्ते-

अनु०—कृत् प्रत्यय कर्ता के अर्थ में होते हैं, इस सूत्र से सभी कृत्प्रत्ययों की कर्ता के अर्थ में प्राप्ति होने पर।

मू० ७७३--तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः ३।४।७०। एते भावकर्मणोरेव स्युः।

अनु०-कृत्य, क्त और खलर्थं प्रत्यय भाव और कर्म में ही होते हैं, कर्ता में नहीं। अतएव इन तीनों प्रत्ययों के प्रयोग में कर्ता कर्मवाच्य और भाववाच्य के समान अनुक्त रहता है अतः उसमें तृतीया विभक्ति होती है। जैसे 'रामेण तत्रावश्यं भाव्यम्' इत्यादि।

मू० ७७४--तव्यत्तव्यानीयरः ३।१।९६। धातोरेते प्रत्ययाः स्युः। एधितव्यम् एधनीयं त्वया। भावे-औत्सर्गिकम् एक वचनं क्लीवत्वम्। चेतव्यः चयनीयो वा धर्मस्त्वया।

अनु०--धातु से तव्यत्, तव्य और अनीयर प्रत्यय होते हैं। (तव्यत् प्रत्यय का त् इत्संज्ञक है। तित् होने के कारण 'तित्स्वरितम्' सूत्र से यह स्वरित होती है। तव्य प्रत्यय से स्वरित होने के कारण ही तव्यत् प्रत्यय भिन्न है। अनियर का र् इत्संज्ञक है।

एधितव्यम्-एध् धातु अकर्मक है अतएव उससे 'तयोरेव कृत्यक्त खलार्थाः' सूत्र के सहकार से भाव में 'तव्यत्तव्यनीयरः' सूत्र द्वारा तव्यत् प्रत्यय हुआ और उसके अर्धधातुक होने से इडागम होकर एधितव्य बना पुनः उसकी प्रातिपदिक संज्ञा होकर सु प्रत्यय होगा। सु को अम् होकर एधितव्यम् रूप बनेगा।

जहां एध्धातु से अनीयर प्रत्यय होगा वहां पर एधनीयम् बनेगा। एधनीयम् की भी सारी क्रियाएँ एधितव्यम् के ही

समान होंगी।

एघनीयम् त्वया में तृतीयान्त कर्ता का प्रयोग कर्ता की अनुक्तता सूचित करने के लिए किया गया है। जो प्रत्यय भाव में आते हैं वे सामन्यतः नपुंसक लिङ्ग में ही होते हैं।

चेतव्यः चयनीयः—चिधातु के सकर्मक होने के कारण उससे कर्म में तव्य तथा आनीयर प्रत्यय होंगे। चेतव्यः चयनीयः का कर्म धर्म है। उसके पुलिंग होने के कारण चेतव्यः चयनीयः भी पुलिङ्ग में हुए। कर्ता के अनुक्त होने से उससे तृतीया विभक्ति हुई।

मू०—वा० केलिमर उपसंख्यानम्–पचेलिमा माषाः, पक्तव्या इत्यर्थः। भिदेलिमा सरलाः, भेतव्या इत्यर्थः।

अनु०—तव्य एवं अनीयर प्रत्यय के ही समान केलिमर प्रत्यय का भी भाव और कर्म में प्रयोग होता है। (केलिमर के क् और र् की इत्संज्ञा होती है, शेष 'एलिम' मात्र रहता है।

पचेलिमाः—पच् धातु से कर्म में 'केलिमर उपसंख्यानम्' वार्तिक से केलिमर प्रत्यय होकर पचेलिम बनता है। पचेलिम की 'कृत्तद्धितसमासाश्च से प्रातिपदिक संज्ञा होकर जस् विभक्ति में पचेलिमाः रूप बनता है।

भिदेलिमाः—भिद्धातु से कर्म में केलिमर प्रत्यय होकर भिदेलिमाः प्रथमा के बहुवचन में होता में होता है।

केलिमर प्रत्यय—तव्यप्रत्यय के ही अर्थ में आता है। पक्तव्याः माषाः-उड़द पकाने के योग्य है। भिदेलिमाः सरलाः-सरल के वृक्ष काटने के योग्य हैं।

मू०—७७५—कृत्यल्युटो बहुलम् ३।३।११३।

क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिद प्रवृत्तिः, क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य, चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति।

'स्नान्ति अनेन: इति स्नानीयं चूर्णम् । 'दीयतेऽस्मै; दनीयो विप्र: ।

अनु०---कृत्य और ल्युट् प्रत्यय बहुल होते हैं। विधि (प्रवृत्ति) के अनेक प्रकारों को देखकर व्याकरण शास्त्र के आचार्य बाहुलक को चार प्रकार का बतलाते हैं। १- कहीं पर (प्रयोग विशेष में) प्रवृत्ति का होनो। २- कहीं पर (प्रयोग विशेष में) प्रवृत्ति का न होना, ३- कही पर (प्रयोग विशेष में) प्रवृत्ति का विकल्प से होना तथा ४- कहीं पर (प्रयोग विशेष में) प्रवृत्ति का अन्य प्रकार का ही होना।

इससे (लोग) स्नान करते हैं अत यह स्नान करने योग्य चूर्ण है। 'दीयत अस्मै' दानीयो विप्रः = इसको (दान) दिया जाता है अतएव यह दानोय (दान देने के योग्य) ब्राह्मण है।

स्नानीयम्---'स्नान्ति अनेन' इस अर्थ में 'स्ना' घातु से 'कृत्यल्युटो बहुलम्' सूत्र से करण अर्थ में बाहुलकात् अनीयर प्रत्यय होकर स्नानीय बना। फिर 'स्नानीय' की 'कृत्तद्धित समासाश्च' सूत्र से प्रातिप्रतिक संज्ञा होकर सु विभक्ति आयी और सु का अम् होकर 'स्नानीयम्' प्रयोग बना।

यह बाहुलक के प्रथम प्रकार (अप्राप्त स्थल में प्राप्त हो जाना) का उदाहरण है।

दानीयः---'दीयते अस्मै' इस अर्थ में बाहुलकात् अनीयर् प्रत्यय होकर यह रूप बनता है।

मू०---७७६-अचोयत् ३।१।९७। अजन्ताद्धातोर्यत्। चेयम्।

अनु०---अजन्त धातु से यत् प्रत्यय होता है।

चेयम्---'चेतुम् योग्यम्' इस अर्थ में चिधातु से अजन्त होने के कारण 'अचोयत् सूत्र से यत् प्रत्य होकर यत् के आर्धधातुक होने के कारण आर्धधातुकगुण होकर 'चेय' बनेगा। फिर प्राति-पदिक संज्ञा होकर 'सु' विभक्ति होगी और सु का अम् होकर चेयम् रूप बनेगा।

मू० ईद्यति ६।४।६५। यति परे आत ईत स्यात् । देयम् ग्लेयम् ।

अनु०-यत् प्रत्यय परे रहते आ के स्थान में ईत् होता है ।

देयम्- (दातुम् योग्यम्) इस अर्थ में 'दा' धातु से 'अचोयत्' सूत्र के द्वारा यत् प्रत्यय हुआ । फिर 'ईद्यति' सूत्र से दा के आ का ई होकर आर्धधातुक गुण होगा तो 'देय' बनेगा । पुनः प्रातिपदिकसंज्ञा और प्रातिपादिकत्वात् सु और उसका अम् होकर देयम् बनेगा ।

ग्लेयम्--ग्लातुं योग्यम्' के अर्थं मे ग्लैधातु से 'अचोयत्' सूत्र से यत् प्रत्यय होगा । फिर 'आदेचं उपदेशे-शिति' सूत्र से 'ऐ' का आ' होकर 'ग्लाय' बनेगा । पुनः ,ईद्यति' से आ का ई होकर आर्धधातुक होकर 'ग्लेय' बना । पुनः प्रातिपदिकत्वात् सु विभक्ति आकर ग्लेयम् नपुंसक लिङ्ग में बनेगा ।

मू० ७७८—पोरुपधात् ३ १।९८ । पवर्गान्ताददुपधाद्यत् स्यात् । ण्यतोऽपवादः । शप्यम्, लभ्यम् ।

अनु०-पवर्गान्त अत् उपधा वाले धातु से यत् प्रत्यय होता है । यह यत् प्रत्यय 'ऋहलोर्ण्यत्' सूत्र से होने वाले 'ण्यत्' प्रत्यय का बाधक है ।

शप्यम् —'शपितुम् योग्यम्' के अर्थ में पवर्गान्त अत् उपधा वाले शप् धातु से यत् प्रत्यय होने पर प्रातिपदिक कार्य होकर शप्यम् बनेगा ।

लभ्यम्-लभ् धातु से 'लब्धुं योग्यम्' के अर्थ में अदुपध पवर्गान्त लभ् धातु से पोरदुपधात्' से यत् प्रत्यय होकर प्रातिपदिक कार्य होने पर लभ्यम् बनेगा ।

मू ७७९—'एतिस्तुशास् वृ-दृ-जुषः क्यप्' ३।१।१०९ । एभ्यः क्यप् स्यात् ।

अनु०—इण्-स्तु-शास्-वृ-दृ और जुष् धातुसे क्यप् प्रत्यय

होता है। (यह क्यप् प्रत्यय ण्यत् और यत् दोनों का बाधक है। शास् और जुष् दोनों को हलन्त मानकर 'ऋहलोर्ण्यत्' से यत् प्राप्त था और शेषको अजन्त होने से 'अचोयत्' से यत् प्राप्त था। क्यप् के क् और प् की इत्संज्ञा होती है। इस प्रत्यय के कित् और पित् होने के कारण गुण और तुगागम का निषेध हो जाता है।

सू ७८०—'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' ६।१।७१ इत्यः। स्तुत्यः शासु अनुशिष्टौ।

अनु०—पित् कृत् प्रत्यय परे रहे तो ह्रस्व को तुक् का आगम होता है।

इत्यः—इण् धातु से 'एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्' सूत्र से क्यप् प्रत्यय होने पर ह्रस्वस्य पितिकृतितुक्' से तुगागम होकर इत्य बना। फिर प्रातिपदिक सज्ञा होकर प्रथमा के एक बचन में इत्यः बना।

स्तुत्यः—स्तु धातु से क्यप् तुक होकर प्रथमा एकवचन में इत्य के समान यह रूप सिद्ध होगा!

'शासु' धातु अनुशासन करने के अर्थ में आता है।

सू ७८१—शास इदङ्हलोः ६।४।३४। शास उपधाया 'इत्' स्यादङि हलादौ क्ङिति। शिष्यः, वृत्यः, आदृत्यः, जुष्यः।

अनु०—शास् धातु के उपधा को इ होता है अङ और हलादि कित् ङित् परे रहते।

शिष्यः—'शाशितुं योग्यः' इस अर्थ में शास् धातु से 'एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्' से क्यप् प्रत्यय हुआ। उसका अनुबन्ध लोप होकर 'शास इदङ् हलोः' सूत्र से शास् आ का इ होगया। शासिवसिघसीनाञ्च' सूत्र से स् का ष् होकर प्रथमा एक बचन मे शिष्यः रूप बना।

वृत्यः-वृधातुसे 'एतिस्तु०' इत्यादि सूत्र से क्यप् तथा 'ह्रस्वस्य पित कृति तुक्' से तुक् होकर प्रथमा एक बचन में वृत्यः बनेगा।

आदृत्यः—आङ् पूर्वक दृधातु से क्यप् तथा तुक होकर प्रथमा एक वचन में आदृत्यः बनेगा।

जुष्यः-जुष् धातु से 'एतुस्तिशास्वृदृजुषःक्यप्' से क्यप् प्रत्यय होकर प्रथमा एकबचन में जुष्यः बनेगा।

मू० ७८२-मृजेर्विभाषा ३।१।११३। मृजेः क्यव् वा। मृज्यः।

अनु०--मृज् (साफ करना) धातु से विकल्प से क्यप् होता है।

मृज्यः-'मार्जितुं योग्यम्' के अर्थ में मृज् धातु के हलन्त होने से 'ऋहलोर्ण्यत्' से ण्यत् की प्राप्ति होने पर 'मृजेर्विभाषा' सूत्र से क्यप् प्रत्यय होकर प्रथमा एक बचन में मृज्यः बना।

मू० ७८३-ऋहलोर्ण्यत् ३।१।१२४। ऋवर्णान्ताद् हलन्ताच्च धातोर्ण्यत्। कार्यम्, हार्यम्, धार्यम्।

अनु-ऋवर्णान्त एवं हलन्त धातु से ण्यत् होता है।

कार्यम्- ऋवर्णान्त धातु से 'कर्तुं योग्यम्' के अर्थं में ऋहलोर्ण्यत् सूत्र से ण्यत् प्रत्यय होने पर ण्यत् के णित् होने के कारण 'अचोञ्णिति' सूत्र से कृ के ऋ की आ वृद्धि होने पर रपर होकर प्रथमा एक बचन में कार्यम् बना।

हार्यम्-हर्तुम् योग्यम्-के अर्थ में ऋवर्णान्त हृ धातु से यह रूप बनेगा कार्यम् के ही समान।

धार्यम्--धृधातु से 'धर्तुं योग्यम्' के अर्थ में यह रूप कार्यम् के ही समान सिद्ध होगा।

मू० ७८४--चजोः कुघिण्ण्यतोः ७।३।५२। चजोः कुत्वं स्यात् घिति ण्यति च परे। ७८५ मृजेर्वृद्धिः ७।२।११४। मृजेरिको वृद्धिः सार्वधातुकार्धधातुकयोः। मार्ग्यः।

अनु०-च् और ज् को क्रमशः क् और ग् होते हैं घित् और ण्यत् परे रहते । ७८५-सार्वधातुक एवं आर्धधातुक प्रत्यय परे रहते मृज् धातु के इक् को वृद्धि होती है ।

मार्ग्यः--मृज् धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' सूत्र से ण्यत् प्रत्यय होने पर 'चजोः कुधिण्ण्यतोः' से मृज् के ज् को ग् होकर 'मृग्य' बना । 'मृजेर्वृद्धिः' सूत्र से रपर होने के कारण, मार्ग्य बना । पुनः प्रथमा एक वचन में मार्ग्यः बना ।

मू०--७८६-भोज्यं भक्ष्ये ।७।३।६९। भोग्यमन्यत् ।

इति कृत्यप्रक्रिया

अनु०--खाने योग्य अर्थ में भुज् धातु से भोज्य बनता है ण्यत् प्रत्यय होकर खाने योग्य अर्थ नहीं रहने पर भोग्य बनता है ।

भोज्यम्-भोग्यम्-भुज् धातु से भक्ष्य अर्थ में 'ऋहलोर्ण्यत्' सूत्र से ण्यत् प्रत्यय होने पर ण्यत् के आर्धधातुक होने से गुण होने पर 'चजोः कुघिण्ण्यतोः' सूत्र से भुज् के ज् को ग् प्राप्त होने पर 'भोज्यं भक्ष्ये' सूत्र से निपातनात् गकार का निषेध होने पर भोज्य बना । फिर नपुंसक लिङ्ग के प्रथमा एक वचन में भोज्यम् बना । जहां भक्ष्य अर्थ नहीं हुआ वहां पर 'चजोः कुघिण्ण्यतोः' से ज् को ग् होकर भोग्यम् बनेगा ।

इस तरह कृत्य प्रकरण समाप्त हुआ ।

अथ पूर्वकृदन्तम्

मू०-७८७--ण्वुलतृचौ ३।१।१३३। धातोरेतौ स्तः । 'कर्तरिकृत्' इति कर्त्रर्थे । ७८८-युवोरनाकौ ७।१।१। युवुएतयोरनाकौ स्तः । कारकः । कर्ता ।

अनु०---धातु से ण्वुल और तृच् प्रत्यय होते हैं । (ण्वुल् का वु और तृच् का तृ मात्र ही शेष रहता, अन्य भाग का लोप होता है) । कर्तरिकृत् सूत्र के सहकार से ये दोनों प्रत्यय कर्ता

अर्थ में ही होते हैं । ७८८-यु और वु को क्रमशः अन और अक आदेश होते हैं ।

कारकः--कृ धातु से कर्ता अर्थ में 'ण्वुलतृचौ' धातु से ण्वुल प्रत्यय होने पर 'युवोरनाकौ' से वु को अक आदेश हुआ । फिर 'णित्' प्रत्यय ण्वुल परे रहते 'अचोञ्णिति' सूत्र से कृ के ऋ की आ वृद्धि होकर रपर होने पर कारक बना फिर 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से प्रातिपदिकसंज्ञा होकर प्रथमा एक बचन में कारकः बना ।

कर्ता--कृ धातु से 'करोति' इति के अर्थ में 'ण्वुल तृचौ' से तृच् प्रत्यय होने पर तृच् की आर्धधातुक संज्ञा होने पर कृ के ऋ का आर्धधातुक 'अ' गुण होकर रपर होकर कर्तृ बनेगा । फिर प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा एक बचन में कर्ता बनेगा ।

मू०-७८९-नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः ३।१।१३४। नन्दादेर्ल्युः, ग्रह्यादेर्णिनिः, पचादेरच् स्यात् । नन्दयतीति, नन्दनः । जनमर्दयतीति जनार्दनः । लवणः । ग्राही, स्थायी, मन्त्री । पचादिराकृतिगणः ।

अनु०--नन्दादि धातुओं से ल्यु, ग्रहआदि धातु से णिनि और पच् आदि धातुओं से अच् प्रत्यय होता है ।

नन्दनः--'नन्दयति' (आनन्द देने वाला) अर्थ में टुनदि (नन्द) समृद्धौ धातु से 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' सूत्र से ल्यु प्रत्यय होकर, युको; युवोरनाकौ' सूत्र से अन होने पर प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा एकवचन में नन्दनः बना ।

जनार्दनः--जनमर्दयति इस अर्थ में जनपूर्वक अर्द् धातु से 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' सूत्र से ल्यु प्रत्यय होने पर यु को 'युवोरनाकौ' सूत्र से अन होने पर प्रतिपदिक संज्ञा होने पर प्रथमा एकवचन में जनार्दनः रूप बनता है ।

लवणः--'लंवतीति' अर्थ में छेदनार्थक लू धातु से 'नन्दि-ग्रहिपचादिभ्यो 'ल्युणि न्यचः' सूत्र से ल्यु प्रत्यय होने पर 'युवोर-नाकौ' से यु को अन आदेश होकर 'लू अन' बना। आर्धधातुक गुण होकर तथा अवादेश होकर लवन बनेगा प्रथमा एकवचन में न का ण होकर लवणः बनेगा।

ग्राही--'गृह्णातीति' इस अर्थ में ग्रह धातु से 'नन्दिग्रहि-पचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' सूत्र से णिनिप्रत्यय होने णिनि के णित् होने से अत उपधायाः' से ग्र के अ की आ वृद्धि हुई तो ग्राहिन् बना। प्रथमा एकवचन में सु का हलङ्यादि लोप तथा उपधा का दीर्घ होकर ग्राही रूप बना।

स्थायी--स्था धातु से णिनि प्रत्यय होकर प्रथमा एकवचन में यह रूप होगा।

मन्त्री--चौरादिक मन्त्र धातु से णिनि प्रत्यय होने पर प्रथमा एकवचन में मन्त्री पद सिद्ध होता है। मन्त्री = सलाह देने वाला। पच आदि आकृतिगण हैं-अतएव-पचः, चोरः, आदि पद अच् प्रत्ययान्त हैं।

मू०-७६०--'इगुपधज्ञा प्रीकिरः कः' १।१।१३५। एभ्यः कः स्यात्। वुधः, कृशः, ज्ञः, प्रियः, किरः।

अनु०--इगुपध (जिस धातु के उपधा में इक् प्रत्याहार का वर्ण) ज्ञा, प्री और कृ धातु से क प्रत्यय होता है। (क का क् इत्संज्ञक है केवल अ बचता है)।

वुधः--वुध् धातु से 'इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः' सूत्र से क प्रत्यय होकर बुध बना फिर प्रथमा एकवचन में बुधः बनता है।

कृशः--कृश् धातु से क प्रत्यय होकर बनता है।

ज्ञः--ज्ञा धातु से क प्रत्यय होकर 'आतोलोप इटि चो से आ का लोप होकर प्रथमा एकवचन में बनता है।

प्रियः--प्रीधातु से क प्रत्यय होने पर ई का इयादेश होकर बनता है। प्रथमा एकवचन में।

किरः--कृ धातु से क प्रत्यय होने पर 'ऋत इद्धातोः' सूत्र से ऋ का इर आदेश होकर प्रथमा एकवचन में किरः रूप बनता है।

मू०--आतश्चोपसर्गे ३।१।१३६। प्रज्ञः, सुग्लः।

अनु०--उपसर्ग युक्त आदन्त धातु से क प्रत्यय होता है।

प्रज्ञः--(प्रकर्षेण जानाति) के अर्थ में प्रपूर्वक ज्ञा धातु से क प्रत्यय होने पर 'आतोलोप इटि च' सूत्र से आ का लोप होने पर प्रथमा एकवचन में-प्रज्ञः बनता है।

सुग्लः सु पूर्वक ग्लै धात से क प्रत्यय होकर सुग्लः रूप प्रज्ञः के सभात बनेगा। बनता है।

मू०-७९२--गेहे कः।३।१।१४४। गेहे कर्तरि ग्रहेः कः स्यात्। गृहम्।

अनु०-घर के अर्थ में ग्रह धातु से कर्ता में क प्रत्यय होता है।

गृहम्--ग्रह धातु से कर्ता में 'गेहे कः' सूत्र से क प्रत्यय होकर, तथा 'ग्रहि ज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छति भृज्जतीनां ङिति च, सूत्र से सम्प्रसारण होकर गृह बना। प्रथमा एक वचन में गृहम् रूप बना।

मू०-७९३--कर्मण्यण् ३।२।१। कर्मण्युपपदे धातोः 'अण्' प्रत्ययः स्यात्। कुम्भ करोतीति कुम्भकारः।

अनु०--कर्म उपपद हो तो धातु से अण् प्रत्यय होता है।

कुम्भकारः--'कुम्भं करोति' (घड़ा बनाता है) इस अर्थ में कर्म वाचक कुम्भ शब्द के उपपद होने के कारण 'कुम्भ अम् कृ' इस स्थिति में धातु से 'कर्मण्यण' सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर 'अचो ञ्णिति' से वृद्धि होकर 'कुम्भ अम् कार' हुआ। फिर

'उपपदमतिङ्' सूत्रसे समास हुआ। पुनः 'सुपोधातुप्रातिपदिकयोः' से अम् का लोप होकर कुम्भकार बना। कृत्तदित समासाश्च' सूत्र से प्रातिपदिक संज्ञा होकर 'प्रथमा एकवचन' में 'कुम्भकारः' बना।

मू० ७९४-आतोऽनुपसर्गे कः ३।२।३। आदन्तात् धातोरनुपसर्गात् कर्मण्युपपदे कः स्यात्। अणोऽपवादः। आतो लोपः। गो दः धनदः कम्बलदः। अनुपसर्गे किम्-गोसंदायः।

अनु०-उपसर्ग से रहित कर्म उपपद रहने पर आदन्त धातु से अण् प्रत्यय होता है।

गां ददाति इस अर्थ में ग+अम् पूर्वक दा धातु से 'आतोऽनुपसर्गे कः' सूत्र से क प्रत्यय होने पर 'आतोलोप इटि च' सूत्र से आ का लोप हुआ। तो 'गो+अम् +द' बना। फिर 'उप पदमतिङ्' से समास होकर सुप् अम् का लोप होगा। 'कृत्तदित समाशाश्च' से प्रतिपदिक संज्ञा होने पर प्रथमा एक वचन में गोदः बना।

घनदः-और कम्बलदः। भी इसी प्रकार बनेंगे।

प्रश्न उठता है कि सूत्र में अनुपसर्ग पदका ग्रहण करके उपसर्गरहित धातु से ही क प्रत्यय का विधान क्यों किया गया? तो इसका उत्तर है कि अनुपसर्ग नहीं ग्रहण करने पर।

गोसंदायः-में भी क प्रत्यय होकर गोसंदः' यह अनिष्ट रूप बनने लगता। गो अम् सम्दा' से 'कर्मण्यण्' से अण् प्रत्यय होने पर 'आतो युक् चिण कृतोः' से युक् होने पर, उपपद समास तथा सुप् का लुक होकर 'गो संदाय' बना। फिर प्रथमा एकवचन में गोसदायः बना।

(वा०) मूल-विभुजादिभ्यः कः। मूलानि विभुजतीति मूलविभुजो रथः। आकृतिगणोऽयम्। महीध्रः, कुध्रः।

अनु०-मूलविभुज आदि से क प्रत्यय होता। मूलों को जो तोड़े वह मूलविभुज कहलायेगा। मूलविभूज रथ का विशेषण है प्रकृत वाक्य में मूलविभुजादि आकृतिगण है। इसी से-महीध्रः, कुध्रः आदि भी पद बनते हैं।

मूलविभूजः-'मूल शस् विभुज्' से 'मूलविभुजादिभ्यः कः' से क प्रत्यय होकर उपपद समास तथा सुप् का लुक हुआ। फिर प्रथमा एकवचन में मूलविभुजः बना।

महीघ्रः-'महीम्-धरति' इस अर्थ में 'मही अम् धृ' से 'मूलविभुजादिभ्यः कः' से क प्रत्यय होकर यण् होने के पश्चात् उपपद समास तथा सुप् का लुक् होकर प्रथमा एक बचन में महीध्रः बना।

कुध्रः-'कुं धरति' के अर्थ में 'कु अम् धृ' से क प्रत्यय होकर महीध्रः के समान कुध्रः बना।

मू० ७९५-चरेष्टः ३।२।१६। अधिकरणे उपपदे। कुरुचरः।

अनु०-अधिकरणउपपद हो तो चर धातु से ट प्रत्यय होता है। ट का ट् इत्संज्ञक है केवल अ ही बचता है।

कुरुचरः-कुरौ चरति के अर्थ में 'कुरु ङि चर्' से 'चरेष्टः' सूत्र से ट प्रत्यय होकर उपपद समास तथा सुप् का लुक् 'सुपो-धातुप्रातिपदिकयोः' सूत्र से होने पर प्रथमा एकवचन में कुरुचरः बनेगा।

मू०७९६ 'भिक्षासेनाऽऽदायेषु च' ३:२:१७ भिक्षाचरः सेनाचरः आदायेति ल्यबन्तम्. आदायचरः।

अनु०-भिक्षा, सेना और आदाय उपपद रहे तो भी चर् धातु से ट प्रत्यय होता है।

भिक्षाचरः--'भिक्षांचरति' के अर्थ में भिक्षा कर्म उपपद रहने पर 'भिक्षासेनादायेषुच' सूत्र से ट प्रत्यय होकर प्रथमा एक

वचन में भिक्षाचरः बना ।

सेनाचरः—'सेनायाम् चरति' के अर्थ में सेना उपपद रहने पर चर् धातु से ट प्रत्यय होकर सेनाचरः प्रथमा एक वचन में हुआ ।

आदायचरः-भी ट प्रत्यय होकर उपर्युक्त प्रकार से बना है।

सू० ७९७--कृञो हेतुताच्छिल्याऽनुलोम्येषु ३।२।२०। एषु द्योत्येषु करोतेः 'टः' स्यात् ।

अनु—हेतु (कारण) ताच्छिल्य (स्वभाव) तथा आनुलोम्य (अनुकूलता) इन अर्थों को अभिव्यक्त करने के लिये कृ धातु से 'ट' प्रत्यय होता है ।

सू० ७९८--अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य ८।३।४६। आदुत्त स्यानव्ययस्य विसर्गस्य समासे नित्यं साऽदेशः 'करोति' आदिषु परेषु । यशस्करी विद्या। श्राद्धकरः । वचनकरः ।

अनु०—अकार से परे अव्यय-भिन्न विसर्ग का नित्य ही स् होता है यदि उसके (विसर्ग के) पश्चात्, कृधातु, कम् धातु, अथवा कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा एवं कर्ण शब्द आये तो। यशस्करी विद्या = यश बढ़ाने वाली विद्या ।

यशस्करी—'यशः करोति' इस विग्रह में हेतु के अर्थ में 'यशस् अम् कृ' से कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु' सूत्र से ट प्रत्यय होने पर 'उपपदमतिङ्' से उपपद समास होकर सुप् का लुक् होकर 'यशस् कृ अ' बना कृ के ऋ का अ गुण होने पर रपर होकर यशस् कर बना। यहां पर यशस् के स् का विसर्ग होकर के विसर्ग को जिह्वामूलीय होना प्राप्त था उसको बाधकर 'अतः कृकमिकंस-कुम्भः' इत्यादि सूत्र से विसर्ग का नित्य स् होकर यशस्करी बना। ट के टित् होने से 'टिढाणञ् इत्यादि सूत्र से ङीप् प्रत्यय होकर यशस्करी बना पुनः प्रातिपदिकत्वात् सु विभक्ति होकर

प्रथमा एक वचन में यशस्करी बना।

श्राद्धकरः—'श्राद्धं कर्तु शीलं यस्य' इस विग्रह में ताच्छील्य के अर्थ में 'श्राद्धअम्कृ' से 'कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु' सूत्र से ट प्रत्यय होकर तथा कृ के ऋ का अ गुण तथा रपर होकर श्राद्धकर बना। फिर प्रथमा एक वचन में श्राद्धकरः बना।

वचनकरः—'वचनं करोति' इस विग्रह में 'वचन अम् कृ' से आनुलोम्य (अनुकूलता) अर्थ में 'कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु' सूत्र से 'ट' प्रत्यय होकर अगुण तथा रपर होकर 'वचनकर' बना। प्रथमा एक वचन में वचनकरः' बना।

सू०७९९-एजेः खश् ३।२।२८। ण्यन्तादेजेः खश् स्यात्। ८०० अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् ६।३।६७। अरुषो द्विषतोऽजन्तस्य च 'मुम्' आगमः स्यात् खिदन्ते परे नत्वव्ययस्य। शित्वात् शबादिः। 'जनमेजयतीति' जन्मेजयः।

अनु० ७९९—ण्यन्त एज् धातु से खश् प्रत्यय होता है। (खश् के ख् एवं श् की इत्संज्ञा होकर अ बचता है।) ८०० अरुष (मर्म) द्विषत् (शत्रु) और अजन्त शब्दों को 'मुम्' का आगम होता है, किन्तु अव्ययं को 'मुम्' का आगम नहीं होता है। (खश् के शित् होने के कारण सार्वधातुकसंज्ञा और शप् आदि भी कार्य होकर 'जनमेजयः' आदि में होते है।

जनमेजयः— जनमेजयति (दुष्टोंको कपाने वाला) के अर्थ में 'जन अम् एजि' से एजेः खश् स खश् प्रत्यय होकर उपपद समास होकर सुप् का लुक् हुआ। फिर अजन्त जन शब्द से मुम् का आगम हुआ 'अरु- द्विषदजन्तस्यमुम्'सूत्र से खश्के शित् होने के कारण 'तिङ्शित् सार्वधातुकम्' से सार्वधातुकसंज्ञा होकर शप् हुआ। पुनः— सार्वधातुक गुण होकर तथा अयादेश होकर 'जन० मेजय अ बना। फिर रूप होकर 'जनमेजय' बना। फिर प्रथमा एक

वचन में जनमेजयः' बना ।

मू०--८०१-'प्रियवशेवदः खच्' ३।६।३८। प्रियंवदः । वशंवदः ।

अनु०--प्रिय एवं वश कर्मं उपपद रहने पर वद्धातु से खच् प्रत्यय होता है। (खच् के ख् और च् इत्संज्ञक हैं केवल अ ही बचता है। ।

प्रियंवदः—'प्रियं वदति' (प्रिय बोलता है) के अर्थं में 'प्रिय अम् वद्' से 'प्रियवशेवदः खच्' सूत्र से खच् प्रत्यय होकर उपपद समास तथा सुप् का लुक् होने पर 'प्रिय वद् अ' बना । 'अरु-र्द्विषजन्तस्य मुम्' से मुमागम होकर 'प्रियंवद' बना । पुनः प्रथमा एकवचन में 'प्रियंवदः बना ।

वंशवदः—'वशेवदति' के अर्थं में प्रियंवदः के समान ही खच् एवं मुमागम होकर प्रथमा ए० व० में यह रूप बनेगा ।

मू०—८०२-अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ३।२।७५। मनिन्क्वनिप् वनिप् विच् एते प्रत्ययाः धातोः स्युः । ८०३ नेड्वशि कृति ७।२।८। वशादेः कृत इण्न स्यात् । शॄ हिंसायाम्-सुशर्मा । प्रातरित्वा ।

अनु०-८०२--आकारान्त भिन्न धातुओ से भी मनिन्, क्व-निप्, वनिप् और विच् प्रत्यय होते हैं। ८०३-वशादि कृत् से इण् प्रत्यय नहीं होते है ।

सुशर्मा--सु पूर्वक हिंसार्थक शॄ धातु से 'अन्येभ्येऽपिदृश्यन्ते' सूत्र के द्वारा मनिन प्रत्यय हुआ । मनिन् का मन्शेष रहा । पुनः मन् के आर्धधातुक होने के कारण शॄ का आर्धधातुक गुण होकर रपर होने पर सुशर्मन् बना । प्रथमा एकवचन में सुशर्मा बना ।

प्रातरित्वा--प्रातःपूर्वक इण् धातु से 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' से क्वनिप् प्रत्यय हुआ । क्वनिप् का अनुबन्ध लोप होकर तथा 'ह्रस्वस्य पितिकृति तुक्' से तुगागम होकर प्रातरित्वन् बना । प्रथमा एकवचन में प्रातरित्वा बना ।

सू०—८०४-विड्वनोरनुनासिकस्याऽऽत् ६।४।४१। अनुनासिकस्याऽऽत्स्यात् । विजायत इति विजावा । ओणृ अपनयने । अवावा । विच्-रुष्रिष हिंसायाम्-रोट्, रेट्, सुगण ।

अनु०—विट् और वन् (वनिप् एवं क्वनिप्) प्रत्यय परे रहते अनुनासिक वर्ण का आ हो जाता है ।

विजावा—'विजायते' (विशेष रूप से होने वाला) के अर्थ में विपूर्वक जन धातु से 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' सूत्र से वनिप् प्रत्यय होकर 'विजन् वन्' बना । 'विड्वनोरनुनासिकस्यात् स्यात्' सूत्र से जन् के न का आ होकर तथा आ का सवर्णदीर्घ होकर विजावन् बना । प्रथमा एकवचन में सु विभक्ति आने पर 'हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्' से स् का लोप 'अतउपधायाः' से उपधा का दीर्घ तथा 'न लोपः प्रातिपदिकान्तस्य' से न का लोप होकर बिजावा बनता है ।

अवावा—'ओणृ अपनयने' धातु से, 'अपाकरोति' के अर्थ में ओणृ धातु से 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' सूत्र से वनिप् प्रत्यय हुआ । 'विड्वनोरनुनासिकस्यात्स्यात्' सूत्र से ण् का आ होकर 'ओ आवन्' बना । अवादेश होकर अवावन् बना । पुनः प्रातिपदिक संज्ञा होने पर प्रथमा एकवचन में अवावा रूप बनता है ।

रोट्-रेट्—हिंसार्थक रुष् एवं रिष् धातु से 'अन्येभ्योऽपिदृश्यन्ते' सूत्र से विच प्रत्यय हुआ । विच् का सर्वापहारी लोप होने पर लघुपध गुण होकर रोष् और रेष् बना । फिर प्रातिपदिकत्वात् सु विभक्ति आयी । और स् का हल्ङ्यादि लोप हुआ । ष् का जश एवं चर् होकर रोट् एवं रेष् बना ।

सुगण्—सुष्ठु गणयति के अर्थ में सु पूर्वक गण् धातु से विच् प्रत्यय 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' सूत्र से हुआ । विच् का सर्वापहारी लोप होकर सुगण् बना । फिर प्रादिपदिक संज्ञा होकर

प्रथमा एकवचन में सुगण् बना।

मू०--८०५-क्विप् च ३।२।७६। अयमपि दृश्यते । उखास्रत् । पर्णध्वत् । वाहभ्रट् ।

अनु०--धातु से कर्ता अर्थ में क्विप् प्रत्यय भी होता है। (क्विप् का भी विच् के ही समान सर्वापहारी लोप होता है। क्विप् के कित् होने से गुण-वृद्धि का निषेध होता है तथा धातु-स्थ न का लोप होता है। इस प्रत्यय के पित् होने के कारण ह्रस्वान्त धातु को तुक् होता है।

उखास्रत्-'उखायाः स्रंसते' इस विग्रह में 'उखा ङसि पूर्वक स्रंस् धातु से 'क्विप् च' सूत्र से क्विप् प्रत्यय हुआ। क्विप् का सर्वापहारी लोप 'अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति' सूत्र से स्रंस् के न का लोप होने पर 'उपपदमतिङ्' से समास हुआ तथा सुप् ङसि का लोप हुआ। 'उखास्रस्' बना। प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा एकवचन में 'वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहां दः' से स् का द् होकर द् का 'वाऽवसाने' से चर् होकर तथा सु का हल्ङ्यादिलोप होकर 'उखास्रत्' रूप बना।

पर्णध्वत्--यह भी 'पर्णाद्ध्वंसते' के अर्थ में क्वनिप् प्रत्ययान्त रूप है और उखास्रत् के समान ही बनता है।

वाहभ्रट्--'वाहाद्भ्रश्यति' इस अर्थ में यह भी क्वनिप् प्रत्यय होकर उखास्रत् के समान रूप बनता है। इसमें 'व्रश्च-भ्रस्ज' इत्यादि सूत्र से शकार का षकार तथा ष् का जश् चर् होता है।

मू०--८०६-सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ३।२।७८। अजात्यर्थे सुपि धातोर्णिनिः, ताच्छील्ये द्योत्ये। उष्णभोगी।

अनु०--जातिवाचक से भिन्न सुबन्त उपपद रहने पर धातु से णिनि प्रत्यय होता है ताच्छील्य (स्वभाव) बतलाने के लिए।

उष्णभोगी--'उष्णं भुंक्ते' इस अर्थ में गुण वाचक उष्णपद के उपपद रहने पर 'उष्णअम् भुज्' धातु से 'सुप्यजातौ णिनि-स्ताच्छील्ये' सूत्र से णिनि होने पर उपपद समास तथा सुप् का लुक् होकर 'उष्णभुजिन्' बना प्रातिपदिक सञ्ज्ञा होने पर प्रथमा एकवचन में सुप् विभक्ति आयी। फिर 'लघूपधगुण' होकर 'उष्ण भोजिन् स्' बना। स् का हल्ङ्यादि लोप तथा न् का प्राति-पदिकान्त लोप एवं उपधा का दीर्घ होकर उष्णभोजी बना।

सू०--८०७-मनः ३।२।८२। सुपि मन्यतेर्णिनिः स्यात्। दर्शनी-यमानी।

अनु०--सुबन्त उपपद रहने पर मन् धातु से णिनि प्रत्यय होता है।

दर्शनीयमानी--'दर्शनीयं मन्यते' इस अर्थ में दर्शनीय अम् सुबन्त उपपद परे रहते मन् धातु से 'मनः' सूत्र से णिनि प्रत्यय होकर उपपद समास हुआ। फिर सुप् का लुक् होकर तथा उपधा की वृद्धि होकर 'दर्शनीयमानिन्' हुआ। पुनः प्रातिपदिकत्वात् सु विभक्ति के आने पर उपधा की वृद्धि होने पर स् का हल्ङ्यादि लोप, तथा न् का प्रातिपदिकान्त लोप होकर दर्शनीयमानी।

सू०--८०८-आत्ममानेखश्च ३।२।८३। स्वकर्मके मनने वर्तमाना-न्मन्यतेः सुपि खश् स्यात्, चात् णिनिः। पण्डितमात्मानं मन्यते, पण्डितं मन्यः, पण्डितमानी।

अनु०—स्वकर्मकमनन के वाचक मन् धातु की क्रिया रहने पर उससे परे यदि सुप् होता मनधातु से खश् प्रत्यय होता है। और णिनि प्रत्यय भी।

पण्डितमानी-पण्डितं मन्यः—पण्डितं आत्मानंमन्यते' (अपने को पण्डित मानने वाला) इस अर्थ में स्वकर्मक सुबन्त उपपद है 'पण्डित अम्' उससे परे मन् धातु से 'आत्ममाने खश्च' सूत्र से

खश् प्रत्यय हुआ। पुनः 'उपपद समास तथा सुप् का लुक् होने पर धातु से विकरण श्यन् होकर तथा 'अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्' सूत्र से मुमागम होकर 'पण्डितम् मन्य' बना। प्रातिपदिकसंज्ञा होकर प्रथमा एकवचन में पण्डितंमन्यः बना।

जहां पर 'आत्ममाने खश्च' सूत्र से खश् प्रत्यय नहीं हुआ वहां पर इसी सूत्र से णिनि प्रत्यय होकर 'पण्डितमानी' बना प्रथमा एकवचन में।

मू०--८०९-खित्यनव्ययस्य ६।३।६६। खिदन्ते परे पूर्वपदस्य ह्रस्वः नत्वव्ययस्य। ततोमुम्। कालिं मन्या।

अनु०--खिदन्त परे रहें तो पूर्वपद को ह्रस्व होता है किन्तु अव्यय को नहीं। पुनः मुमागम होकर 'कालिं मन्या' बनता है।

कालिमन्या--'आत्मानं कालीं मन्यते' (अपने को काली मानने वाली) इस अर्थ में स्वकर्मक 'काली अम्' सुबन्त उपपद से परे मन् धातु से खश् प्रत्यय होकर 'काली अम् मन् अ' बना। पुनः 'उपपदमतिङ्' से उपपद समास तथा सुप् का लुक् होकर काली मन् अ हुआ। फिर धातु से विकरण श्यन् हुआ तथा 'खित्यनव्ययस्य' सूत्र से पूर्वपद काली का ह्रस्व होकर 'अरुर्द्विषदजन्तस्यमुम्' से मुमागम होकर कालिमन्य बना। तदनंतर स्त्रीत्व की विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप् होकर 'कालिं मन्या' बना तदनन्तर प्रातिपदिकादिकार्य होकर प्रथमा एकवचन में सु का हलङ्यादि लोप होकर उक्त रूप सिद्ध हुआ।

मू०--८१०-करणे यजः ३।२।८५। करणे उपपदे भूतार्थवृत्ते र्णिनिः कर्तरि। सोमेनेष्टवान् सोमयाजी। अग्निष्टोमयाजी।

अनु०--करण उपपद रहने पर भूतकाल के अर्थ में 'यज्' धातु से कर्ता में णिनि प्रत्यय होता है।

सोमयाजी--सोमेनेष्टवान् (सोमयाग से यजन किया) इस

अर्थ में 'सोम टा' यह करण उपपद रहने पर 'यज्' धातु से' करणे यजः' सूत्र से णिनि प्रत्यय हुआ। पुनः उपपद समास होकर 'सुपोधातु प्रातिपदिकयोः' से सुप् 'टा' का लोप होकर 'सोम यजिन्' बना। तदनन्तर 'अत उपधायाः' सूत्र से उपधा की वृद्धि होकर 'सोमयाजिन्' बना। प्रातिपदिकत्वात् सु विभक्ति होकर प्रथमा एक वचन में 'सोमयाजी' बना।

अग्निष्टोमयाजी–'अग्निष्टोमेनेष्टवान्' इस अर्थ में 'अग्निष्टोम टा पूर्वक यज्' धातु से णिनि प्रत्यय होकर 'सोमयाजी' के ही समान यह पद भी बनेगा।

मू० ८११–दृशेः क्वनिप् ३।२।९४। कर्मणि भूते। पारं दृष्टवान्–पारदृश्वा।

अनु०—कर्म उपपद रहने पर भूतकाल के अर्थ में दृश् धातु से कर्ता अर्थ में क्वनिप् प्रत्यय होता है।

पारदृश्वा–'पारंदृष्टवान्' (पार, अन्त) को देख लिया है जिसने। इस अर्थ में 'पार अम्' यह कर्म उपपद रहने पर भूतकालिक अर्थ में 'दृश् धातु से 'क्वनिप्' प्रत्यय होकर उसका अनुबन्ध लोप हुआ। पुनः उपपद समास तथा सुप् का लुक् होकर 'पारदृश्वन्' बना। तदनंतर प्रातिपदिकसंज्ञा होकर प्रथमा एक वचन में 'पारदृश्वा' रूप बना।

मू० ८१२–राजनि युधि कृञः ३।२।९५। क्वनिप् स्यात्। युधिरन्तर्भावितण्यर्थः। राजानंयोधितवान् राजयुध्वा। राजकृत्वा।

अनु०–राजन् कर्म उपपद परे रहे तो युध् एवं कृञ् धातु से क्वनिप् प्रत्यय होता है। यहां पर अन्तर्भावितण्यर्थ (जिसके भीतर प्रेरणा का अर्थ छिपा रहता है ऐसा (युध् धातु लिया जाता है।

राजयुध्वा—'राजानं योधितवान् (राजा को प्रेरित करके

लड़ाया हो जो) इस अर्थमें कर्म उपपद 'राजन् अम्' के रहने पर युध् धातु से क्वनिप् प्रत्यय हुआ । तदनन्तर उपपद समास तथा सुप् का लुक् तथा न का लोप होकर 'राजयुध्वन्' बना । फिर प्रातिपदिकत्वात् प्रथमा एक वचन में सु विभक्ति होकर राजयुध्वा रूप बना ।

राजकृत्वा—राजानं कृतवान् (राजा बनाया) इस अर्थ में 'राजन् अम्कृ' से क्वनिप् प्रत्यय होकर 'राजयुध्वा' के समान ही प्रथमा एक वचन में राजकृत्वा बनेगा । इसमें 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' से तुगागम भी होगा ।

सू० ८१३-सहे च ३।२।९६। 'कर्मणि' इति निवृत्तम् । सह योधितवान्, सहयुध्वा । सहकृत्वा ।

अनु०-सह अव्यय उपपद रहे तो भी युध् तथा कृ धातु से क्वनिप् प्रत्यय होता है । 'कर्मणीति विक्रियः' सूत्र से कर्मणि पद की अनुवृति 'राजनि युधि कृञः' सूत्र पर्यन्त हो रही थी इस 'सहे च' सूत्र से उस कर्मणि पद की निवृत्ति हो गयी । सूत्र के अर्थ में अब कर्मणि पद नहीं अन्वित होगा ।

सहयुध्वा—सह योधितवान् (जिसने साथ में लड़ाया हो) इस अर्थ में सह पूर्वक युध् धातु से क्वनिप् प्रत्यय होकर प्राति-पदिक संज्ञा तथा सुविभक्ति होकर प्रथमा एक वचन में सह युध्वा यह रूप बना ।

सहकृत्वा-सह कृतवान् (जिसने साथ में किया हो) इस अर्थ में सहपूर्वक कृ धातु से क्वनिप् प्रत्यय होकर सहकृत्वन् बना । फिर प्रथमा एक वचन में तुगागम होकर सहकृत्वा रूप बना ।

सू० ८१४-सप्तम्यां जनेर्डः ३।२।९७। ८१५-तत्पुरुषे कृति बहुलम् ६।३।१४। ङे रलुक् । सरसिजम्, सरोजम् ।

अनु० ८१४—सप्तम्यन्त उपपद रहे तो जन् धातु से ड प्रत्यय

होता है। ८१५-कृत् प्रत्यय परे रहते तत्पुरुष समास में 'ङि' का बाहुलकात् लुक् का अभाव हाता है।

सरसिजम्-सरोजम्—सरसि जायते इस अर्थ में 'सरस् ङि' पूर्वक जन्धातु से 'सप्तम्यां जनेर्डः,सूत्र से ड प्रत्यय हुआ। ड के डित होने के कारण जन् के टि अन् 'भाग का लोप हुआ। 'सरसि ज' बना। पुन उपपद समास होकर विभक्ति का लुक् प्राप्त हुआ। 'तत्पुरुषे कृतिबहुलम्' सूत्र से बाहुलकात् ङि का बाहुलकात् अलुक् होकर सरसिज हुआ। फिर 'प्रातिपदिकसंज्ञा' होकर प्रथमा एक बचन में नपुंसक लिङ्ग में सु का अम् होकर तथा 'अतो गुणे' से पर रूप होकर 'सरसिजम्' बना। जहां पर ङि का लुक् हो गया। वहाँ पर सरस् के स् का रुत्व उत्व गुण होकर 'सरोजम्' रूप बना।

मू० ८१६—उपसर्गे च संज्ञायाम् ३।२।९९। प्रजा स्यात् सततौ जने।

अनु०—उपसर्ग उपपद रहने पर भी जन् धातु से ड प्रत्यय संज्ञा अर्थ में होता है।

प्रजा—प्रपूर्वक जन् धातु से संज्ञा अर्थ में 'उपसर्गे च संज्ञायाम्' सूत्र से ड प्रत्यय हुआ। ड के डित् हाने से न का लोप तथा स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् होकर प्रत्यय प्रातिपदिकसंज्ञा होकर प्रथमा एक वचन में प्रजा बना। प्रजा शब्द सन्तान और नियाम्य के अर्थ में आता है।

मू० ८१७—क्तक्तवतू निष्ठा १।१।२६। एतौ निष्ठा संज्ञौ स्तः। ८१८-निष्ठा ३।२।१०२। भूतार्थवृत्तेर्धातोर्निष्ठा स्यात्। तत्र-'तयोरेव'—इति भावकर्मणोः क्तः। 'कर्तरिकृत्' इति कर्तरिक्तवतुः। उकावितौ। स्नातं मया। स्तुतस्त्वया विष्णुः। विश्वं कृतवान् विष्णुः।

अनु०-८१७-क्त और क्तवतु इन दो प्रत्ययों की निष्ठासंज्ञा होती है। ८१७-भूतकालिक क्रिया को अभिव्यक्त करने के लिए धातु से निष्ठा प्रत्यय (क्त एवं क्तवतु) होते हैं। उनमें-'तयोरेव

कृत्य क्त खलर्थाः' इस पूर्वोक्त कृत्य प्रक्रिया के सूत्र से भाव और कर्म में क्त प्रत्यय होता है। और 'कर्तरि कृत्' इस सूत्र से कर्ता में क्तवतु प्रत्यय होता है। क्तवतु के उ तथा क् की इत्संज्ञा होती है। स्नातंमया = मैंने स्नान किया। स्तुतस्त्वया = तुमने स्तुति की। विश्वंकृतवान् विष्णुः = विष्णु ने सम्पूर्ण जगत् को बनाया।

स्नातम्—स्नाधातु जन्य भूतकालिक क्रिया की विवक्षा में निष्ठा' सूत्र से निष्ठासंज्ञक 'क्त क्तवतु' प्रत्ययों की प्राप्ति होने पर 'स्ना' धातु के अकर्मक होने से 'तयोरेवकृत्यक्तखलर्थाः' सूत्र से क्त प्रत्यय हुआ। फिर प्रतिपदिकत्वात् सु बिभक्ति होकर सु का अम् होकर स्नातम्' बना। यहां भाव में क्त प्रत्यय हुआ है।

स्तुतः—स्तुधातु से क्त प्रत्यय होकर यह भी रूप बना है। यहां कर्म में क्त प्रत्यय हुआ है।

कृतवान्—कृ धातु से निष्ठा अर्थ में 'कर्तरिकृत्'सूत्र के सहकार से कर्ता में क्तवतु प्रत्यय होकर 'कृतवत्' बना। फिर प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा एक वचन में कृतवान् बना।

सू० ८१९–रदाभ्यां निष्ठा तो नः पूर्वस्य च दः ८।२।४२। रदाभ्यां परस्य च निष्ठा तस्य नः स्यात्। निष्ठापेक्षया पूर्वस्य धातोर्दस्य च। शॄ हिंसायाम्, ॠत इत्; रपरः णत्वम् शीर्णः, भिन्नः, छिन्नः।

अनु०—र और द से परे निष्ठा के त का न होता है। और निष्ठा से पहले धातु के द का भी न होता है।

शीर्णः—हिंसार्थक शॄ धातु से कर्म में 'क्तक्तवतु निष्ठा' सूत्र से निष्ठार्थक क्त प्रत्यय हुआ। पुनः–'ॠइद्धातोः' से ॠ का इर् होकर तथा 'हलिच' से दीर्घ होकर शीरत् बना। फिर 'रदाभ्यां निष्ठा तो नः पूर्वस्यचदः' सूत्र से त का न होकर तथा न का ण होकर प्रातिपदिकसंज्ञा हुई और प्रथमा एकवचन में शीर्णः बना।

भिनः—छिनः–भिद् (फाड़ना) छिद् (काटना) धातुओं से

कर्म उपपदे रहते निष्ठा में 'क्तक्तवतु निष्ठा' से क्त प्रत्यय हुआ। तदनंतर 'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः' सूत्र से प्रत्यय के त को तथा निष्ठा के पूर्वावस्थित धातु के द् को न होकर भिन्न एवं छिन्न बना। फिर प्रथमा एक वचन में भिन्नः एवं छिन्नः ये दो रूप बने।

मू० ८२०-संयोगादे रातो धातोर्यण्वतः' ८।२।४३। निष्ठा तस्य नःस्यात्। द्राणः ग्लानः।

अनु०—संयोगादि आकारान्त और यण् वाले धातु से परे निष्ठा के तकार का नकार होता है।

द्राणा—कुत्सितगत्यर्थक द्रा धातु से निष्ठा अर्थ में क्त प्रत्यय होने पर संयोगादेरातोधातोयण्वतः' सूत्र से प्रत्यय के त को न होकर तथा न का ण होकर द्राण बना और प्रथमा एक वचनमें द्राणः बना।

ग्लानः—ग्लै धातु से निष्ठा में 'क्तक्तवतुनिष्ठा' सूत्र से क्त प्रत्यय हुआ! 'आदेच् उपदेशे शिति' से ऐ का आ हुआ। 'संयोगादेरातो धातोर्यण्वतोः' सूत्र से निष्ठा के त को न होकर प्रथमा एकवचन में ग्लानः बना।

मू० ८२१-ल्वादिभ्यः ८।२।४४। एकविंशतेः लूञादिभ्यः प्राग्वत्। लूनः। ज्याधातुः। ग्रहिज्या इति सम्प्रसारणम्। ८२२-हलः ६।४।२। अङ्गावयवाद्धलः परंयत् सम्प्रसारणं तदन्तस्य दीर्घः। जीनः।

अनु०८२१-क्र्यादिगण की लूञ् आदि इक्कीस धातुओं से परे निष्ठा के तकार को नकार होता है।

लूनः—लूञ् (छेदनार्थक) धातु से 'क्तक्तवतु निष्ठा' सूत्र से क्त प्रत्यय होने पर लूत बना। 'ल्वादिभ्यः' सूत्र से निष्ठा के त को न होकर लून हुआ। प्रथमा एकवचन में लूनः बना।

८२२—अङ्ग के अवयव से परे जो सम्प्रसारण उसके अन्त

को दीर्घ होता है ।

जीनः—ज्याधातु से निष्ठा अर्थ में 'क्त क्तवतू निष्ठा, से क्त प्रत्यय होकर 'ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चति पृच्छति भृज्ज-तीनां ङिति च' सूत्र से ज्या के य का इ सम्प्रसारण हुआ और 'ल्वादिभ्य.' से त का न हुआ । तथा हलः सूत्र से दीर्घ होकर प्रथमा एकवचन में जीनः बना ।

मू॰ ८२३—ओदित ८।२।४५। भुजो-भुग्नः । टुओश्वि उच्छूनः ।

अनु॰—ओ इत्सञ्ज्ञक धातुओं से परे निष्ठा के त को न होता है ।

भुग्नः—छेदनार्थक भुजो' धातु से निष्ठा के अर्थ में क्त प्रत्यय होने पर धातु के ओ इत्संज्ञक होने के कारण 'ओदितश्च' सूत्र त को न हुआ तथा 'चोः कुः' सूत्र से ज् का ग् होकर भुग्न बन प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा एकवचन में भुग्नः बना ।

उच्छूनः—उत् उपसर्ग पूर्वक 'टुओश्वि' (सूजना) धातु निष्ठामें क्तप्रत्यय होने पर धातु के ओदित् होने के कार 'ओदितश्च' सूत्र से उसके तकार को नकार हुआ और यजा होने के कारण धातु के व का उ तथा इ का 'सम्प्रसारणाच्च' से पूर्वरूप होने पर 'हलः' सूत्र से दीर्घ हुआ । फिर श्च हुआ और 'शश्छोटि' से श का छ होकर उच्छून बना । प्रातिप संज्ञा होने पर प्रथमा एकवचन में उच्छूनः बना ।

मू॰—८२४—शुषः कः ७।२।५१। निष्ठा तस्य कः । शुष्कः ।

अनु॰—शुष् धातु से परे निष्ठा के त को क होता है

शुष्कः— शुष् धातु से निष्ठा के अर्थ में क्त प्रत्यय होने 'शुषः क.' सूत्र से त को क होने पर 'शुष्क' हुआ । प्रातिप संज्ञा होकर प्रथमा ए॰ व॰ में शुष्कः बना ।

मू॰—८२५—पचोवः ८।२।५२। पक्वः ।

अनु०—पच् धातु से परे निष्ठा के त को व होता है।

पक्वः—पच् धातु से निष्ठा अर्थ में क्त प्रत्यय हुआ। फिर 'पचोवः' सूत्र से त को व होकर तथा 'चोः कुः' से च् को क् होकर प्रथमा ए० व० में पक्वः बना।

मू०—क्षै हर्षक्षये ८२६-क्षायो मः ८।२।५३। क्षामः।

अनु०—क्षै धातु से परे निष्ठा के त को म होता है।

क्षामः—क्षीणार्थक 'क्षै' धातु से निष्ठा अर्थ में क्त प्रत्यय होने पर 'आदेच उपदेशे शिति' से ऐ को आ हुआ। फिर 'क्षायो मः' सूत्र से त का न होकर प्रथमा एक व० में क्षामः बना।

मू०—८२७-निष्ठायां सेटि ६।४।५२। णेर्लोपः। भावितः। भावितवान्।

अनु०—सेट् निष्ठा परे रहते णि का लोप होता है।

भावितः-भावितवान्-ण्यन्त भू धातु (भू णिच् 'अचोञ्णिति' से वृद्धि आवादेश) भावि से निष्ठा अर्थ में क्त और क्तवतु प्रत्यय होने पर, इन दोनों प्रत्ययों के वलादि आर्धधातुक होने से इडागम हुआ। फिर 'निष्ठायां सेटि' से 'णि' का लोप होकर भावित और भावितवत् बना। प्रातिपदिकसंज्ञा होने पर प्रथमा ए०व० में भावितः और भावितवान् बना।

मू०—दृह् हिंसायाम्। ८२८-दृढः स्थूलबलयोः। ७।२।२०। स्थूले बलवति च निपात्यते।

अनु०—हिंसार्थक दृह् धातु से स्थूल एवं बलवान् अर्थ में दृह् धातु से निष्ठा अर्थ में दृढ निपातन होता है।

दृढः—हिंसार्थक दृह् धातु से निष्ठा अर्थ में क्त प्रत्यय होने पर 'दृढः स्थूल बलयोः' सूत्र से दृह् का दृढ निपातन हो गया फिर प्रथमा एकवचन में दृढः रूप बना।

मू०—८२९-दधातेर्हिः ७।४।४२। तादौ किति। हितम्।

अनु०---तकारादि कित् प्रत्यय परे रहते धा धातु को हि आदेश होता है।

हितम्---पोषणार्थक धा धातु से निष्ठा अर्थ में क्त प्रत्यय होने पर 'दधातेर्हि' सूत्र से 'धा' का हि होने पर हित बना प्रथमा एकवचन में सु का नपुंसक लिङ्ग में अम् होकर हितम् बना।

मू०---८३०-दोदद्घोः ७।४।४६। घुसंज्ञकस्य 'दा' इत्यस्य दद् स्यात् तादौ किति। चर्त्वम्-दत्तः।

अनु०---घुसंज्ञक 'दा' धातु को दद् आदेश होता है, तकारादि कित् प्रत्यय परे रहे तो।

दत्तः---दा धातु से निष्ठा प्रत्यय क्त होने पर 'दो दद्घोः' सूत्र से दा को दद् आदेश होने पर चर् होकर द् का त् होकर दत्त बना। प्रथमा ए० व० में दत्तः बना।

मू०---८३१-लिटः कानज्वा ३।२।१०६। ८३२-क्वसुश्च ३।२।१०७। लिटः कानच्क्वसुश्च वा स्तः। तङानावात्मनेपदम्। चक्राणः।

अनु०---८३१-लिट् से कानच् प्रत्यय विकल्प से होता है। 'कानच्' के क् और च् इत्संज्ञक हैं अन मात्र अवशेष रहता है। ८३२-लिट् से क्वसु भी विकल्प से होता है। (क्वसु के क् और उ इत्संज्ञक हैं केवल वस् मात्र शेष रहता है)। कानच् और क्वसु की 'तङानावात्मने पदम्' सूत्र से आत्मनेपद संज्ञा होती है।

चक्राणः---कृ धातु से लिट् के स्थान में कानच् प्रत्यय हुआ। कानच् के लिट् के स्थान में होने से-'लिटिधातोरनभ्यासस्य' से धातु को द्वित्व तथा 'पूर्वोऽभ्यासः' से अभ्यास संज्ञा हुई। 'हलादि शेषः' तथा चुत्व होकर 'चकृ आन' बना। फिर यण् तथा णत्व होकर चक्राण बना। प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा ए० व० में

चक्राणः बना।

मू०—८३३—म्वोश्च ८।२।६५। मान्तस्य धातोर्नत्वं म्वोः परतः। जगन्वान्।

अनु०—म और व परे रहते मान्त धातु को मके स्थान में नकार आदेश होता है।

जगन्वान्—गम्—धातु से लिट् के स्थान में क्वसु प्रत्यय होने पर क्वसु के लिट् के स्थान में होने से 'लिटि धातोरनभ्यासस्य' सूत्र से धातु को द्वित्व तथा 'पूर्वोभ्यासः' से अभ्याससंज्ञा तथा 'हलादिशेषः' से प्रथम गम् के म् का लोप होने पर 'गगम् वस्' बना। 'कुहोश्चुः' से चुत्व होकर 'जगम्वस्' बना। 'म्वोश्च' सूत्र से म् का न होकर 'जगन्वस्' बना। तदनन्तर प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा ए०व० में जगन्वान् बना।

मू० ८३४—लटः शतृशानचावप्रथमा समानाधिकरणे ३।२।१२४। अप्रथमान्तेन समानाधिकरणे लटः एतौ स्तः। पचन्तं चैत्रं पश्य।

अनु०—प्रथमान्त से भिन्न समानाधिकरण होने पर लट् के स्थान में शतृ और शानच् होते हैं।

विमर्श—शतृ और शानच् होने के लिए प्रथमान्त से भिन्न ही समानाधिकरण होना चाहिये। शतृ के श् और ऋ की इत्संज्ञा होती है। अतएव 'अत्' मात्र बचता है। ऋ की इत्संज्ञा होने से शतृ उगित् है। स्त्रीलिङ्गमे शतृ प्रत्ययान्त शब्दों से ङीष् होता है। शतृ प्रत्यय परस्मैपदी धातुओं से ही होता है। शानच् प्रत्यय के श् और च् इत्संज्ञक हैं। केवल प्रत्यय का 'आन' बचता है। शानच् प्रत्यय आत्मने पदीय धातुओं से ही होता है। शानच् की 'तङ्आनावात्मनेपदम्' सूत्र से आत्मनेपदसंज्ञा होती है।

शतृ और शानच् दोनों के ही शित् होने से इनकी सार्व

धातुक संज्ञा होती है और शप् आदि कार्य होते हैं।

पचन्तं चैत्रं पश्य-(पकाते हुए चैत्र को देखो ।) इस अर्थ में पच् धातु से 'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे' सूत्र से शतृ प्रत्यय होकर पच् अत्' बना । शतृ के सार्वधातुक होने से शप् प्रत्यय होगा । 'अतोगुणे' से पररूप होकर पचत् बना : फिर प्रातिपदिकसंज्ञा होकर द्वितीया एकवचन में नुम् होकर पचन्तम् बना । पचन्तम् का समानाधिकरण चैत्रम् इस द्वितीयान्त पद से है ।

मू० ८३५--आनेमुक् ७।२।८२। अदन्ताङ्गस्य 'मुग्' आगमः स्यात् आने परे । पचमानं चैत्रं पश्य । लट् इत्यनुवर्तमाने पुनर्लड् । ग्रहणात् प्रथमा समानाधिकरण्ये क्वचित् । सन् द्विजः ।

अनु०-अदन्त अङ्ग को मुक्का आगम होता है, यदि उससे आन परे रहे तो । (मुक् में उ और क् इत्संज्ञक है, म् शेष रहता है ।

पचमानं चैत्रं पश्य-(पकाते हुए चैत्र को देखो) पच् धातु से लट् के स्थान में 'लटः शतृ शानचावप्रथमा समानाधिकरणे । से शानच् प्रत्यय होने के पश्चात् 'शानच्' के सार्वधातुक होने के कारण शप् विकरण होकर 'पप् आन' बना । 'आने मुक्' से मुगागम होकर पचमान होता है । प्रातिपदिकसंज्ञा होकर द्वितीया ए०व० में पचमानम् बनता है ।

'लट्' इत्यादि--यद्यपि 'वर्तमाने लट्' सूत्र से लट् की अनुवृत्ति इस सूत्र में आरही है; फिर भी जो लट् का ग्रहण इस सूत्र में किया गया उसका एकमात्र कारण है कि कहीं-कहीं पर प्रथमा समानाधिकरण में शतृ और शानच् प्रत्यय हुआ करते है । जैसे 'सन्द्विजः' इस वाक्य में 'द्विजः' यह प्रथमान्त समानाधिकरण के रहने पर भी सन् में शतृ प्रत्यय हुआ है ।

सद्द्विजः--(विद्यमान् ब्राह्मण) इस अर्थ में अस् धातु से लट् के स्थान में 'लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे ।' सूत्र से शतृ प्रत्यय हुआ । फिर 'असोरल्लोपः' सूत्र से 'अस्' के अ का लोप होकर 'सत्' बना । पुनः प्रातिपादिक संज्ञा होने पर प्रथमा एक वचन में नुम् हुआ । फिर स् का हलङ्यादि लोप हुआ और त् का संयोगान्त लोप होकर सन् शब्द सिद्ध हुआ ।

मू०८३६-विदेः शतुर्वसुः ७।१।६६ । वेत्तेः परस्य शतुर्वसुरादेशो वा विदन्; विद्वान् ।

अनु०—ज्ञानार्थक विद् धातु से परे शतृ के स्थान में वसु प्रत्यय का आदेश विकल्प से होता है । (वसु के उगित् होने से नुमागम होता है ।)

विद्वान् विदन्--ज्ञानार्थक 'बिद्' धातु से लट् के स्थान में शतृ प्रत्यय हुआ । शतृ के स्थान में इस सूत्र से वसु आदेश होकर विद्वस् बना । वसुके उगित होने से प्रथमा एक वचन में नुमागम हुआ । सु का हलङ्यादि लोप उपधा का दीर्घ, तथा स् का संयोगान्त लोप होकर विद्वान् बना ।

जहां पर 'विदेः शतुर्वसु' से वसु प्रत्यय नहीं हुआ वहाँ पर प्रथमा में नुमागम सु का हलङ्यादि लोप तथा स् का संयोगान्त लोप होकर विदन् रूप बना ।

मू० ८३७-- तौ सत् ३।२।१२७। तौ शतृशानचौ सत्संज्ञौ स्तः । ८३८-लृटः सद्वा ३।३।१४ । व्यवस्थित विभाषेयम् । तेनाऽप्रथमासामानाधिकरण्ये प्रत्ययोत्तरपदयोः संबोधने लक्षण हेत्वोश्चनित्यम् । करिष्यन्तं करिष्यमाणं पश्य ।

अनु-८३७ शतृ और शानच् इन दोनों प्रत्ययों की सत् संज्ञा होती हैं । ८३८ लृट् लकार के स्थान में सत्संज्ञक शतृ और शानच् प्रत्यय विकल्प से होते हैं ।

व्यस्थित इत्यादि--यह लृट् के स्थान में शतृ और शानच् का आदेश व्यवस्थित विभाषा हैं। अर्थात् यह वैकल्पिक आदेश प्रयोग विशेष में होता है और प्रयोग विशेष में नहीं होता है। व्यवस्थित विभाषा होने के ही कारण प्रथमा से भिन्न सामाना-धिकरण्य स्थल में प्रत्यय तथा उत्तर पद परे रहते तथा सम्बो-धन में लक्षण तथा हेतु परे रहते ही सत् प्रत्यय (शतृ और शानच्) होते हैं।

करिष्यन्तं --करिष्यमाणं पश्य-(करते हुए को देखो) इस अर्थ में। यहां कृ धातु से 'लृटः सद्वा' सूत्र से लृट् के स्थान में शतृ और शानच् प्रत्यय हुए हैं। पश्य उत्तर पद के परे रहने के कारण। पुनः 'स्यतासि लृलुटोः' सूत्र से स्य तथा इट होने पर करिष्यत् एवं 'करिष्य' आन हुआ। पुनः षत्व हुआ तथा 'आनेमुक' से 'शानच्' प्रत्यय वाले स्थल में मुगागम तथा णत्व होकर करिष्यमाण हुआ। फिर प्रातिपदिकसंज्ञा होने पर द्वितीया एक वचन में करिष्यत् में नुम् होकर करिष्यन्तम् बना और करिष्यामाण का करिष्यमाणम् बना।

मू०८३९-'आक्वेस्तच्छील-तद्धर्म तत् साधुकारिषु ३।२।१३४। क्वि-पमभिव्याप्यवक्ष्यमाणाः प्रत्ययाः तच्छील्यादिषु कर्तृषु बोध्याः। ८४०-तृन् ३।२।१३५। कर्ता कटान्।

अनु०-८३९--क्विप् पर्यन्त कहे जाने वाले प्रत्यय तच्छील, तद्धर्म और तत् कर्ता अर्थ में होते हैं। ८४०-कर्ता अर्थ में धातु से तृन् प्रत्यय होता है।

कर्ताकटान्--(चटाई बनाने का स्वभाव या धर्म वाला या अच्छी चटाई बनाने वाला) इन अर्थों में कृ धातु से 'आ क्वे स्तच्छील्य तद्धर्म तत्साधुकारिषु' सूत्र के सहकार से 'तृन्' सूत्र द्वारा तृन् प्रत्यय होकर कृतृं बना।

अर्धधातुक प्रत्यय तृन् के परे रहते कृ के ऋ का आर्धधातुक गुण तथा रपर होने पर कर्तृ बना। प्रातिपदिक संज्ञा होने के पश्चात् प्रथमा ए० व० में कर्ता बना।

कर्ता कटान् के कटान् में 'कर्तृकर्मणोः कृति' सूत्र से कर्म में षष्ठी प्राप्त थी किन्तु 'न लोका व्ययनिष्ठा खलर्थतृनाम्' सूत्र से कृ कातृनन्त् के संयोग से कर्म में द्वितीया हुई।

मू०—८४१—जल्पभिक्षकुट्टलुण्ठवृङः षाकन् ३।२।१५५। ८४२—षः प्रत्ययस्य १।३।६। प्रत्ययस्यादिः षः इत्संज्ञः स्यात्। जल्पाकः, भिक्षाकः कुट्टाकः, लुण्ठाकः। वराकः, वराकी।

अनु०—८४१—जल्प, भिक्ष्, कुट्ट, लुण्ठ्, और वृङ् धातुओं से षाकन् प्रत्यय होता है। ८४२—प्रत्यय के आदि में विद्यमान ष् की इत्संज्ञा होती है।

जल्पाकः—जल्प् धातु से 'जल्पभिक्षकुट्टलुण्ठवृङः षाकन्' सूत्र से 'षाकन्' प्रत्यय होने पर षाकन् के ष् की 'षः प्रत्ययस्य' सूत्र से इत्संज्ञा होने पर जल्पाक बना प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा एकवचन में जल्पाकः बना।

भिक्षाकः—कुट्टाकः—तथा लुण्ठाकः—क्रमशः—भिक्ष्, कुट्ट तथा लुण्ठ् धातु से षाकन् प्रत्यय होकर तथा प्रत्यय के आदि ष की इत्संज्ञा होकर प्रथमा एकवचन में ये सभी शब्द बनेंगे जल्पाकः के समान।

वराकः—वराकी—वृङ् धातु से षाकन् प्रत्यय होने पर ष् की इत्संज्ञा होकर षाकन् के आर्धधातुक होने से वृ के ऋ का आर्धधातुक गुण तथा रपर होकर वराक बनेगा। तथा स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय होकर वराकी बनेगा। दोनों के प्रथमा एकवचन में क्रमशः रूप होंगे—वराकः, वराकी।

मू०—८४३—सनाशंस भिक्ष उः ३।२।१६८। चिकीर्षुः, आशंसुः,

भिक्षुः ।

अनु०—सन् प्रत्ययान्त, आशंस् धातु तथा भिक्ष् धातु से उ प्रत्यय होता है ।

चिकीर्षुः—कृधातु के सनप्रत्ययान्त चिकीर्ष धातु से 'सनाशंस्भिक्ष उः' से उ प्रत्यय होकर प्रथमा ए० व० में चिकीर्षुः बना । आशंसुः तथा भिक्षुः-में भी उ प्रत्यय होकर प्रथमा एक वचन में रूप सिद्ध हुआ है ।

मू०—८४४-भ्राज-भास-धुर्वि-द्युतोर्जि-पॄ-जु-ग्रावस्तुवः क्विप् ३।२।१७७। विभ्राट्, भाः ।

अनु०—विपूर्वक भ्राज्, भास्, धुर्, विपूर्वक द्युत्, उर्ज्, पृ, जु, तथा ग्राव पूर्वक स्तु धातु से क्विप् प्रत्यय होता है ।

विभ्राट्—विपूर्वक भ्राज् धातु से 'भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुवः क्विप्' सूत्र से क्विप् प्रत्यय होने पर क्विप् का सर्वापहारी लोप हुआ । तदनन्तर विभ्राज् शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा होने पर सु विभक्ति आयी । पुनः 'व्रश्च भ्रस्ज-' इत्यादि सूत्र से ज् को ष् तथा जश् होकर ष् को ड् एवं 'वाऽवसाने' से चर् होकर ड का ट् होने पर विभ्राट् बना ।

भाः—भास् धातु से 'भ्राज-भास धुर्वि-' इत्यादि सूत्र से क्विप् प्रत्यय होने पर क्विप् का सर्वापहारी लोप हुआ । फिर प्रथमा एकवचन में सु का हलङ्यादि लोप तथा स् का रुत्व-विसर्ग होने पर 'भाः' (ज्योति) शब्द की सिद्धि हुई ।

मू०—८४५-राल्लोपः ६।४।२१। रेफाच्छ्वोः लोपः क्वौ झलादौ क्ङिति । धूः । विद्युत् । ऊर्क् पूः । दृशग्रहणस्यापकर्षाद् जवतेर्दीर्घः जूः । ग्रावस्तुत् ।

अनु०—रेफ से परे श् और व् का लोप होता है क्वि और झलादि कित् ङित् परे रहते ।

घूः--धुर्व् धातु से-'भ्राज-भासधुर्विद्युतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः क्विप्' सूत्र से क्विप् प्रत्यय होकर उसका सर्वापहारी लोप होकर 'राल्लोपः' सूत्र से रेफ से परे व् का लोप होकर धुर् बना। प्रातिपदिक संज्ञा होकर सुविभक्ति आने पर सु का हल्ङ्यादि लोप तथा-'र्वोरुपधायाः' सूत्र से उपधा को दीर्घ होने पर र् का विसर्ग होकर धूः बना।

विद्युत्--विपूर्वक द्युत् धातु से क्विप् होकर यह रूप प्रथमा एकवचन में बनेगा।

उर्क्--(बली) उर्ज् धातु से 'भ्राज-भाः इत्यादि सूत्र से क्विप् प्रत्यय होकर प्रथमा एकवचन में सु का हल्ङ्यादि लोप तथा 'चोः' कुः से ज का ग् एवं चर् होकर उर्क् बना।

पूः--पृ धातु से 'भ्राज-भासधुर्विद्युतोर्जपृजुग्रावस्तुवः क्विप्' से क्विप् होकर क्विप् को सर्वापहारी लोप हुआ। पुनः-'उदोष्ठ्यपूर्वस्य' सूत्र से ॠ का उर् आदेश होकर पुर् बना। प्रथमा एकवचन में सु का हल्ङ्यादि लोप' र्वोपधायाः से उपधा को दीर्घ होकर र् का विसर्ग होकर 'पूः' शब्द बना।

दृशि इत्यादि--'अन्येभ्योऽपिदृश्यन्ते' सूत्र में दृश्यते पद आया है। इस दृश् के ग्रहण का फल है अन्य कार्य भी होते हैं। इसीं का अपकर्ष इस सूत्र में होता है। अतएव जु धातु को क्विप् प्रत्यय होने पर दीर्घ भी हो जाता है। तदनन्तर दीर्घउकारान्त जू शब्द का प्रथमा में रूप बनता है 'जूः'। जूः = रोगी।

ग्रावस्तुत्--मूर्तिपूजक-ग्रावपूर्वक स्तु धातु से 'भ्राजभासद्युविधुतोर्जिपृजुग्रावस्तुवः' सूत्र से क्विप् प्रत्यय होने पर क्विप् का सर्वापहारी लोप हुआ। पुनः 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' से तुगागम होकर प्रथमा एकवचन में 'ग्रावस्तुत्' शब्द बना।

सू०—(वा०) क्विब्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणांदीर्घोऽसम्प्रसारणं

च। 'वक्ति' इति वाक्।

अनु०--वच्, प्रच्छ, आयत पूर्वक स्तु, कट पूर्वकप्रु, जु और श्री धातु से क्विप् प्रत्यय, दीर्घ तथा सम्प्रसारण का अभाव होता है।

वाक्--वक्ति (जो कहे) इस अर्थ में वच् धातु से 'क्विब्-वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसप्रसारणं च' वार्तिकसे क्विप् प्रत्यय और दीर्घ हुआ पुनः क्विप् का सर्वापहारी लोप होकर वाच् शब्द का प्रथमा ए० व० में 'चोः कुः' से कुत्व होकर वाक् बना।

सू०--८४६-च्छ्वोःशूडनुनासिके च ६।४।१९। सतुक्कस्य छस्य वस्य च क्रमात् 'श' 'ऊठ्' इत्यादेशौ स्तोऽनुनासिके क्वौ झलादौ च क्ङिति। पृच्छतीति प्राट्। आयतंस्तौति-आयतस्तूः प्रवते-कटप्रूः, जूः-उक्तः। श्रयति हरिम्-श्रीः।

अनु०--तुक्युक्त छ् और व् को क्रमशः श् और ऊठ् आदेश होते हैं अनुनासिक क्वि तथा झलादि कित् एवं ङित् परे रहते।

प्राट्--पृच्छति (पूछने वाला) के अर्थ में पृच्छ् धातु से 'क्विव्वचिप्रच्छयायतस्तुकटप्रुजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्चे' वार्तिक से क्विप् प्रत्यय, दीर्घ तथा सम्प्रसारण का अभाव होकर 'च्छ्वोश्शूडनुनासिके च' सूत्र से छ् का श, तथा 'व्रश्चभ्रस्ज-' इत्यादि सूत्र श् का ष् होने पर जश् होकर षकार तथा 'वाऽव-साने' सूत्र से चर् होकर प्राट् रूप बना।

आयतस्तूः--आयतं स्तौति (लम्बी स्तुति करने वाला) के अर्थ में आयत पूर्वक स्तु धातु से 'क्विव्वचिप्रच्छ्यायतस्तुकटप्रू' इत्यादि वार्तिक से क्विप् तथा दीर्घ होकर प्रथमा ए० व० में आयतस्तूः रूप सिद्ध हुआ।

कटप्रूः--कट प्रवते (चटाई बनाने वाला) के अर्थ में कट

पूर्वकप्रु धातु से 'क्विब्वचि प्रच्छयायतस्तु कटप्रु०' इत्यादि वार्तिक से क्विप् प्रत्यय होने पर दीर्घ होकर प्रथमा ए०व० में कटप्रूः रूप बना।

जूः—की सिद्धि पहले की जा चुकी है।

श्रीः—श्रयतिहरिम् (जो भगवान् को आश्रयण करे।) इस अर्थ में श्रो धातु से 'क्विब्वचि प्रच्छ्यायतकटप्रु स्तु पृजुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च' सूत्र से क्विप् तथा क्विप् का सर्वापहारी लोप होकर प्रथमा ए० व० में श्रीः शब्द बनता है।

मू० ८४७—दाम्नीशसयुयुजस्तुतुदसिसिचमिहपतदशनहः करणे ३।२।१८२। दावादेः ष्ट्रन् स्यात्करणेऽर्थे। दात्यनेन दात्रम्, नेत्रम्

अनु०—दाप् (काटना) नी (लेजाना) शस् (मारना) यु (मिलाना) युज् (जोड़ना) स्तु (स्तुति करना) तुद् (व्यथा देना) सि (बांधना) सिच् (सिचना) मिह् (सिचना) पत् (गिरना) दश् (दंशना) और नह् (बाँधना) धातुओं से करण के अर्थ में ष्ट्रन प्रत्यय होता है (ष्ट्रन् के ष् और न् इत्संज्ञक है। ष् का लोप होने से ट अपने पूर्व रूपमे बदल जाता है अतएव ष्ट्रन् का केवल त्र ही शेष रहता है।

दात्रम् (दात्यनेन अनेन) इससे काटता है) इस अर्थ में दाप् धातु से 'दाम्नी शसयुयुजस्तुतुद सिसिच०' इत्यादि सूत्र से 'ष्ट्रन् प्रत्यय होकर दात्र बना। प्रथमा ए०व० में दात्रम् बना।

नेत्रम्—नयति अनेन (इसके द्वारा रूपादि को ले जाता है।) इस अर्थ में नी से धातु से ष्ट्रन्' दाम्नो शस्युयुज० आदि सूत्र से ष्ट्रन प्रत्यय होकर आर्धधातुक गुण होकर नेत्र बनेगा। प्रथमा ए० व० में 'नेत्रम्' रूप बनेगा।

मू०८४८—'तितुत्रतथसिसुसुरकसेषुच' ७।२।९। एषां दशानां कृत् प्रत्ययानामिण्न। शास्त्रम्, योत्रम्, योक्त्रम्, स्तोत्रम् तोत्त्रम्, सेक्त्रम्, मेढ्रम्

पत्त्रम्, दंष्ट्रा, नद्ध्री ।

अनु०--ति (क्तिन्, क्तिच्), तु (तृन्), त्र (ष्ट्रन्) त (तन्) थ (क्थन्) सि (क्सि) सु, सर (सरन्) क (कन्) तथा स इन दसों कृत् प्रत्ययों से इट् नहीं होता है ।

शस् + ष्ट्रन् = शस्त्रम्, (मारने का साधन) यु + ष्ट्रन् = योत्रम् (मिलाने का साधन) युज् + ष्ट्रन् = योक्त्रम् (जोड़ने का साधन रस्सी आदि। स्तु + ष्ट्रन् = स्तोत्रम् (स्तुति) तुद + ष्ट्रन् तोत्त्रम् (चाबुक) सि + ष्ट्रन् = सेत्रम् (बांधने को रस्सी) सिच् + ष्ट्रन् = सेक्त्रम् (सींचने का पात्र) मिह् + ष्ट्रन् = मेढ्रम् (अण्डकोश) पत् + ष्ट्रन् = पत्त्रम् (सवारी पत्ता) दंश् + ष्ट्रन् = दंष्ट्रा (ज़बड़ा) नह् + ष्ट्रन् नद्ध्री (चमड़े की रस्सी)

इन सभी ष्ट्रन् प्रत्ययान्त शब्दों में 'आर्धधातुकस्येड्वलादेः' सूत्र से इडागम प्राप्त था किन्तु 'तितुत्रतथसिसु सरकसेषु च' सूत्र से इट का निषेध होकर उपर्युक्त रूप बने हैं । सेत्रम्, योत्रम् स्तोत्रम् तथा तोत्त्रम् में आर्धधातुक गुण हुआ है। योक्त्रम् तथा सेक्त्रम् में गुण तथा कुत्व दोनों कार्य हुए हैं। मेढ्रम् में गुण और द् का 'होढः' से ढ हुआ है । दंष्ट्रा में ष और ष्टुत्व हुआ है । नद्ध्री-मे ह्‌को 'न हो धः' सूत्र से ध तथा तुगागम हुआ है ।

सू० ८४९--अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्रः । ३।२।१८४ । अरित्रम्; लवित्रम्, धवित्रम्, सवित्रम्, खनित्रम्, सहित्रम्, चरित्रम् ।

अनु०-ऋ (जाना) लू (काटना) धू (कँपाना) सू (पैदा करना) खन् (खनना) सह् (सहना) और चर् (चलना या खाना) इन धातुओं से इत्र प्रत्यय होता है ।

अरित्रम्-(नावखेने का डंडा) ऋ धातु से 'अर्तिलूधूसूखन सहचर् इत्रः' सूत्र से इत्र प्रत्यय होने पर इत्रके आर्धधातुक होने के कारण आर्धधातुक गुण तथा रपर होकर अरित्र बनेगा ।

प्रथमा ए० व० अरित्रम् बनेगा।

लवित्रम्—लू धातु से 'अर्तिलूधू०' इत्यादि सूत्र के द्वारा इत्र प्रत्यय होने पर लू को आर्धधातुक गुण तथा अवादेश होकर प्रथमा ए० व० में लवित्रम् रूप बना।

धवित्रम् तथा सवित्रम् भी लवित्रम् के ही तरह बनेंगे।

खनित्रम्—और सहित्रम् और चरित्रम् में केवल इत्र प्रत्यय ही होगा।

सू०८५०–पुवः संज्ञायाम् ३।२।१८५। पवित्रम्। इति पूर्वं कृदन्तम्।

अनु०–पु धातु से संज्ञा अर्थ में इत्र प्रत्यय होता है।

पवित्रम्—पू धातु से संज्ञा अर्थ में 'पुवः सञ्ज्ञायाम्' सूत्र से इत्र प्रत्यय होने के पश्चात् धातु के उ को आर्धधातुक गुण होकर तथा आवादेश होकर पवित्र बना। पुनः प्रथमा ए० व० में पवित्रम् बना।

इस तरह पूर्व कृदन्त की हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई।

अथ कृदन्ते उणादयः—

सू०—(उ०) कृवापाजिमिस्वदिसाध्य शूभ्यउण्। करोतीति कारुः। वातीति–वायुः। पायुः–गुदम्। जायुः–ओषधम्। मायुः–पित्तम्। स्वादुः। साध्नोतिपरकार्यमिति साधुः। आशुशीघ्रम्॥

अनु०–कृ, वा, पा, जि, मि, स्वद्, साध् और आश् धातुओं से उण् प्रत्यय होता है।

कारुः–(शिल्पी) करोति इस अर्थ में कृधातु से 'कृवापाजिमिस्वद्साधू' इत्यादि से उण् प्रत्यय होकर इसके णित् होने से 'अचोञ्णिति' सूत्र से ऋ की आ वृद्धि तथा रपर होकर कारु बना प्रथमा ए०व० कारुः बना।

वायुः (हवा) 'वाति' के अर्थ में वा धातु से 'कृवापाजिमि०' से उण् प्रत्यय होने के पश्चात् 'आतोयुक्चिण्वकृतोः' सूत्र से युक् होकर अनुबन्ध लोप होने पर वायु बना प्रथमा ए०व० में

वाधुः बनेगा । पायुः (मलेन्द्रिय) भी पाधातु से इसी तरह बनेगा । जायु; (जयति रोगान्) इस अर्थमें बनेगा । जायुः = औषधि ।

मायुः—(पित्त) (मिनोतिप्रक्षिपत्ति देहे उष्माणम्) इस अर्थ में मि धातु से 'कृवापाऽजिमि०' इत्यादि से उण् प्रत्यय होकर प्रत्यय के णित होने से 'अचोञ्णिति' से वृद्धि तथा आयादेश होकर प्रथमा ए०व० में मायुः बनेगा।

स्वादुः—'अच्छा स्वाद वाला' स्वद् धातु से उण् प्रत्यय तथा 'अतउपधायाः' से उपधा को दीर्घ होकर प्रथमा ए०व० में स्वादुः शब्द बनेगा ।

साधुः—(सज्जन) (साध्नोतिपरकार्यम्) के अर्थ में साध् धातु से उण् प्रत्यय होकर प्रथमा ए०व० में यह रूप बनेगा ।

आशु-(शीघ्र) अश् धातु से उण् प्रत्यय तथा उपधाका दीर्घ होकर प्रथमा ए०व०न० लिङ्ग में यह रूप बनेगा ।

मू०—उणादयो बहुलम् ३।३।१ । एते वर्तमाने संज्ञासु च बहुलं स्युः । केचिदविहिता अप्युह्याः । संज्ञायाम् धातुरूपाणि प्रत्ययश्च ततः परः । कार्याद् विद्यादनूबन्धम् एतच्छास्त्रमुणादिषु ॥

इत्युणादयः

अनु०—उण आदि प्रत्यय वर्तमानकाल तथा संज्ञा अर्थ में बाहुलकात् होते हैं । यहां पर जिनका किसी सूत्र से विधान नहीं किया गया हो उन प्रत्ययों की भी कल्पना कर लेनी चाहिये इस अर्थ को सूत्र का बहुलम् पद सूचित करता है ।

संज्ञासु० इत्यादि—उणादि का नियम है कि संज्ञाओं में जो संभव हो सके उस धातु की कल्पना करके शेष भाग को प्रत्यय का भाग समझ लेना चाहिये और प्रत्ययों के भी कार्यानुसार अनुबन्ध की कल्पना करनी चाहिये ।

अर्थात् किसी भी संज्ञा शब्द को सिद्ध करने के लिए उसके पूर्व भाग को धातु का रूप मान लेना चाहिये। शेष भाग को प्रत्यय भाग मानकर उसके अनुसार गुण आदि कार्य तथा प्रत्यय के अनुबन्ध की कल्पना करनी चाहिये। यहां पर संज्ञासु पद के द्वारा अनादि संज्ञाओं को ही लिया जाता है सबों को नहीं। जैसे शंकुलम्' संज्ञा को सिद्ध करने के लिए 'हृषेरुलच' इस सूत्र से बिहित उल् प्रत्यय को देखकर शंक् धातु की कल्पना करके 'शंकुलम् पद को सिद्ध किया जाता है।

इस तरह उणादि प्रकरण की हिन्दी व्याख्या समाप्त हुई।

अथोत्तरकृदन्तम्

सू०८५२—तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ३।४।१०। क्रियार्थायाम् क्रियायामुपपदेभविष्यत्यर्थे धातोरेतौ स्तः। मान्तत्वादव्ययत्वम्। कृष्णं द्रष्टुं याति। कृष्ण दर्शको याति।

अनु०—क्रियार्थ क्रिया के उपपद रहने पर धातु से भविष्यत् अर्थ में तुमुन् और ण्वुल् प्रत्यय होते हैं। तुमुन् प्रत्ययान्त शब्द मान्त होने के कारण अव्यय होते हैं, किन्तु ण्वुल् प्रत्ययान्त नहीं।

विमर्श—कृदन्त प्रकरण दो भागों में विभक्त है—पूर्वकृदन्त और उत्तर कृदन्त। पूर्वकृदन्त में धातु से होने वाले प्रायः प्रत्यय कारक के अर्थ में आते हैं किन्तु उत्तर कृदन्त के प्रत्यय प्रायः भाव अर्थ में होते हैं। उत्तर कृदन्त के कुछ प्रत्ययों वाले शब्द अव्यय होते हैं। तुमुन् प्रत्यय का उन् इत्संज्ञक है—और तुम् शेष बचता है। तुमुन् प्रत्ययान्त शब्द 'कृन्मेजन्तः' सूत्र से अव्यय होते हैं। तथा 'अव्ययः कृतो भावे' से यह प्रत्यय भाव में आता है। ण्वुल् प्रत्यय मान्त नहीं है अतएव यह कर्ता अर्थ में आता है और ण्वुल् के ण् ल् की इत्संज्ञा होती है केवल वु मात्र बचता है।

कृष्णं द्रष्टुं याति—(कृष्ण को देखने के लिए जाता है) क्रियार्थक क्रिया याति के उपपद (सन्निकटस्थ) रहने के कारण दृश् धातु से 'तुमुन् ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम्' सूत्र से तुमुन् प्रत्यय होकर 'सृजिदृशिर्झल्यमकिति' सूत्र से अमागम हुआ। पुनः दृश् के ऋ को यण् र् तथा श् का 'व्रश्चभ्रस्ज' इत्यादि सूत्र से ष तथा ष्टुत्व होकर द्रष्टुम् बना। पुनः प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा में सु विभक्ति तथा सुप् का लुक् होकर द्रष्टुम् बना।

कृष्णं दर्शको याति—(कृष्ण को देखने वाला जाता है)। यहां पर 'तुमुन्ण्वुलो कियायां क्रियार्थायाम्' सूत्र से ण्वुल् प्रत्यय होने पर 'युवोरनाकौ' से वु को अक होकर दृश् के ऋ को र् यण् होकर दर्शक बना। पुनः प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा एक बचन में 'दर्शकः' हुआ।

कृष्णम् दर्शकः में 'अकेनोर्भविष्यदाधमर्ण्ययोः' सूत्र से षष्ठी का निषेध होकर द्वितीया हुई।

मू०—८५३—कालसमयवेलासु तुमुन्' ३।३।१६७। कालार्थेषूपपदेषु तुमुन्। कालः समयो वेला वा भोक्तुम्।

अनु०—काल समय अथवा वेला के उपपद रहने पर धातु से तुमुन् प्रत्यय होता है।

कालः समयो बेला वा भोक्तुम्—'भोजन करने का काल समय या बेला) इन उपपदों के रहते भुज् धातु से 'कालसमयवेलासु तुमुन्' सूत्र से तुमुन् प्रत्यय होकर तथा लघुपध को गुण होकर 'भोजतुम्' बना। पुनः 'चोकुः' से ज का ग् तथा ग् का चर क् होकर 'भोक्तुम्' बना। फिर प्रातिपदिक संज्ञा होने पर अव्ययत्वात् विभक्ति का लोप होकर 'भोक्तुम्' यह ही रूप रहा।

मू०—८५४—भावे ३।३।१८। सिद्धावस्थापन्ने धात्वर्थे वाच्ये धातोर्घञ्। पाकः।

अनु०--सिद्धावस्था को प्राप्त धातु के वाच्यार्थं भाव (व्यापार) हो तो धातु से घञ् प्रत्यय होता है।

विमर्श--घञ् के घ् और ञ् इत्संज्ञक हैं, अ मात्र बचता है। घञ् प्रत्यय भाव में आता है। घञ् प्रत्ययान्त शब्द पुल्लिग होते हैं। धातु के अर्थं रूप भाव तिङन्तावस्था में साध्यावस्थापन्न होता है तथा कृत् प्रत्ययाभिहित होने पर सिद्धावस्थापन्न होता है।

पाकः--पच् धातु से 'भावे' सूत्र से घञ् प्रत्यय होने पर 'अचोञ्णिति' से धातु को वृद्धि होगी। 'चोकुः' से कुत्व होकर प्रथमा ए० व० में पाकः बनेगा।

मू०--८५५-अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्' ३।३।१९। कर्तृभिन्ने कारके घञ् स्यात्। ८५६-घञि च भावकरणयोः ६।४।२७। रञ्जेर्नलोपः स्यात्। रागः। अनयोः किम्-रज्यत्यस्मिन्निति-रङ्गः।

अनु०--८५५-कर्ता से भिन्न कारक के अर्थ में संज्ञा में घञ् प्रत्यय होता है। ८५६-रञ्ज् धातु के न का लोप होता है यदि धातु से परे भाव और करण में घञ् प्रत्यय होते हैं।

राग०--रन्ज् धातु से घञ् 'अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्' सूत्र से कर्तृव्यतिरिक्त करण अर्थं में घञ् प्रत्यय होने पर 'घञि च भाव करणयोः' सूत्र से 'रन्ज्' के न् का लोप होकर रज् अ बना। फिर 'अचोञ्णिति' सूत्र से वृद्धि होकर तथा ज् को कुत्व होकर राग बना। तथा प्रथमा ए०व० में रागः बना।

अनयोः किम् रङ्गः-सूत्र में यह क्यों कहा गया है कि भाव और करण में ही घञ् प्रत्यय रहने पर रन्ज् के न् का लोप होता है? तो इसका उत्तर है कि 'रज्यत्यस्मिन्' इस विग्रह में रन्ज् धातु से 'अकर्तरि च कारके सज्ञायाम्' इस सूत्र से घञ् प्रत्यय होने पर न् का लोप नहीं हुआ और कुत्व होकर रङ्गः

प्रथमा ए० व० में रूप हुआ । रङ्गः = नाट्यशाला ।

मू०---८५७-निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्चकः' ३।३।४१। एषु चिनोतेर्घञ् आदेश्च ककारः । उपसमाधानम्-राशीकरणम् । निकायः; कायः, गोमय निकायः ।

अनु०---निवास, चिति (यज्ञस्थल का वह स्थान विशेष जहां पर इष्टिका चयन किया जाता है) । शरीर तथा उपसमाधान (ढेर लगाना) इन अर्थों में चिञ् धातु से घञ् प्रत्यय होता है तथा आदि वर्ण को क आदेश होता है ।

निकायः---(घर) निपूर्वक चिधातु से 'निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्चकः' सूत्र से घञ्प्रत्यय तथा चि के च् का क् होने पर 'अचोञ्णिति' से वृद्धि तथा आयादेश होकर प्रथमा ए० व० में निकायः बना । (अवधनिकायः-अवध का रहने वाला) ।

कायः = चि धातु से घञ् प्रत्यय होने पर यह रूप बनेगा । कायः = चिति (इष्टिका चयन का स्थल विशेष) जैसे-आकायमग्निञ्चिन्वीत-अर्थात् इष्टिका चयन पुरस्सर अग्निचयन करे । कायः = शरीर (आचीयन्तेस्थ्यादीनि अस्मिन्निति कायः । निकाय = ढेर-जैसे गोमय निकायः = गोबर का ढेर ।

मू०---८५८-एरच् ३।३।५३। इवर्णान्तादच् । चयः । जयः ।

अनु०---इवर्णान्त धातुओं से अच् प्रत्यय होता है ।

चयः---चिञ् धातु से 'एरच्' सूत्र से अच् प्रत्यय होकर, धातु के इ को आर्धधातुक गुण होकर तथा अयादेश होकर प्रथमा ए० व० में चयः रूप बनेगा ।

जयः---जिधातु से अच् प्रत्यय होकर चयः के समान यह रूप बनेगा ।

मू०---८५९-ॠदोरप् ३।३।५७। ॠदन्ता दुवर्णान्तादप् । करः, जरः, यवः, लवः, स्तवः, पवः ।

अनु०—दीर्घ ऋकारान्त और उवर्णान्त धातुओं से भाव में अप् प्रत्यय होता है। (अप् का अ ही शेष रहता है। अप् प्रत्ययान्त शब्द पुंल्लिग होते हैं। अप् प्रत्ययान्त शब्द पित् होने से अनुदात्त होता है।

करः—(विखेरना) कृ धातु से 'ऋदोरप्' सूत्र से अप् प्रत्यय होने पर धातु के ऋ का अ गुण तथा रपर होकर प्रथमा ए० व० में करः बनता है।

गरः—(निगलना) गृधातु से अप् प्रत्यय होकर यह शब्द बनता है।

यु+अप्=यवः (मिलाना, यव) लू+अप्=लवः (काटना) स्तु+अप्=स्तवः (स्तुति) पु+अप्=पवः (पवित्र करना) इन सभी शब्दों में धातुके इगन्त अंग का आर्धधातुक गुण होकर अवादेश होगा।

मू०—(वा०) घनर्थे क विधानम्—प्रस्थः, विघ्नः।

अनु०—घञ् प्रत्यय के अर्थ में क प्रत्यय होता है। (क का क् इत्संज्ञक है केवल अ बचता है। इस् प्रत्यय के कित् होने से गुण आदि का निषेध होता है।

प्रस्थः—(अञ्जलि, पर्वत शिखर) प्र पूर्वक स्था धातु से अधिकरण अर्थ में 'घञर्थे क विधानम्' वार्तिक से क प्रत्यय होने पर 'आतोलोप इटि च' सूत्र से आ का लोप होकर प्रथमा ए० व० में 'प्रस्थः' बना।

विघ्नः—(विघ्न) विपूर्वक हन्धातु से अधिकरण अर्थ में 'घञर्थे कविधानम्' वार्तिक से क प्रत्यय होकर 'गमहनजनखन्' इत्यादि सूत्र से उपधा के अ का लोप हुआ तथा 'होहन्तेः—' सूत्र से ह् का घ् होकर प्रथमा ए० व० में विघ्नः बना।

मू०—८६०—ड्वितः क्त्रिः ३।३।८८। ८६१—क्त्रेर्मम् नित्यम् ४।४।२०।

क्त्रिप्रत्ययान्तान्मम् निर्वृत्तेर्थे । पाकेन निर्वृत्तं पक्त्रिमम् । डुवप् = उप्त्रिमम् ।

अनु०--८६०-डु इत्संज्ञक धातु से क्त्रि प्रत्यय होता है। (क्त्रि का क् इत्संज्ञक है त्रि मात्र बचता) । ८६१-क्त्रि प्रत्ययान्त से मप् प्रत्यय होता है निर्वृत्त (सिद्ध) अर्थ में ।

पक्त्रिमम् = पका हुआ 'पाकेन सिद्धम्' (पाक से सिद्ध) अर्थ में 'पच्' (डुपचष्) पाके धातु से 'ड्वितः क्त्रिः' सूत्र से क्त्रि प्रत्यय होकर 'चोः कुः' से कुत्व होकर 'पक्त्रि' बना । 'क्त्रेर्मम्-नित्यम्' से मप्प्रत्यय होकर 'पक्त्रिम्' रूप बना । प्रथमा एक वचन में 'पक्त्रिमम्' रूप बना नपुंसकलिङ्ग में ।

उप्त्रिमम्--(बोया हुआ ; वप् (डुवप्) धातु से 'ड्वितः क्त्रिः' सूत्र से क्त्रि प्रत्यय होकर 'वचिस्वपियजादीनां किति' सूत्र से सम्प्रसारण होकर 'उप्त्रिम्' बना । 'क्त्रेर्मम् नित्यम्' से मप् होकर प्रथमा ए० व० न० लिङ्ग में 'उप्त्रिमम्' बना ।

मू०--८६२-'ट्वितोऽथुच्' ३।३।८९। टुवेपृ कम्पने वेपथुः ।

अनु०--टु इत्संज्ञक धातु से भाव अर्थ में अथुच् प्रत्यय होता है ।

वेपथुः--(कंपकपी) (टुवेपृ) वेप् धातु से 'ट्वितोऽथुच्' सूत्र से अथुच्प्रत्यय होकर वेपथुः बना प्रथम ए० व० में ।

मू०--८६३-यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ् । ३।३।९०। यज्ञः, याच्ञा, यत्नः, विश्नः प्रश्नः, रक्ष्णः ।

अनु०--यज्, याच्, यत्, विच्छ्, प्रच्छ और रक्ष् धातु से भाव आदि अर्थों में नङ् प्रत्यय होता है । 'नङ्' का 'ङ्' इत्संज्ञक है । 'याच्ञा' को छोड़कर अन्य नङ् प्रत्ययान्त शब्द पुंल्लिङ्ग होते हैं ।

यज्ञः--यज् धातु से 'यजयाचयतविच्छ प्रच्छरक्षोनङ्' सूत्र

सेनङ् प्रत्यय होने पर श्चुत्व होकर न का ञ होकर प्रथमा ए० व० में यज्ञः बना है ।

याच्ञा---याच् धातु से 'यजयाचयत' इत्यादि से नङ् तथा न का ञ् होकर स्त्रीलिङ्ग में 'अजाद्यतष्टाप्' सूत्र से टाप् होकर प्रथमा ए० व० में 'याच्ञा' बना ।

यत्नः---यत् + नङ् प्र० ए० व० सु० विभक्ति = यत्नः । विश्नः-प्रश्नः-विच्छ् एवं प्रच्छ् धातु से 'यजयाचयतविच्छप्रच्छ्रक्षो नङ्' से 'नङ' प्रत्यय होने पर 'च्छ्वोः शूडनुनासिके' सूत्र से च्छ् का श् होकर प्रथमा ए० व० में 'विश्नः' एवं 'प्रश्नः' बनते हैं ।

रक्षणः---रक्ष् धातु से नङ् प्रत्यय 'यजयाचयत०' इत्यादि सूत्र से होने पर 'रषाभ्यां नोणः' समानपदे सूत्र से न का ण होकर प्र० ए० व० में 'रक्षणः' बनेगा ।

मू०—८६४-स्वपो नन् ३।३।९२। स्वप्नः ।

अनु०—स्वप् धातु से नन् प्रत्यय होता है ।

स्वप्नः---स्वप् धातु से 'स्वपोनन्' सूत्र से नन् प्रत्यय होकर प्रथमा ए० व० में 'स्वप्नः' बनता है ।

मू०---८६५-उपसर्गे घोः किः ३।३।९३। प्रधिः । उपधिः ।

अनु०---उपसर्ग पूर्वक 'घुसंज्ञक' धातु से कि प्रत्यय होता है ।

प्रधिः---(चक्र) 'प्र' पूर्वक् 'घु' संज्ञक 'धा' धातु से 'उपसर्गे घोः किः' सूत्र से कि प्रत्यय होने पर प्रथमा ए० व० में 'प्रधिः' बना ।

उपधिः---दम्भ-उपपूर्वक धा धातु से 'उपसर्गे घोः किः' से कि होकर प्र० ए० व० में 'उपधिः' शब्द बना ।

मू०---८६६-स्त्रियां क्तिन् ३।३।९४। स्त्रीलिङ्गे भावे क्तिन् स्यात् । घञोऽपवादः । कृतिः । स्तुतिः ।

अनु०--स्त्रीलिङ्ग में भाव में क्तिन् प्रत्यय होता है। 'क्तिन् विधि 'घञ्' की अपवाद विधि है।'

कृतिः--कृधातु से 'स्त्रियाम् क्तिन्' से क्तिन् प्रत्यय होने पर प्रथमा ए०व० में कृतिः बनेगा।

स्तुतिः--स्तु धातु से क्तिन् प्रत्यय होने पर स्तुतिः बनता है।

मू० (वा०)--ऋल्वादिभ्यः क्तिन निष्ठा वाच्यः। तेन नत्वम्-कीर्णिः, सूनिः, घूनिः, पूनिः।

अनु०—ऋ,लू आदि धातु से परे क्तिन् का निष्ठावद्भाव होता है। निष्ठावद्भाव होने से त का न होता हैं।

कीर्णिः—(बिखरना) कृ धातु से 'स्त्रियाम् क्तिन्' से 'क्तिन्' प्रत्यय तथा 'ऋल्वादिभ्यः क्तिन् निष्ठावद् वाच्यः' सूत्र से क्तिन् का निष्ठावद्भाव होने पर 'ऋतइद्धातो' सूत्र से ऋ का इर आदेश होने पर 'हलिच' सूत्र से इ का दीर्घ हुआ। तो 'कीर्णि' बना। 'रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः' सूत्र से त को न होने पर न का ण होकर प्रथमा ए०व० में 'कीर्णिः' बना।

लूनिः (काटना) 'घूनिः' 'पूनिः' भी इसी तरह क्तिन् प्रत्यय तथा त का न होकर प्र०ए०व० में बने हैं।

मू०-(वा०) सम्पदादिभ्यः क्विप्। संपत्, विपत्, आपत्। क्तिन्नपीष्यते-सम्पत्तिः, विपत्तिः, आपत्तिः।

अनु०—सम्पदादि से क्विप् प्रत्यय भी होते हैं। (क्विप् का सर्वापहारी लोप होता है।)

सम्पत्—सम् पूर्वक पत् धातु से 'सम्पदादिभ्यः क्विप्' से क्विप् प्रत्यय होकर तथा क्विप् का सर्वापहारी लोप होकर सम्पत् रूप प्र० ए० व० में बना। आपत् विपत्-भी इसी तरह क्विप् प्रत्यय होकर बनेंगे।

सम्पत्तिः—सम्पूर्वक पत् धातु से जहाँ पर 'सम्पदादिभ्यः क्विप्' से क्विप् प्रत्यय नहीं हुआ वहाँ पर 'स्त्रियाम् क्तिन्' से क्तिन् प्रत्यय होकर प्रथमा ए०व० में सम्पत्तिः बना।

विपत्तिःऔर आपत्तिः—भी सम्पत्तिः के तरह क्विप् के अभाव पक्ष में क्तिन् प्रत्यय होकर प्रथमा ए०व० में बनेंगे।

सू० ८६७—ऊतियूतिजूतिसातिहेतिकीर्तयश्च ३।३।९७। एते निपात्यन्ते।

अनु०—ऊति०, यूति; जूति; सातिः, हेतिः तथा कीर्तिः इन सबों की निपातनात् सिद्धि होती है।

विमर्श—अव् (रक्षणे) + क्तिन्,=ऊतिः। यु (मिश्रणे)+ क्तिन्=यूतिः। जू + क्तिन् = जूतिः। षो (अन्तः कर्मणि) + क्तिन् = सातिः। हि (गतौ) + क्तिन् - हेतिः। कृत् (संशब्दने) क्तिन् = कीर्तिः।

सू०८६८—ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधायाश्च ६।४।२०। एषामुपधा-वकारयोरुठऽनुनासिके क्वौझलादौ क्ङिति। अतः क्विप्। जुः तूः स्रू: ऊः, मूः।

अनु०—ज्वर, त्वर, स्रिव्, अव् और सब धातुओं के उपधा और वकार को ऊठादेश होता है अनुनासिक क्वि तथा झलादि कित् एवं ङित् परे रहते। चूंकि क्वि परे रहते इन धातुओं में ऊठ् का विधान किया गया है अतएव इन धातुओं से क्विप् प्रत्यय होता है। जूः (रोगी) ज्वर धातु से 'सम्पदादिभ्यः क्विप्' से क्विप्। क्विप् का सर्वापहारी लोप 'ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुप-धायाश्च' सूत्र से व का ऊठ् होकर जू बना। प्र०ए०व० में जूः बना।

तूः (शीघ्रकारी) त्वर धातु से क्विप् तथा व का ऊठ् होकर बनेगा।

स्रूः—(चलने वाला) स्रिव्धातु से क्विप् 'संपदादिभ्यः

क्विप्' वार्तिक से होने पर 'ज्वरत्वरस्रिव्०' इत्यादि सूत्र से उप-धा इ और व् का ऊठ् होकर प्रथमा ए०व० में स्रूः बनेगा।

ऊः (रक्षकः) --अव् रक्षणे धातु से जूः के समान बनेगा।

मूः--(बांधने वाला) मव् बन्धने धातु से क्विप् तथा ऊठ् होकर प्रथमा ए०व० में बनेगा।

सू० ८६९--इच्छा ३।३।१०१। इषेर्निपातोऽयम्।

अनु --इष् धातु से श् प्रत्यय का निपातन होता है।

इच्छा--इष् (इच्छायाम्) धातु से श प्रत्यय का निपातन होता है। श् का अनुबन्ध लोप होने पर। प्रत्यय के शित् होने से सार्वधातुकसंज्ञा होकर शप् तथा 'अतोगुणे' से पर रूप हुआ। फिर 'इषुगमियमां छः' से ष को छ तथा छ् को तुगागम होने पर श्चुत्व हुआ। तदनन्तर स्त्रीत्व की विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप् होने पर प्र०ए०व० में इच्छा शब्द सिद्ध हुआ।

सू० ८७०--अप्रत्ययात् ३।३।१०२। प्रत्ययान्तेभ्यो धातुभ्यः स्त्रियाम् अकारः प्रत्ययः स्यात्। चिकीर्षा। पुत्रकाम्या।

अनु०--प्रत्ययान्त धातुओं से स्त्रीलिङ्ग में अकार प्रत्यय होता है।

चिकीर्षा--सनन्त कृ धातु चिकीर्ष से 'अ प्रत्ययात्' सूत्र से अ प्रत्यय हुआ। 'अतो लोपः' से अकार का लोप और स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् होकर प्रथमा ए०व० में चिकीर्षा बना।

पुत्रकाम्या--काम्यच् प्रत्ययान्त पुत्रकाम्य धातु से 'अप्रत्ययात्' से अप्रत्यय तथा स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् प्रत्यय होने पर प्र० ए०व० में पुत्रकाम्या बना।

सू० ८७१--'गुरोश्च हलः' ३।३।१०३। गुरुमतो हलन्तात् स्त्रियाम् 'अ' प्रत्ययः स्यात्। ईहा।

अनु०--गुरुमान् हलन्त धातु से स्त्रीलिङ्ग में अ प्रत्यय

होता है ।

ईहा--धातु से गुरोश्च हलः' सूत्र से स्त्रीलिङ्ग में अप्रत्यय होने पर 'अजाद्यत ष्टाप्' से टाप् प्रत्यय होकर प्र०ए०व० में ईहा शब्द बना ।

सू० ८७२-ण्यासश्रन्थोयुच् ३.३।१०७ । अकारस्यापवादः । कारणा । हारणा ।

अनु०-ण्यन्त आस् और श्रन्थ् धातुओं से युच् प्रत्यय होता है ।

कारणा--(यातना) ण्यन्त कृ धातु कारि से 'ण्यास श्रन्थो युच्' सूत्र से युच् प्रत्यय होने पर यु का 'युवोरनाकौ' से अन हुआ । फिर 'णेरनिटि' से इ का लोप तथा न का ण होकर स्त्रीलिङ्ग में टाप् होकर प्र०ए०व० में 'कारणा' बना ।

हारणा--(हराना) ण्यन्त हृ धातु से हारि से युच् प्रत्यय तथा यु का अन होकर इ का लोप तथा न का ण होकर टाप् होकर के प्र०ए०व० में हारणा बनेगा ।

सू० ८७३--'नपुंसके भावे क्तः' ३ । ३ । ११४ ।-८७४-ल्युट् च । ३ । ३ । ११५ । हसितम् हसनम् ।

अनु०८७३-नपुंसक भाव में धातु से क्त प्रत्यय होता है । ८७४-नपुंसक भाव में ल्युट् प्रत्यय भी होता है ।

हसितम्--हस धातु से नपुंसक भाव में 'नपुंसके भावेक्तः' सूत्र से क्त प्रत्यय तथा वलादि आर्धधातुक होने से इडागम होने से हसित बना । फिर प्रथमा ए०व० में सु तथा सु का अम् होकर हसितम् हुआ ।

हसनम्--हस धातु से नपुंसक भाव में ल्यु प्रत्यय होकर यु का अन होकर हसन बना । प्रथमा ए०व० में हसनम् बना ।

सू० ८७५--पुंसि संज्ञायाम् घः प्रायेण ३।३।११८। ७७६-छादेर्घेद्व्युपसर्गस्य ६।४।९४ । द्विप्रभृत्युपसर्गस्यहीनस्य छादेर्ह्रस्वो घे परे ।

दन्ताश्छादयन्तेनेनेति दन्तच्छदः । आकुर्वन्त्यस्मिन्निति-आकरः ।

अनु०—८७५-पुल्लिङ्ग में प्रायः घ प्रत्यय होता है। (घ का घ् इत्संज्ञक है।) ८७६ एक से अधिक उपसर्ग रहित छकारादि धातु को ह्रस्व होता है घ प्रत्यय परे रहते ।

दन्तच्छदः—(ओष्ठ) दन्ताश्छाद्यन्तेऽनेन) इस अर्थ में ण्यन्त छादि धातु से 'पुंसिसंज्ञायाम् घः प्रायेण' सूत्र से घ प्रत्यय होने पर 'छादेऽर्घे द्व्युपसर्गस्य' सूत्र से ह्रस्व होने पर 'णेरनिटि' सूत्र से इ का लोप होकर दन्तच्छदः बना प्रथमा ए०व० में ।

आकरः-(खान) 'आकुर्वन्त्यस्मिन्' इस अर्थ में आङ् पूर्वक ण्यन्त कृधातु से कारि से 'पुंसिसंज्ञायाम् घः प्रायेण' सूत्र से घ प्रत्यय होने पर 'छादेऽर्घेद्व्युपसर्गस्य' सूत्र से ह्रस्व होकर तथा इ का लोप होकर प्रथमा ए०व० में 'आकरः' बना ।

मू० ८७७—अवेतृस्त्रोर्घञ् । ३।३।१२० । अवतारः कूपादेः । अवस्तारो जवनिका ।

अनु०-अव उपसर्ग पूर्वक तृ और स्तृ धातु से घञ् प्रत्यय होता है ।

अवतारः (घाट या उतरने की सीढ़ी) अव पूर्वक तृ धातु से अवेतृस्त्रोर्घञ् सूत्र से घञ् प्रत्यय होकर तृ के ऋ को 'अचोञ्णिति सूत्र से आर् वृद्धि होने पर प्र०ए०व०में अवतारः बना ।

अवस्तारः—(पर्दा जवनिका) अव् पूर्वक स्तृ धातु से घञ् होकर अवतारः के समान यह रूप बनता हैं ।

मू० ८७८—हलश्च ३।३।१२१ । हलन्ताद् घञ् । घाऽपवादः । रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति-रामः । अपमृज्यन्तेऽनेन व्याध्यादिरिति अपामार्गः ।

अनु०-हलन्त धातु से घञ् प्रत्यय होता है । घञ् प्रत्यय घ प्रत्यय का अपवाद है ।

रामः--रमन्ते योगिनोऽस्मिन्निति (जिसमें योगिजनरमण करते हैं) इस अर्थ में क्रीडार्थक रम् धातु से 'हलश्च' सूत्र से घञ प्रत्यय होने पर 'अत उपाधायाः' से वृद्धि होकर प्रथमा ए०व० में रामः बना।

अपामार्ग--(चिचिड़ी)' अपमृज्यन्ते व्याध्यादिः अनेन' जिसके द्वारा व्याधियां दूर होती हैं. इस अर्थ में अप पूर्वक मृज् धातु से 'हलश्च' सूत्र से घञ् प्रत्यय हुआ। 'अचोञ्णिति' से आर् वृद्धि होने के पश्चात् 'चजोः कुः घिण्ण्यतोः' सूत्र से ज् को ग् होने पर 'अपामार्गं' बना। 'उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलम्' सूत्र से अप के प को दीर्घ होकर प्रथमा ए०व० में 'अपामार्गः' बना।

मू० ८७९--ईषद्दुस्सुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ३।३।१२६। करणाधिकरणयोरितिनिवृत्तम्। एषु दुःखसुखार्थेषू पपदेषु खल्। 'तयोरेव' इति भावे कर्मणि च। कृच्छ्र-दुष्करः कटोभवता। अकृच्छ्रे-ईषत्करः। सुकरः।

अनु०-३।३।१२५। सूत्र तक करणाधिकरणयोः सूत्र की जो अनुवृत्ति हो रही थी उसकी इस सूत्र में निवृत्ति हो गयी। इषद् (अल्प) दुस् (कठिनाई) सु (सरलता) इन अर्थों में दुःख-सुख के वाचक शब्दों के उपपद रहने पर धातु से खल् प्रत्यय होता है। 'तयोरेव कृत्य क्तखलर्थाः' सूत्र के सहकार से खल् प्रत्यय भाव और कर्म में ही होता है।

दुष्करः कटोभवाता-(आपके द्वारा चटाई। बनाया जाना मुश्किल है। यहाँ दुःख के अर्थ में दुस् उपपद रहते दुस् पूर्वक कृ धातु सेकृच्छ्र अर्थ को प्रकट करने के लिए खल् प्रत्यय कर्म में हुआ। फिर=कृ के ऋ का अर् गुण होकर स् का ष् होने पर प्र० ए०व० में दुष्करः बना।

ईषत्करः—इषत्+कृ+खल् से कृ के ऋ का अर् गुण होकर प्रथमा ए०व० में 'ईषत्करः' बना।

सुकरः--सू पूर्वक कृ से खल् प्रत्यय होकर बनेगा।

सू० ८८०-आतोयुच् ४।३।१२८। खलोपवादः। ईषत्पानः सोमो भवता। दुष्पानः। सुपानः।

अनु०-आकारान्तधातु से पूर्वोक्त दशा में युच् प्रत्यय होता है। (युच् का च् इत्संज्ञक है तथा यु का अन आदेश होता हैं।)

ईषत्पानः सोमो भवता-(आप के लिए सोमपान छोटा काम हैं) अल्पार्थक सु उपसर्ग के रहते पा धातु से 'आतो युच्' से युच् प्रत्यय तथा 'युवोरनाकौ' सूत्र से यु का अन होकर सवर्ण दीर्घ होकर प्रथमा ए०व० में 'ईषत् पानः बना।

दुष्पानः-एवं सुपानः भी इसी तरह दुख एवं सुख अर्थ वाले दुस् एवं सु उपसर्गो के उपपद रहने पर युच् प्रत्यय होकर तथा यु का अन होकर बनेगा।

सू०८८१--अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचांक्त्वा २।४।१८। प्रतिषेधार्थयोरलं खल्वोरुपपदयोः क्त्वा स्यात्। प्राचां ग्रहणं पूजार्थम्। 'अमैवाऽव्ययेन' इति नियमात्- नोपपद समासः। 'दोदद्घोः' अलं दत्वा। 'घुमास्था-इतीत्वम्। पीत्वा खलु। अलंखल्वोः किम्-मा कार्षीत्। प्रतिषेधयोः किम् ? अलंकारः।

अनु०-प्राचीन आचार्यों के मत में निषेधार्थक अलं और खलु शब्दों के उपपद रहने पर धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है।

प्राचाम्०-इत्यादि सूत्र में प्राचाम् पद से प्रचीन वैयाकरणों का उल्लेख उनके मतों का आदर करने के लिए किया गया है।

अलं दत्वा--(मत दो) यहां निषेधार्थक अलं पद के उपपद रहने के कारण दा धातु से 'अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा' सूत्र सें क्त्वा प्रत्यय होने पर 'दो दद्घोः' सूत्र से दा धातु का दद् आदेश होने पर चर् होकर 'अलंदत्त्वा' सिद्ध हुआ।

पीत्वा खलु-(मत पियो) यहां निषेधार्थक खलु शब्द के उपपद

रहने के कारण 'अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा' सूत्र से पा धातु से क्त्वा प्रत्यय हुआ। 'घुमास्थागापाजहा०' इत्यादि सूत्र से पा के आ का ई होकर 'पीत्वा खलु' सिद्ध हुआ।

अलंखल्वोः किम्-माकार्षीत्--प्रश्न यह उठता है कि सूत्र में अलं और खलु शब्द का ही ग्रहण क्यों किया गया है ? तो इसका उत्तर है कि-अलं और खलु पदों के ग्रहण नहीं करने पर 'माकार्षीत्' यह न होकर 'माकृत्वा' यह अनिष्ट रूप होने लगता क्योंकि माभी निषेधार्थक अव्यय है। किन्तु अल और खलु के ग्रहण होने से यहां पर कृ धातु से क्त प्रत्यय नहीं हुआ।

प्रतिषेधयोः—किम् ? अलङ्कारः-प्रश्न यह उठता है कि सूत्र में 'प्रतिषेधयोः' पद को क्यों 'अलखल्वोः' के विशेषण रूप में लिया गया है तो इसका उत्तर है कि 'प्रतिषेधयोः' पद के अभाव में (३।४।१८) सूत्र का अर्थ होता कि अल और खलु शब्द उपपद-परे रहे तो धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है। ऐसी स्थिति में अ निषेधार्थक अलं पूर्वक कृधातु से क्त्वा प्रत्यय होकर अलं-कृत्वा यह रूप बनने लगता। अतएव 'प्रतिषेधयोः' पद का ग्रहण किया गया। जिसके कारण अलंकारः में क्त्वा नहीं होकर घञ् प्रत्यय होता है।

सू०--८८२-'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' ३।४।२१। समानकर्तृकयोर्धात्वर्थयोः पूर्वकाले विद्यमानाद्धातोः क्त्वा स्यात्। भुक्त्वा व्रजति। द्वित्वमतन्त्रम्-भुक्त्वापीत्वा व्रजति।

अनु०—जब किन्हीं दो क्रियाओं का कर्ता एक ही हो तो जो क्रिया पहले होती है उसके वाचक धातु से क्त्वा प्रत्यय होता है।

जैसे—भुक्त्वा व्रजति। (खाकर जाता है)। इस वाक्य की खाने और जाने दोनों क्रियाओं का कर्ता एक ही है, अतएव

पहले होने वाली खाने की क्रिया के वाचक भुज् धातु से क्त्वा प्रत्यय हुआ है।

भुक्त्वाव्रजति--में भुज् धातु से क्त्वा प्रत्यय होने पर 'कुहोश्चुः' से कुत्व तथा चर् होने पर भुक्त्वा व्रजति यह रूप बना।

भुक्त्वापीत्वा व्रजति—में भुज् और पा–धातु से क्त्वा प्रत्यय होकर 'भुक्त्वापीत्वा व्रजति' बना।

सू०—८८३–न क्त्वा सेट् १।२।१८। सेट् क्त्वा कित् न स्यात्। शयित्वा। सेट् किम्–कृत्वा।

अनु०--सेट् क्त्वा कित् नहीं होता है। शयित्वा–शीङ् धातु से 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' सूत्र से क्त्वा प्रत्यय होने पर वलादिलक्षण इडागम हुआ। क्त्वा के सेट् होने से 'न क्त्वा सेट्' से सेट् क्त्वा के कित् का निषेध होने से 'क्ङिति च' सूत्र से 'शी' के ई का गुण हुआ तथा अयादेश होकर शयित्वा यह रूप बना।

सेट् किम्? कृत्वा--प्रश्न उठता है कि सूत्र में सेट् ग्रहण क्यों किया गया? तो इसका उत्तर है कि यदि 'सेट् क्त्वा' के कित् का निषेध नहीं किया गया होता तो कृत्वा में भी इडागम होकर अनिष्ट रूप होने लगता।

सू०--८८४–रलोव्युपधाद्धलादेः संश्च १।२।२६। इवर्णोवर्णोपधाद्धलादे रलन्तात् परौ क्त्वा सनौ सेटौ वा कितौ स्तः। द्युतित्वा, द्योतित्वा। लिखित्वा, लेखित्वा। व्युपधात्किम्? वर्तित्वा। रलः किम्–सेवित्वा। हलादेः किम्–एषित्वा। सेट् किम्–भुक्त्वा।

अनु०--इवर्ण एवं उवर्ण जिनकी उपधा में हों ऐसे हलन्त एवं रलन्त धातुओं से परे सेट् क्त्वा तथा सन् प्रत्यय विकल्प से कित् होते हैं। कित् होने का फल है कि गुण का निषेध और सम्प्रसारण होता है और कित् होने पर गुण होता है और सम्प्रसारण नहीं होता है।

द्युतित्वा-द्योतित्वा--उवर्णोपध हलन्त द्युत् धातु से क्त्वा प्रत्यय होने पर 'रलोव्युपधात् हलादेः संश्च' सूत्र से कित् होकर इट् तथा गुण का निषेध होने पर द्युतित्वा रूप बना। जहां कित् नहीं हुआ वहां पर 'क्ङिति च' सूत्र से गुण होकर द्योतित्वा बना।

लिखित्वा-लेखित्वा-की भी द्युतित्वा एवं द्योतित्वा के ही तरह सिद्धि हो जाती है।

व्युपधात् किम् ? वर्तित्वा--प्रश्न उठता है कि इवर्ण एवं उवर्ण ही उपधा में हो यह क्यों कहा गया ? तो इसका उत्तर है कि वृत् धातु के हलन्त होने पर भी इस 'रलोव्युपधात्' सूत्र से क्त्वा के कित् का निषेध नही हुआ। अतएव वृ के ऋ का अर गुण होकर वर्तित्वा यह एक हीं रूप बना। व्युपधात् ग्रहण के अभाव में वृतित्वा यह भी रूप होने लगता।

रलः किम् ? सेवित्वा--सूत्र में रल् ग्रहण का फल है कि-सेवित्वा में प्रकृत सूत्र की प्रवृत्ति न हो। सेव् धातु हलन्त होने पर भी रलन्त नहीं है क्योंकि। सेव् धातु के अन्त में व् है जो रल् प्रत्याहार में नहीं आता है। अतएव सेव धातु से क्त्वा प्रत्यय तथा इडागम होकर सेवित्वा रूप बना।

हलादेः किम्-एषित्वा--सूत्र में हलादिग्रहण का फल है कि एषित्वा में इसकी प्रवृत्ति नहीं होती है। इष् धातु अजादि है हलादि नहीं है अतएव यहां सेटक्त्वा के कित् का निषेध नहीं हुआ। अतएव इष् धातु से क्त्वा प्रत्यय होने पर इडागम तथा गुण होकर एषित्वा रूप बना है।

सेट् किम् ? भुक्त्वा--सेट् ग्रहण करने का फल है कि इस सूत्र की भुक्त्वा में प्रवृति नहीं होती है। भुज् धातु से क्त्वा प्रत्यय होने पर भुज् के ज् का कुत्व होकर चर् होने पर 'भुक्त्वा होता है।

मू०--८८५-उदितोवा ७।२।५६। उदितः परस्य क्त्वो इड्वा। शमित्वा, शान्त्वा। देवित्वा, द्युत्वा। दधातेर्हि-हित्वा।

अनु०--उदित धातुओं से परे क्त्वा को इट् विकल्प से होता है।

शमित्वा-शान्त्वा--(शान्त होकर) शमु उपशमे धातु उदित है। उससे क्त्वा प्रत्यय हुआ। उससे 'उदितो वा' सूत्र से वैकल्पिक इट् हुआ तो 'शमित्वा' यह रूप बना। जहां पर 'उदितो वा' सूत्र से इट् नहीं हुआ वहां पर 'अनुनासिकस्य क्विझलोः' सूत्र से उपधा के अकार को दीर्घ हुआ। मको 'नश्चापदान्तस्य झलि' सूत्र से म् को अनुस्वार और उसका परसवर्ण होकर शान्त्वा यह रूप बना।

देवित्वा-द्युत्वा--उदित् दिवुधातु से क्त्वा प्रत्यय होने पर जहां 'उदितोवा' सूत्र से इट् हुआ वहां पर लघुपध गुण होकर 'देवित्वा' यह रूप बना। और जहां पर 'उदितो वा' सूत्र से इट् नहीं हुआ वहाँ पर 'च्छ्वोःशुडननुनासिके' सूत्र से व का ऊठ् आदेश हुआ। पुनः धातु के इ को य यण् होकर द्युत्वा यह रूप बना।

हित्वा--धा धातु से क्त्वा प्रत्यय होने पर 'दधातेर्हिः' सूत्र से धा को हि आदेश होकर हित्वा यह रूप बना। हित्वा = धारण करके।

मू०--८८६-जहातेश्चक्त्वि ७।४।४३। हित्वा। हाङ्स्नु-हात्वा।

अनु०--क्त्वाप्रत्यय परे रहते ओहाक् त्यागे धातु के स्थान में हि आदेश होता है।

हित्वा--ओहाक् (त्यागे) धातु से क्त्वा प्रत्यय होने पर 'जहातेश्च क्त्वि' सूत्र से धातु के स्थान में हि आदेश होने पर हित्वा रूप बनेगा।

हात्वा--जहां पर 'ओहाङ्' गतौ धातु से क्त्वा प्रत्यय होगा वहां पर हात्वा रूप बनेगा।

मू०—८८७-समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप् ७।१।७३। अव्ययपूर्वपदेऽनञ्समासे क्त्वो 'ल्यप्' आदेशः स्यात्। तुक् प्रकृत्य अनञ् किम्-अकृत्वा।

अनु०--नञ् समास व्यतिरिक्त अव्ययपूर्वपद समास में धातु से परे क्त्वा को ल्यप् होता है।

प्रकृत्य--प्र अव्यय पूर्वक कृ धातु से परे 'कुगतिप्रादयः' सूत्र से क्त्वा प्रत्यय होने पर 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' सूत्र से क्त्वा को 'ल्यप्' होने पर ल्यप् के पित् होने के कारण 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' से तुगागम होकर 'प्रकृत्य' बना।

अनञ् किम्? अकृत्वा--प्रश्न होता है कि सूत्र में 'अनञ्' (नञ् व्यतिरिक्त) पद क्यों ग्रहण किया गया? तो इसका उत्तर है कि अकृत्वा में उक्त सूत्र की प्रवृत्ति न हो। 'अकृत्वा' में पूर्वपद अव्यय तो है किन्तु वह नञ् समास का है अतएव यहां पर 'क्त्वा' का ल्यप् नहीं हुआ।

मू०—८८८-आभीक्ष्ण्येणमुल् च ३।४।२२। अभीक्ष्ण्ये द्योत्ये णमुल् स्यात् क्त्वा च।

अनु०—क्रिया के नैरन्तर्य द्योतन करनें के लिए धातु से णमुल् और क्त्वा प्रत्यय आते हैं। णमुल् का अम् बचता है और शेष भाग का लोप हो जाता है।

मू०—८८९-नित्यवीप्सयोः ८।३।४। आभीक्ष्ण्ये वीप्सायां च द्योत्ये पदस्य द्वित्वं स्यात्। आभीक्ष्ण्यं तिङन्तेष्वव्ययसंज्ञकेषु कृदन्तेषु। स्मारं-स्मारं नमति शिवम्। स्मृत्वा स्मृत्वा। पायं पायम्। भोजं भोजम्। श्रावं श्रावम्।

अनु०—नित्यता तथा 'वीप्सा' के अर्थ को बतलाने के लिए

पद को द्वित्व होता है। तिङन्तों तथा अव्यय संज्ञक कृदन्तों में ही आभीक्ष्ण्य होता है। स्मारं-स्मारं नमति शिवम् (बार-बार स्मरण करके शिव को नमस्कार करता है।) इस अर्थ में स्मृ धातु से 'अभीक्ष्ण्ये णमुल् च' सूत्र से 'णमुल्' प्रत्यय होने पर 'णमुल् के णित् होने के कारण 'अचोञ्णिति' सूत्र से स्मृ के ऋ को आर् वृद्धि होने पर स्मारम् यह पद बना। नित्यविप्सयोः' सूत्र से स्मारं पदको द्वित्व होकर 'स्मारं-स्मारम्' यह पद बना।

स्मृत्वा—स्मृत्वा—जहाँ स्मृधातु से आभीक्ष्ण्य अर्थ में 'आभीक्ष्ण्ये णमुल् च' सूत्र से क्त्वा प्रत्ययहुआ वहां पर स्मृत्वापद बना और 'नित्यवीप्सयोः' सूत्रसे द्वित्व होकर 'स्मृत्वा-स्मृत्वा' यह प्रयोग बना।

पायं पायम्—पाधातु से णमुल् प्रत्यय होकर 'पायं'-पायं' प्रयोग बनता है। भोजं भोजम्' तथा 'श्रावं श्रावम्' भी प्रयोग इसी प्रकार बनता है।

श्रु+णमुल+वृद्धि और द्वित्व होकर 'श्रावं श्रावम्' बनता है!

सू० ८९०--अन्यथैव कथमित्थंसु सिद्धाप्रयोगश्चेत् ३।४।२७।

एषु कृञो णमुल् स्यात् सिद्धोऽप्रयोगोऽस्य एवं भूतश्चेत् कृञ्, व्यर्थत्वात् प्रयोगानर्ह इत्यर्थः। अन्यथाकारम्, एवंकारम् इत्थंकारं भुंक्ते। सिद्धेति किम्? शिरोऽन्यथा कृत्वा।

। इत्युत्तर कृदन्तम् ।

इति कृदन्त प्रकरणम् ।

अनु०—अन्यथा, एवम्, कथम् और इत्थम्' इन अवययों के उपपद रहने पर कृ धातु से णमुल् प्रत्यय होता है; यदि णमुल् के प्रयोग के बिना कृ का प्रयोग व्यर्थं हो तो। अर्थात् व्यर्थ होने के कारण यदि कृ प्रयोगानर्ह हो तब। जैसे अन्यथा कारम्, एवं कारम्, इत्थकारम् भुंक्तें-में अन्यथा' एवम्, तथा इत्थम् अव्ययों के उपपद रहने पर कृ धातु से 'अन्यथैवं कथमित्थं सु सिद्धा-

ऽप्रयोगश्चेत्' सूत्र से णमुल् प्रत्यय होने पर 'अचोञ्णिति' सूत्र से ऋ को आर वृद्धि होने पर अन्यथाकारम् इत्थं कारम्, एवम् कारम् इत्यादि पद बने। इन प्रयोगों में कृ का प्रयोग व्यर्थं है, क्योंकि अन्यथा, इत्थम्, कथम् भुंक्ते का जो अर्थ है वही अर्थ है अन्यथा कारम् इत्थं कारम्, एवं कारम् इत्यादि प्रयोगों का भी। सिद्धेतिकिम् ? प्रश्न उठता है कि सूत्र में 'सिद्धाप्रयोग पद का प्रयोग क्यों किया गया है तो इसका उत्तर है कि 'शिरोऽन्यथा कृत्वा' में भी उक्त सूत्र की प्रवृति होकर णमुल् प्रत्यय नहीं होने लग जाय। क्योंकि 'शिरोन्यथा कृत्वा भुंक्तं' में कृ का प्रयोग व्यर्थं नहीं है। वह इसलिए उचित है कि उसके प्रयोग के अभाव में अन्यथा का प्रयोग व्यर्थं हो जायेगा।

इस तरह उत्तर कृदन्त की व्याख्या समाप्त हुई।

इस तरह कृदन्त प्रकरण की व्याख्या समाप्त हुई।

अथ तद्धितेष्वपत्याधिकारः

सू० १००३–स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौभवनात् ४।१।८७। 'धान्यानां भवने' इत्यतः प्रागर्थेषु स्त्रीपुंसाभ्यां क्रमात् नञ्-स्नञौ। स्त्रैणः पौंस्नः।

अनु०–धान्यानां भवने (५।२।१।) से पहले आये हुए अर्थों में स्त्री और पुंस् शब्दों से क्रमशः नञ् एवं स्नञ् प्रत्यय होते हैं। (नञ् और स्नञ् प्रत्ययों का ञ् इतसंज्ञक है केवल न और स्न मात्र बचते हैं।)

स्त्रैणः–स्त्री शब्द से '(स्त्रियाः अपत्यं पुमान्) इस अर्थ में स्त्रीपुंसाभ्यां नञ् स्नञौ सूत्र से नञ् प्रत्यय होने पर 'तद्धितेष्वचा॰ मादेः' सूत्र से आदि अच् की वृद्धि हुई तथा न का ण होने पर प्रातिपदिक संज्ञा 'कृत्ताद्धितसमासाश्च' सूत्र से हुई और सु का रुत्व विसर्ग होकर 'स्त्रैणः' बना।

पौंस्नः—पुंस् शब्द से ('पुंसो भवः) अर्थ में 'स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्' सूत्र से स्नञ् प्रत्यय होने पर 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से आदि अच् उ की औवृद्धि हुई फिर 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' से पदसंज्ञा तथा 'संयोगान्तस्य लोपः' से पुंस् के स् का लोप होकर पौंस्न बना तथा प्रथमा ए०ब० में 'पौंस्नः बना ।

मू० १००४—तस्यापत्यम् ४।१।९२। षष्ठ्यन्तात् कृतसन्धेः समर्थादपत्येर्थे उक्ता वक्ष्माणाश्च प्रत्ययाः स्युः। १००५—ओर्गुणः ६।४।१४६। उवर्णान्तस्य भस्य गुणस्तद्धिते। उपगोरपत्यम्-औपगवः! आश्वपतः। दैत्यः औत्सः। स्त्रैणः। पौंस्नः।

षष्ठ्यन्त कृतसन्धि समर्थ पद से अपत्य अर्थ में पहले कहे गये और आगे कहे जाने वाले प्रत्यय होते हैं।

सूत्र का 'तस्य' पद सर्वनाम होने के कारण सभी षष्ठ्यन्तों का परामर्श करता है। इस सूत्र की वृत्ति में समर्थ पद 'समर्थानां प्रथमात्' सूत्र से लिया गया है। 'समर्थ' का अर्थ है जिसमें सन्धि की गयी हो।

१००५—यदि तद्धित प्रत्यय परे हो तो उवर्णान्त भसंज्ञक को गुण होता है।

औपगवः-उपगोरपत्त्यम्' (उपगु की सन्तान) के अर्थ में समर्थ उपगु से 'तस्यापत्यम्' सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर 'तद्धितेष्वचा मादेः' सूत्र से आदि अच् की वृद्धि हुई तो 'औपगु अ बना।भसंज्ञक होने के कारण 'ओर्गुणः' सूत्र से 'औपगु' के उ को गुण होने पर 'एचो यवायावाः' से अवादेश होने पर 'औपगव बना। पुनः प्रातिपादिक संज्ञा तथा सु का रुत्व बिसर्ग होने पर 'औपगवः' बना।

आश्ववतः,-अश्वपते रपत्य पुमान् के अर्थ में अण् प्रत्यय होकर आश्वपतः बनेगा।

दैत्य–दिति+अण्-आदि अच् की वृद्धि प्रथमा ए.व.मेदैत्यः बनेगा।

मू० १००६–अपत्यं पौत्र प्रभृति गोत्रम् ४ । १ । १६२ । अपत्यत्वेन विवक्षितं पौत्रादि गोत्रसंज्ञं स्यात् । १००७ एकोगोत्रे ४।१।६३ । गोत्रे एक एवाऽपत्य प्रत्ययः स्यात् । उपगोर्गोत्रापत्यम् औपगवः ।

अनु०–पौत्र आदितृतीय पीढ़ी अथवा उसके आगे की पीढ़ी के अपत्य रूप से विवक्षित होने पर उनकी गोत्र संज्ञा होती है।

१००७—गोत्र अर्थ में एकही अपत्य प्रत्यय आता है।

औपगवः—'उपगोर्गोत्रापत्यम्' इस अर्थ में 'एकोगोत्रे' सूत्र के सहकार से 'तस्यापत्यम्' सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर आदि अच् की वृद्धि होने पर भसंज्ञक होने के कारण 'ओर्गुणः' सूत्र से उ का ओगुण तथा अवादेश होने पर प्रथमा ए० व० में 'औपगवः' यह रूप सिद्ध हुआ।

१००८–गर्गादिभ्योयञ् ४।१।१०५। गोत्रापत्ये । गर्गस्य गोत्रापत्यं गार्ग्यः । वात्स्यः ।

अनु०—गर्ग आदि षष्ठ्यन्त समर्थ पदों से गोत्रापत्य अर्थ में यञ् प्रत्यय होता है

गार्ग्यः—'गर्ग के गोत्रापत्य' के अर्थ में 'गर्गादिभ्यो यञ्' सूत्र से यञ् प्रत्यय होने पर आदि अच् की वृद्धि होकर प्रथमा ए०व० में गार्ग्यः बना। इसी तरह वात्स्यः भी बनेगा ।

मू०१००९–यञञोश्च २।४।६४। गोत्रे यदयञन्तमञन्तञ्च तदवयव योरेतयोर्लुक स्यात् तत्कृते बहुत्वे, न तु स्त्रियाम । गर्गाः । वत्साः ।

अनु०—गोत्रार्थक यञन्त एवं अञन्त पद के अवयब भूत यञ् एवं अञ् का लोप होता है; यदि गोत्र का बहुत्व बतलाना होतो परन्तु स्त्रीलिङ्ग में नहीं ।

गर्गाः,—वत्साः–गर्ग एवं वत्स शब्द से गोत्रापत्य अर्थ में 'गर्गादिभ्यो यञ्' से यञ् प्रत्यय होने पर 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से आदि अच् की वृद्धि होने पर 'गार्ग्य' तथा 'वात्स्य' बना । पुनः

प्रातिपदिकसंज्ञा होकर बहुत्व की विवक्षा में 'जश्' विभक्ति आयी। तदनन्तर 'यञञोश्च' सूत्र से यञ् के य का लोप होकर 'गार्ग' अस् बना। इसके पश्चात् 'प्रथमयोः पूर्व सवर्णः' से सवर्ण दीर्घ होकर स् का रुत्व विसर्ग होकर गार्गाः और वात्साः बना।

मू० १०१०—जीवति तु वंश्ये युवा ४।१।१६३। वंश्ये पित्रादौ जीवति पौत्रादेर्यदपत्यं चतुर्थादि तद्युवसंज्ञमेव स्यात्। १०११–गोत्राद्यून्य स्त्रियाम् ४।१।९४। यून्यपत्ये गोत्रप्रत्ययान्तादेव प्रत्ययः स्यात् स्त्रियां तुन युवसंज्ञा। १०१२–यञिञोश्च ४।१।१०१। गोत्रे यौ यञिञौ तदन्तात्फक् स्यात्। १०१३–आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् ७।१।२। प्रत्ययादेः फस्य आयन्, ढस्य एय्, खस्य ईन्, छस्य ईय्, घस्य इय्, एते स्युः। गर्गस्य युवापत्यं गार्ग्यायणः। दाक्षायणः।

अनु०—१०१०—वंश में हुए पिता पितामह के जीवित रहने पर जो पौत्र आदि का अपत्य हो चौथी आदि पीढियों में उसको युव् संज्ञा ही होती है। १०११–युवापत्य अर्थ में गोत्रप्रत्ययान्त से ही प्रत्यय होता है। स्त्रीलिंग में युवापत्य संज्ञा नहीं होती है। १०१२–गोत्र अर्थ में जो यञ् इञ् प्रत्यय तदन्त जो शब्द उनसे फक् प्रत्ययहोता है। १०१३–प्रत्यय के आदि फ का आयन्। ढ का एय्, ख का ईन्, छ का ईय् तथा घ का इय् होता है।

गार्ग्यायणः—(गर्ग के युवा अपत्य) के अर्थ में 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्' के सहकार से गोत्र प्रत्ययान्त गार्ग्य से ही प्रत्यय की प्राप्ति होने पर 'यञिञोश्च' सूत्र से गार्ग्य से फक् प्रत्यय हुआ। तदनन्तर 'आयनेयी नीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' सूत्र से फ का आयन् होकर 'गार्ग्यायन्'+अ) बना। न का ण् होकर 'गार्ग्यायण्'+अ' बना प्रतिपदिकसंज्ञा होकर प्रथमा ए०व० में गार्ग्यायणः' बना।

दाक्षायणः—(दक्षस्य युवापत्यम् = दक्ष के युवापत्य) के अर्थ

में 'गोत्राद्यून्यस्त्रियाम्' सूत्र के सहकार से गोत्र प्रत्यय जो यञ् तदन्त 'दाक्ष्य' से ही प्रत्यय की प्राप्ति होने पर 'यञिञोश्च' सूत्र के द्वारा 'दाक्ष्य' से फक् प्रत्यय हुआ। तदनन्तर फ (क) के फ् को–'आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' सूत्र से फ का आयन् होकर 'दाक्ष्यायन + अ' हुआ। तदनन्तर न का ण् हुआ। फिर प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा ए० व० में 'दाक्षायणः' बना।

मू०--१०१४-अतइञ् ४।१।९५। अपत्येऽर्थे–दाक्षिः।

अनु०—अदन्त षष्ठ्यन्त समर्थ से अपत्य अर्थ में इञ् होता है।

दाक्षिः—(दक्षस्यापत्य पुमान्–दक्ष की सन्तान) के अर्थ में दक्ष शब्द से 'अतइञ्' सूत्र से इञ् प्रत्यय होकर आदि अच् की 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से वृद्धि होने पर अन्त्य अकार का लोप होकर दाक्षि बना। प्रातिपदिकसंज्ञा होने पर सुविभक्ति में प्रथमा ए० व० में 'दाक्षिः' बना।

मू०--१०१५-बाह्वादिभ्यश्च ४।१।९६। बाहविः। औडुलोमिः।

अनु०—बाहु आदि षष्ठ्यन्त समर्थ पदों से अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय होता है।

बाहविः--(बाहोरपत्यं पुमान्–बाहु की सन्तान) के अर्थ में बाहु शब्द से अपत्य अर्थ में इञ् प्रत्यय होने पर आदि अच् की 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से वृद्धि तथा 'ओर्गुणः' से बाहु के उ को ओ गुण होकर अवादेश होने पर प्रथमा ए० व० में 'बाहविः' बना।

औडुलोमिः– उडुलोम्नः अपत्यं पुमान् अर्थ में 'बाह्वादिभ्यश्च' सूत्र से 'इञ्' प्रत्यय होने पर आदि अच् की वृद्धि हुई प्रथमा ए० व० में 'औडुलोमिः' बना–'बाहविः' के समान।

मू०--(वा०) लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः। उडुलोमाः।

आकृतिगणोऽयम् ।

अनु०--लोमन् से अपत्य अर्थ के बहुवचन में अप्रत्यय होता है ।

उडुलोमाः--(उडुलोम्नोपत्यानि) इस अर्थ में उडुलोमन् शब्द से बहुत्व की विवक्षा में-'लोम्नोऽपत्येषु बहुष्वकारो वक्तव्यः' वार्तिक से अप्रत्यय हुआ । 'नस्तद्धिते' सूत्र से टि अम् का लोप होने पर उडुलोम शब्द बना । प्रथमा बहुवचन में 'उडुलोमाः' बना ।

आकृतिगणोऽयम्--बाहुआदि आकृतिगण हैं । अतएव जिन शब्दों में इञ् प्रत्यय हुआ हो किन्तु उसको इञ् प्रत्यय करने के लिए किसी सूत्र की प्रवृत्ति नहीं हो रही हो तो उसे आकृति गण समझना चाहिये । और उसमें 'बाह्वादिभ्यश्च' सूत्र से इञ् प्रत्यय हो जाता है ।

मू०--१०१६-अनृष्यानन्तर्ये विदादिभ्योऽञ् । ४।१।१०४। येत्वमा-नृषयः तेभ्योऽपत्ये अन्यत्रतु गोत्रे । विदस्य गोत्रम् वैदः । वैदौ । विदाः । पुत्रस्यापत्यम्-पौत्रः पौत्री पौत्राः । एवं दौहित्रादयः ।

अनु०--विद आदि में जो ऋषि नहीं हैं उनसे तो अपत्य अर्थ में और जो ऋषि हैं; उनसे गोत्र अर्थ में अञ् प्रत्यय होता है ।

वैदः--'विदस्य गोत्रम्' (अर्थात् विद ऋषि का गोत्र) अर्थ में 'अनृष्यानन्तर्ये विदादिभ्योऽञ्' सूत्र से अञ् प्रत्यय होने पर 'तद्धितेष्वचामादेः' से आदि अच् की वृद्धि तथा अन्तिम अ का लोप होकर प्रथमा ए० व० में वैदः बनेगा ।

वैदौ--प्रथमा द्विचन में होगा ।

विदाः--विद से अञ् प्रत्यय होने पर बहुत्व की विवक्षा में 'यञञोश्च' सूत्र से अञ् का लोप होकर प्रथमा ब० व० में विदाः बनेगा ।

पौत्रः--पुत्र के अपत्य अर्थ में पुत्र शब्द से अञ् प्रत्यय होकर आदि अच् को 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से आदि अच् की वृद्धि तथा अन्तिम अ का लोप होकर प्रथमा ए० में 'पौत्रः' यह रूप बना।

सू०-१०१७-शिवादिभ्योण् ४।१।११२। अपत्ये-शैवः। गाङ्गः।

अनु०--शिव आदि से अण् प्रत्यय होता है अपत्य अर्थं में।

शैवः--शिव के अपत्य अर्थ में शिव शब्द से 'शिवादिभ्योण्' सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से आदि अच् की वृद्धि तथा अन्तिम अ का लोप होकर प्र० ए० व० में शैवः बनाः।

गाङ्गः--गगा के अपत्य अर्थ में अण् प्रत्यय होकर बनेगा।

सू०--१०१८-ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च ४।१।११४। ऋषिभ्यः-वासिष्ठः, वैश्वामित्रः। अन्धकेभ्यः-अश्वाफल्कः। वृष्णिभ्यः-वासुदेवः। कुरुभ्यः-नाकुलः, साहदेवः।

अनु०--ऋषि, अन्धक, वृष्णि और कुरुओं के वाचक शब्दों से अपत्य अर्थं में अण् प्रत्यय होता है।

वासिष्ठः--ऋषि वशिष्ठ के अपत्य के अर्थ में वसिष्ठ शब्द से 'ऋष्यन्धकवृष्णिकुरुभ्यश्च' सूत्र से अण् प्रत्यय होकर 'तद्धि-तेष्वचामादेः' से आदि अच् की वृद्धि तथा अन्तिम अ का लोप होने पर प्र० ए० व० में वैश्वामित्रः बनेगा।

अन्धक वंशीय--अश्वफल्क शब्द वृष्णि वंशीय-वसुदेव शब्द तथा कुरुवंशीय नकुल तथा सहदेव शब्द से-अपत्य अर्थ में 'ऋष्यन्धक वृष्णि कुरुभ्यश्च' सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर आदि अच् की 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से वृद्धि तथा अन्तिम अ का लोप होकर प्रथमा ए० व० में-आश्वफल्कः, वासुदेवः, नाकुलः, और साहदेवः रूप बनेंगे।

सू० १०१९--मातुरुत्संख्यासंभद्र पूर्वायाः ४।१।११५। संख्यादिपूर्वस्य मातृशब्दस्य 'उद्' आदेशः स्यात् अण् प्रत्ययश्च। द्वैमातुरः, षाण्मातुरः सांमातुरः; भाद्रमातुरः।

अनु०—संख्या, स तथा भद्र पूर्वक मातृ शब्द को उ आदेश होता है और अण् प्रत्यय भी होता है अपत्य अर्थ में।

(अलोन्त्य परिभाषा से अन्त्य ऋकार के स्थान में उत् आदेश होता है और 'उरणरपरः' से रपर होकर उर् होता है।

द्वैमातुरः--गणेश (द्वयोर्मात्रोरपत्यं पुमान्) के अर्थ में द्विमातृ शब्द से 'मातुरुत्संख्यासंभद्र पूर्वायाः' सूत्र से मातृ के ऋ के स्थान में उ आदेश हुआ। उसको 'उरणरपरः' से रपर होने पर आदि अच् की वृद्धि होने पर द्वैमातुर बना। प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा ए०व० में द्वैमातुरः बना।

षाण्मातुरः (षण्णां मातृणामपत्यं पुमान्)=स्कन्द। सांमातुरः-(संमातुरपत्यं पुमान्)=अच्छी माता का पुत्र। भाद्रमातुरः-(भद्रमातुरपत्यं पुमान्) अच्छी माता का पुत्र। इन सभी शब्दों की सिद्धि द्वैमातुरः' के ही समान होगी।

सू० १०२०--कन्यायाः कानीन च ४।१।११६। चादण्। कानीनः = व्यासः, कर्णश्च

अनु०—कन्या शब्द से अपत्य अर्थ में कानीन आदेश होता और अण् प्रत्यय भी होता है।

कानीनः=कन्या (अविवाहिता) के पुत्र (व्यास और कर्ण) कानीनः-कन्यायाः अपत्यम् के अर्थ में 'कन्यायाः कानीनच' सूत्र से कानीन आदेश होकर प्र०ए०व० में कानीनः बना

सू० १०२१—स्त्रीभ्योढक् ४।१।१२०। स्त्रीप्रत्ययान्तेभ्यो ढक्। वैनतेयः।

अनु०—स्त्रीप्रत्ययान्त शब्द से अपत्य अर्थ में ढक् प्रत्यय होता

है। (ढक् का क् इत्संज्ञक है।)

वनतेय:- विनताया अपत्यं पुमान्) इस अर्थ में स्त्रीप्रत्ययान्त विनता शब्द से 'स्त्रीभ्योढक्' सूत्र से ढक् प्रत्यय होने पर 'आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' सूत्र से ढ का एय् हुआ। फिर आदि अच् की 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से वृद्धि तथा अन्तिम आ का लोप होकर प्रथमा ए०व० में वैनतेयः बना।

मू० १०२२--राजश्वशुराद्यत् ४।१।१३७। (वा०) राज्ञो जातावेव इतिवाच्यम्। १०२३-ये चाभावकर्मणोः ६।४।१६८ यादौतद्धिते परेऽन् प्रकृत्या स्यात् ' नतु भावकर्मणोः। राजन्यः। श्वशुर्यः। जाता वेवेति किम्?

अनु०—अपत्य अर्थ में राजन् एवं श्वशुर शब्द से अपत्य अर्थ में यत् प्रत्यय होता हैं। किन्तु राजन् शब्द से यत् प्रत्यय जाति अर्थ में ही होता है। १०२३-यकारादि तद्धित प्रत्यय परे रहते धातु से अन् होता है किन्तु भाव और कर्म में नहीं।

राजन्यः—राजन् शब्द से 'राज्ञो जातावेवेति वाच्यम्' वार्तिक से जाति अर्थ में राजश्वशुराद्यत्' सूत्र से यत् प्रत्यय होकर 'ये चाभावकर्मणोः' सूत्र से अन् हुआ। पुन प्राति पदिकसंज्ञा होकर सुविभक्ति आने पर 'नस्तद्धिते' सूत्र से टि 'राजन्' के अन् का लोप होकर तथा सु का रुत्व विसर्ग होकर 'राजन्यः' बना।

श्वशुर्यः—श्वशुरस्यापत्यं पुमान् के अर्थ में, श्वशुर शब्द से 'राजश्वशुराद्यत्' सूत्र से यत् प्रत्यय होने पर 'श्वशुर्य' बना। पुनः अन्त्य अ का लोप होकर प्रथमा ए०व० में श्वशुर्यः बना।

जातावेवेतिकिम् ?-प्रश्न उठता हैं कि जाति वाचक ही राजा शब्द से अपत्य अर्थ में यत् प्रत्यय का विधान क्यों किया गया है ? तो इसका उत्तर है कि जाति से भिन्न राजा शब्द से यत् प्रत्यय न हो जाय।

मू०१०२४-अन् ६।४।१६७। अन् प्रकृत्या स्यादणि प्रत्यये परे। राजनः।

अनु०—अण् प्रत्यय परे रहते राजन् शब्द से अन् प्रत्यय होता है।

राजनः—'राज्ञ अपत्यं पुमान्' अर्थ में राजन् शब्द से जाति भिन्न अर्थ में अण् प्रत्यय होने पर 'अन्' सूत्र से अन् प्रत्यय हुआ। टि राजन् के अन् का लोप होकर प्रथमा ए०व० में राजनः हो गया।

मू० १०२५—क्षत्राद्घः ४।१।१३८। क्षत्रियः। जातौ इत्येव। ६ा त्रः = अन्यत्र।

अनु० - क्षत्र शब्द से घ प्रत्यय होता है।

क्षत्रियः—क्षत्र शब्द से 'क्षत्राद्घः' सूत्र से 'घ' प्रत्यय हुआ। 'आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' सूत्र से घ का इय् होकर तथा टि का लोप होकर क्षत्रियः प्रथमा ए०व० में रूप बना।

क्षात्रिः—क्षत्र शब्द से 'अतइञ्' सूत्र से अञ् प्रत्यय होने पर आदि अच् को वृद्धि होने पर तथा अन्त्य 'अ' का लोप होने पर प्रथमा ए० व० में 'क्षात्रिः' हुआ।

मू० १०२६—रेवत्यादिभ्यष्ठक्' ४।१।१४६। १०२६—ठस्येकः ७।३।५० अङ्गात् परस्य ठस्य 'इक्' आदेशः स्यात्। रैवतिकः।

अनु०—१२२६ रेवती आदि शब्दों से अपत्य अर्थ में ठक् प्रत्यय होता है। १०२७ अङ्ग से परे ठ को इक् आदेश होता है।

रैवतिकः—रेवती शब्द से 'रेवत्यादिभ्यष्ठक्' सूत्र से ठक् तथा 'ठस्येकः' से ठ का इका 'इक्' हुआ। आदि अच् की वृद्धि होकर अन्त्य इ का लोप होकर प्रथमा ए०व० में 'रैवतिकः' बना।

मू० १०२८—जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ् ४।१।१६८। जनपद क्षत्रिय वाचकाच्छब्दादञ् स्यादपत्ये। पाञ्चालः।

अनु०—जनपद क्षत्रियवाचक शब्द से अञ् प्रत्यय होता है। अपत्य अर्थ में।

पाञ्चालः—जनपद वाचक पञ्चाल शब्द से 'जनपद शब्दात्

क्षत्रियादञ्,' सूत्र से अञ् प्रत्यय होने पर 'तद्धितेष्वचामादेः सूत्र से आदि अच् की वृद्धि हुई तथा अन्त्य अ का लोप होकर प्रथमा ए०व० में 'पाञ्चालः' बना ।

३०(वा०) क्षत्रिय समान शब्दाज्जनपदात्तस्य राजन्यप्रत्ययवत् । पञ्चालानां राजा–पाञ्चालः ।

अनु०–क्षत्रिय जाति वाचक शब्द के समान यदि जनपद का वाचक शब्द हो तो उससे राजा अर्थ में अपत्य अर्थ के समान प्रत्यय हो ।

पाञ्चालः--पाञ्चाल देश का राजा । अर्थ में पञ्चाल शब्द से 'क्षत्रियसमान शब्दात्' इत्यादि वार्तिक के द्वारा अपत्य प्रत्यय के समान अञ् प्रत्यय होने पर आदि अच् की वृद्धि तथा अन्त्य अ का लोप होकर प्रथमा ए०व० में पाञ्चालः बना है ।

मू०(वा०) पूरोरण् वक्तव्यः । पौरवः ।

अनु०–पुरु शब्द से राजा अर्थ में अण् प्रत्यय होता हैं ।

पौरवः–पुरूणां राजा के अर्थ में पुरु शब्द से 'पुरोरण् वक्तव्यः ।' वार्तिक से अण् प्रत्यय होकर आदि अच् की वृद्धि होकर 'ओर्गुणः' सूत्र से रु के उ का ओगुण होकर अवादेश होने पर प्रथमा ए०व० में पौरवः बनता है ।

मू०–(वा०) पाण्डोड्यण् । पाण्ड्यः ।

अनु०--पाण्डु शब्द से ड्यण् प्रत्यय होता है ।

पाण्ड्यः--जनपद वाचक पाण्डु शब्द से 'पाण्डोड्यण्' से ड्यण् प्रत्यय होने पर आदि अच् की वृद्धि होने पर डित् प्रत्यय परे रहते टि उ का लोप होकर प्रथमा ए०व० में पाण्ड्यः बना ।

मू० १०२९–कुरुनादिभ्योण्यः ५।१।१७२। कौरव्यः । नैषध्यः ।

अनु०–कुरु और नकारादि शब्दों से ण्य प्रत्यय होता है ।

कौरव्यः--कुरु जनपद विशेषाणां क्षत्रियाणां राजा । के अर्थ

में 'कुरुनादिभ्योण्यः' सूत्र से ण्य प्रत्यय होने पर आदि अच् की वृद्धि होने पर 'ओर्गुणः' से गुण होकर के आवादेश होने पर प्रथमा ए० व० में 'कौरव्यः' बना।

नैषध्यः--निषधानां राजा के अर्थ में निषध शब्द से ण्य प्रत्यय होकर कौरव्यः की तरह बनेगा।

मू०--१०३०-ते तद्राजाः ४।१।१७४। अञादयस्तद्राजसंज्ञाः स्युः १०३१-तद्राजस्य बहुषु तेनैवाऽस्त्रियाम् २।४।६२। बहुष्वर्थेषु तद्राजस्य लुक् तदर्थंकृते बहुत्वे, न तु स्त्रियाम्। इक्ष्वाकवः। पञ्चालाः।

अनु०--१०३०-'जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ्' से लेकर जनपद वाची शब्दों से विहित अण् आदि प्रत्ययों की 'तद्राज' संज्ञा होती है। १०३१-यदि बहुत्व 'तद्राज' प्रत्यय का ही हो तो बहुत्व की विवक्षा में 'तद्राज' का लुक् हो जाता है।

इक्ष्वाकवः--इक्ष्वाकूणां जनपदविशेषणां राजानः' अर्थ में-'जनपदात् क्षत्रियादञ्' सूत्र से अञ् प्रत्यय होने पर आदि अच् की वृद्धि तथा 'ओर्गुणः' से गुण एवं अवादेश होकर ऐक्ष्वाकवः' बना। 'ते तद्राजा' से अञ् की तद्राज संज्ञा हुई और बहुत्व की विवक्षा में 'तद्राजस्य बहुषु तेनैवास्त्रियाम्' सूत्र से अञ् तथा तज्जन्य आदि अच् की वृद्धि आदि की निवृत्ति होकर प्रथमा ब० व० में इक्ष्वाकवः बना।

पञ्चालाः--पञ्चालानां जनपदविशेषाणां राजानः' के अर्थ में 'ईक्ष्वाकवः' के समान प्रथमा ब० व० में बनेगा।

मू०--१०३२-कम्बोजाल्लुक् ४।१।१७५। अस्मात् 'तद्राजस्य' लुक्-कम्बोजः। कम्बोजौ।

अनु०--कम्बोज शब्द से तद्राज प्रत्यय का लुक् होता है।

कम्बोज--'कबोजानाँ देश विशेषाणां राजा' के अर्थ में 'कम्बोज' शब्द से 'जनपदात् क्षत्रियादञ्' से अञ् प्रत्यय होने पर

'अञ्' की 'तेतद्राजाः' की 'तद्राज' संज्ञा हुई। फिर 'कम्बाजाल्लुक्' से तद्राज प्रत्यय 'अञ्' का लुक् होने पर प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्रथमा ए० व० में कम्बोजः बनेगा और द्वि० व० में कम्बोजौ।

मू० वा) कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम्। चोलः, शकः, केरलः। यवनः। इत्यपत्याधिकारः।

अनु०--कम्बोज आदि से 'तद्राज' प्रत्यय का लुक् होता है।

चोलः--'चोलानां राजा' के अर्थ में क्षत्रियाज्जनपदादञ्' से अञ् प्रत्यय होकर 'अञ्' की 'तेतद्राजाः' से तद्राजसंज्ञा होकर 'कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम्' से तद्राजसंज्ञा होकर 'कम्बोजादिभ्य इति वक्तव्यम्' वार्तिक से अञ् का लुक् होकर प्रथमा ए० व० में चोलः बनेगा।

शकः, केरलः, और यवनः भी चोलः के ही समान सिद्ध होंगे।

इस तरह अपत्याधिकार समाप्त हुआ।

अथ शैषिकाः

मू०--१०६८-अपत्यादि चतुरर्थ्यन्ताद् अन्योर्थः, शेषः। तत्राणयः स्युः। चक्षुषागृह्यते चाक्षुषम्-रूपम्। श्रावणः-शब्दः। औपनिषदः पुरुषः। दृषदिपिष्टाः-दार्षदाः-सक्तवः। चतुर्भिरुह्यते चातुरम्-शकटम्। चतुर्दश्यां दृश्यते चातुर्दशम् रक्षः। 'तस्यविकारः' इत्यतः प्राक् शेषाधिकारः।

अनु०--अपत्य अर्थ से लेकर चतुरर्थी तक के अर्थों से भिन्न अर्थ शेष कहलाता है और शेष अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

चाक्षुषम् = (जिसका नेत्रों से ग्रहण होता है) इस अर्थ में चक्षुष् शब्द से अण् प्रत्यय होकर आदि अच् की वृद्धि होकर

प्रथमा ए० व० में चाक्षुषम् बनता है।

श्रावणः--जिसका श्रोत्र से ग्रहण हो के अर्थ में अण् प्रत्यय होकर सिद्ध होगा। उपनिषदि प्रतिपादितः पुरुषः' = औपनिषदः। दृषदि पिष्टाः = (पत्थर पर पिसे गये) दार्षदाः। चातुरम् = (चार के द्वारा खींची जाने वाली गाड़ी। चातुर्दशम् = (जो राक्षस चतुर्दशी को (में) दिखायी पड़ता है)। इत्यादि अर्थों में श्रवण, उपनिषद्, दृषद्, चतुर् तथा चतुर्दशी शब्दों से अण् प्रत्यय होकर उपर्युक्त शब्द सिद्ध होते हैं।

'तस्य विकारः ४।३।१३४। सूत्र पर्यन्त शेष का अधिकार है इस अधिकार में होने वाले प्रत्यय शैषिक प्रत्यय कहलाते हैं।

मू०--राष्ट्रावारपाराद्घखौ ४।२।९३। आभ्यां क्रमाद्घखौ स्तः। शेषे। राष्ट्रे जातादिः राष्ट्रियः। अवारपारीणः (वा०) अवारपाराद् विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्। अवारीणः, पारीणः, पारावारीणः। इह प्रकृतिविशेषाद् घादयष्ट्युट्युलन्ताः प्रत्यया उच्यन्ते तेषाँ जातादयोऽर्थविशेषाः समर्थविभक्तयश्च वक्ष्यन्ते।

अनु०--राष्ट्र एवं अवारपार शब्दों से क्रमशः शेष अर्थं में घ एवं ख प्रत्यय होते हैं।

राष्ट्रियः-(राष्ट्रे जातः भवो वा) इत्यादि अर्थों में 'राष्ट्रावारपाराद्घखौ' सूत्र से राष्ट्र शब्द से घ प्रत्यय होने पर 'आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययदीनाम्' सूत्र से 'घ' का इय् होकर तथा अन्त्य अकार का लोप होकर प्रथमा ए० व० में राष्ट्रियः बनता है।

अवारपारीणः-पारङ्गत-अवारपार शब्द से 'राष्ट्रावारपाराद्घखौ' से छ प्रत्यय होने पर 'आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' सूत्र से ख का ईन् होकर णत्व होने पर प्रथमा ए० व० में 'अवारपारीणः' बना।

अवार-पारादित्यादि--अवार पार शब्द से अवार और पार अलग-अलग शब्दों से तथा पारावार शब्द से भी ख प्रत्यय होता है।

अवारीणः—अवारे जातः अर्थं में अवार शब्द से 'अवारपाराद् विगृहीतादपि विपरीताच्चेति वक्तव्यम्' वार्तिक से ख प्रत्यय होने पर 'आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनां' सूत्र से ख का ईन् होने पर अन्त्य अकार का लोप तथा णत्व होने पर प्रथमा ए०व० में अवारीणः बना।

पारीणः-तथा पारावारीणः-भी अवारीणः के समान सिद्ध होंगे।

इहेत्यादि—इस शैषिक प्रकरण में 'राष्ट्रावारपाराद्घखौ' सूत्र से राष्ट्र आदि प्रकृति विशेष से घ, आदि प्रत्यय कहे गये हैं। इन प्रत्ययों में 'तत्रजातः' इत्यादि अर्थों में होने वाले प्रत्यय सामान्य प्रत्यय हैं। इसी तरह समर्थं आदि प्रत्यय भी आगे बतलाये जायेंगे।

मू०--ग्रामाद् यखञौ ४।२।९४। ग्राम्यः, गामीणः।

अनु०--ग्राम शब्द से य और खञ् प्रत्यय होते हैं।

ग्राम्यः--ग्रामीणः-ग्राम शब्द से 'ग्रामाद् यखञौ' सूत्र से य और खञ् प्रत्यय होने पर तथा ख का 'आयनेयीनी' इत्यादि सूत्र से ईन होने पर 'ग्राम य' तथा 'ग्राम ईन' बना। न का णत्व तथा ग्राम शब्द के अन्तिम अ का लोप होने पर प्रथमा ए०ब० में ग्राम्यः और ग्रामीणः रूप बनेंगे।

मू० १०७१-नद्यादिभ्योढक् ४।२।९८। नादेयम् माहेयम्, वाराणसेयम्।

अनु०--नदी आदि शब्दों से ढक् प्रत्यय होता है।

नादेयम्--(नद्यां जातो भवो वा) इस सप्तम्यन्त समर्थं नदी शब्द से 'नद्यादिभ्योढक्' से ढक् प्रत्यय हुआ। ढक् को 'आयनेयीनीयियः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' सूत्र से एय् हुआ तथा आदि अच् की वृद्धि होकर प्रथमा ए०व० में नादेयम् बना।

माहेयम्—मह्यां भवम्—(पृथिवी पर उत्पन्न) अर्थ में मही-शब्द से 'नद्यादिभ्यो ढक्' सूत्र से ढक् प्रत्यय होने पर 'आयनेयी-नीयीयः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' से ढ का एय् आदेश हुआ। तदनंतर 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से आदि अच् की वृद्धि तथा अन्तिम ई का लोप होकर प्रथमा ए०व० में माहेयम् बना।

वाराणसेयम्—'वाराणस्यां भवम्' अर्थ में वाराणसी शब्द से ढक् प्रत्यय होकर के ही समान यह रूप होगा।

सू० १०७२—दक्षिणापश्चात् पुरसस्त्यक् ४।२।९७। दाक्षिणात्यः पाश्चात्यः, पौरस्त्यः।

अनु०—दक्षिणा, पश्चात् तथा पुरस् इन अव्यय शब्दों से त्यक् प्रत्यय होता है भव अर्थ में। दाक्षिणात्यः दक्षिणायां भवः के अर्थ में दक्षिणा शब्द से 'दक्षिणापश्चात् पुरसस्त्यक्' सूत्र से त्यक् प्रत्यय होकर आदि अच् की 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्रसे वृद्धि हुई तो प्रथमा ए०व० में दाक्षिणात्यः पद सिद्ध हुआ।

पाश्चात्यः—पश्चाद्भवः तथा पौरस्त्यः-पुरः भवः इन अर्थों में पश्चात् तथा पुरस् शब्द से त्यक् प्रत्यय होकर दाक्षिणात्यः के समान ही प्रथमा ए० व० में रूप होगा।

सू० १०७३—द्युप्रागपागुदक् प्रतीचोयत् ४।२।१०१। दिव्यम् 'प्राच्यम्' अपाच्यम्, उदीच्यम्, प्रतीच्यम्।

अनु०—दिव्, प्राच्, अपाच्, उदच् और प्रतीच् इन सप्तम्यन्त समर्थ शब्दों से भवादि अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

दिव्यम्—दिवि भवम् अर्थ में दिव् शब्द से 'द्युप्रागपागुदक् प्रतीचोयत्' सूत्र से यत् प्रत्यय होकर प्रथमा ए०व० में दिव्यम् बनेगा। प्राच्+यत्=प्राच्यम्। अपाच्+यत्=अपाच्यम्। उदीच्+यत्=उदीच्यम्। प्रतीच्+यत्=प्रतीच्यम्। इन सभी शब्दों की भव अर्थ में दिव्यम् की तरह सिद्धि होगी।

सू० १०७४--अव्ययात् त्यप ४।२।१०४ । (वा०) अमेहक्वतसित्रेभ्य एव । अमात्यः । इहत्यः । क्वत्यः । ततस्त्यः । तत्रत्यः । वा०-त्यपनेर्ध्रुवेइति वक्तव्यम् । नित्यः ।

अनु०-अव्ययों से भवादि अर्थ में त्यप् प्रत्यय होता है । अमे० इत्यादि अमा = साथ, इह = यहां, क्व = कहां । तसन्त-(कुतः अत० इत्यादि । त्रल् प्रत्ययान्त (अत्र-कुत्र इत्यादि) अव्ययों से ही त्यप् प्रत्यय होता है ।

अमात्यः = मन्त्री (अमा = साथ, भवः) अर्थ में = अमा शब्द से 'अमेहक्वतसित्रेभ्य एव' वार्तिक से त्यप् प्रत्यय होकर प्रथमा ए०व० में अमात्यः बनेगा ।

इह + त्यप् = इहत्यः । क्व + त्यप् = क्वत्यः । ततः + त्यप् = ततस्त्यः । तत्र + त्यप् = तत्रत्यः । इन सभी शब्दों में 'अमेहक्वतसित्रेभ्यः एव थार्तिक से त्यप् प्रत्यय होकर अमात्यः के समान प्रथमा ए०व० में इन रूपों की सिद्धि होगी ।

'त्यप्' इत्यदि —नि उपसर्ग सेभी त्यप् प्रत्यय होता है ध्रुव अर्थ में ।

नित्यः—नि उपसर्ग से ध्रुव (निश्चित) अर्थ में 'त्यप् नेध्रुव इति वक्तव्यम्' वार्तिक से त्यप् प्रत्यय होकर प्रथमा ए०व० में नित्यः पद बनेगा ।

सू० १०७५--वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम् १।१।७३। यस्य समुदायस्याचां मध्ये आदिर्वृद्धिः तद्वृद्धसंज्ञं स्यात् । १०७६-त्यदादीनि च १।१।४७। वृद्धसंज्ञानि स्युः । १०७७ वृद्धाच्छः । ४।२।११४ । शालीयः । मालीयः । तदीयः । (वा०) वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या । देवदत्तीयः । दैवदत्तः ।

अनु०—१०७५-जिस समुदाय के अचों में आदि अच् वृद्धि हो उसको वृद्ध संज्ञा होती है । १०७६—त्यादादियों की भी वृद्ध

संज्ञा होती है। १०७७ वृद्धसंज्ञक शब्दों से शैषिक छ प्रत्यय होता है।

शालीयः—'शालायां भवः' अर्थ में शाला शब्द की 'वृद्धिर्यं स्याचामादिस्तद्वृद्धम्' सूत्र से वृद्ध संज्ञा होने पर 'वृद्धाच्छः' सूत्र से 'छ' प्रत्यय हुआ। छ का 'आयने यीनी यायः फढखछघां प्रत्यया दीनाम्' सूत्र से 'ईय्' होकर अन्त्य आकार का लोप होने पर प्रथमा ए० व० में 'शालीयः' बना।

मालीयः—मालायाम् भवः अर्थ में माला शब्द की 'वृद्धिर्यं स्याचामादिस्तद्वृद्धम्' सूत्र से वृद्ध संज्ञा होने पर 'वृद्धाच्छः' से छ प्रत्यय हुआ और 'आयने यी नीयीयः फढखछघां प्रत्ययादीनाम् सूत्र से 'छ' का ईय आदेश तथा अन्त्य आ का लोप होकर प्र० ए० व० में मालीयः बना।

तदीयः—तत् शब्द की त्यदादीनाम् सूत्र से 'वृद्ध संज्ञा' होने पर 'वृद्धाच्छः' सूत्र सें छ प्रत्यय हुआ। छ का ईय् आदेश होने पर प्रथमा ए०व०में 'तदीयः' शब्द की सिद्धि होगी।

वा नामधेय०इत्यादि—व्यक्तिवाचक पद की वृद्धसंज्ञाविकल्प से होती है।

देवदत्तीयः देवदत्त-देवदत्तस्या पत्यम्' अर्थ में, देवदत्त शब्द की 'वा नामधेयस्य वृद्धिसंज्ञा वक्तव्या' इस वार्तिक से वैकल्पिक वृद्धसंज्ञा होने पर 'वृद्धाच्छः' सूत्र से 'छ' प्रत्यय तथा 'छ' का 'ईय्' आदेश होने पर अन्त्य अ का लोप होकर प्रथमा ए०व० में 'देवदत्तीयः' बना। वृद्ध संज्ञा के अभाव पक्ष में अण् प्रत्यय तथा आदि अच् की वृद्धि होकर प्रथमा ए०व० में 'दैवदत्तः' बना।

मू० १०७८—गहादिभ्यश्च ।४।२।१३८। गहीयः।

अनु०—गहादियों की भी वृद्धसंज्ञा होती है। गहीय = गहे भवः-अर्थ में गहशब्द की 'गहेभ्यश्च' सूत्र से वृद्ध संज्ञा होकर

'वृद्धाच्छः' सूत्र से छ प्रत्यय होने पर 'आयने' इत्यादि सूत्र से 'छ' का ईय् होकर तथा अन्त्य अ का लोप होकर प्र० ए० व० में गहीयः बनेगा ।

सू०—युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च । ४।३।१। चात्छः । पक्षेऽण् युवयोर्युष्माकं वाऽयम्—युष्मदीयः । अस्मदीयः ।

अनु०—युष्मद् और अस्मद् शब्द से खञ् प्रत्यय भी होता है । सूत्र का 'च' शब्द सूचित करता है कि 'छ' और पक्ष में अण् प्रत्यय भी होता है ।

युष्मदीयः (आप लोगों का) अस्मदीयः (हम लोगों का) =युष्मद् तथा अस्मद् शब्द से 'युष्मदस्मदो रन्य तरस्यां खञ् च' सूत्र से 'छ' प्रत्यय होने पर 'छ' का ईय् हुआ 'आयनेयीनीयीयः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' सूत्र से । प्रथमा ए० व० में युष्मदीयः तथा अस्मदीयः रूप सिद्ध होंगे ।

सू०—१०८०—'तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ।' ४।१।६। युष्मदस्मदोरेतावादेशौ स्तः खञि अणि च । यौष्माकीणः । आस्माकीनः । यौष्माकः अस्माकः ।

अनु०—खञ् और अण् प्रत्यय होने पर युष्मद् को युष्माक तथा अस्मद् को 'अस्माक' आदेश होता है ।

यौष्माकीणः यौष्माकः—(आप लोगों का) युष्मद् शब्द से 'युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च' सूत्र से खञ् प्रत्यय के होने पर 'तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ' सूत्र से युष्मद् शब्द को 'युष्माक' आदेश हुआ । 'आयनेयीनीयीयः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' सूत्र से 'ख' का ईन् आदेश हुआ तथा 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से आदि अच् यु के उ की औवृद्धि होने पर तथा णत्व होने पर प्रथमा ए० व० में 'यौष्माकीणः' बनेगा । जहाँ पर खञ् नहीं हुआ वहाँ पर 'अण्' होने पर यौष्माकः बनेगा ।

आस्माकीनः, आस्माकः—हम लोगों का-अस्मद् शब्द से 'युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च' सूत्र से खञ् प्रत्यय होने पर 'अस्मद्' शब्द का 'तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ' सूत्र से अस्माक आदेश हुआ। पुनः आदि अच् की वृद्धि हुई 'तद्धितेष्वचामादेः सूत्र से तब प्रथमा ए० व० में आस्माकीनः बना। जहां पर खञ् न होकर अण् प्रत्यय हुआ वहां प् 'आस्माकः' रूप बना।

सू०—१०८१–तवकममकावेकवचने ४।३।३। एकार्थवाचिनोर्युष्मदस्मदोस्तवकममकौ स्तः खञि अणि च। तावकीनः तावकः, मामकीनः मामकः। छे तु–१०८२ 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ७।२।९८। मपर्यन्तयोरेकार्थवाचिनोः 'त्व मौ' स्तः प्रत्यये उत्तर पदे च परतः। त्वदीयः मदीयः त्वत्पुत्रः, मत्पुत्रः।

अनु०—एक अर्थ के वाचक युष्मद् और अस्मद् शब्द को 'तवक और ममक' आदेश होते हैं, खञ् और अण् प्रत्यय परे रहते।

तावकीनः तावकः—'तुम्हारा' के अर्थ में युष्मद् शब्द से 'युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च सूत्र से' खञ् प्रत्यय होने पर 'तवकममकावेकवचने' सूत्र से तवक आदेश हुआ पुनः खञ् का ईन् एवं आदि अच् की वृद्धि होने पर प्रथमा ए० व० में तावकीनः रूप बना। जहां पर खञ् नहीं हुआ वहाँ पर अभाव पक्ष में अण् प्रत्यय और आदि अच् की वृद्धि होकर प्र० ए० व० में तावकः रूप बना।

मामकीनः मामकः—(मेरा) अर्थ में अस्मद् शब्द से 'युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च' सूत्र से खञ् प्रत्यय होने पर 'तवकममकावेकवचने' सूत्र से 'ममक' आदेश तथा खञ् का ईन् और आदि अच् की वृद्धि होने पर प्रथमा ए० व० में मामकीनः बना। जहां पर खञ् प्रत्यय नहीं हुआ वहां पर अण् प्रत्यय होकर मामकः बना।

छेनु० इत्यादि–जहाँ पर 'छ' प्रत्यय नहीं होगा वहां पर निम्न सूत्र की प्रवृत्ति होगी । १०८२–एक अर्थ के वाचक युष्मद और अस्मद् सूत्र के म पर्यन्त 'युष्म' तथा 'अस्म' को 'त्व' और 'म' आदेश होते हैं प्रत्यय तथा उत्तर पद परे रहते ।

त्वदीयः––(तुम्हारा) अर्थ में युष्मद् शब्द की 'त्यदादीनि च' सूत्र से 'युष्मद्' शब्द को 'वृद्धसज्ञा' हुई । 'वृद्धाच्छ' सूत्र से 'छ' प्रत्यय हुआ तथा छ का 'आयनेयीनीयीयः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्' सूत्र से 'छ' का ईय् हुआ और 'प्रत्ययोत्तर पदयोश्च' सूत्र से 'युष्मद्' के युष्म को 'त्व' आदेश होने पर प्रथमा ए०व० में त्वदीयः बना ।

मदीयः––'मेरा' अर्थ में अस्मद् शब्द की वृद्धसंज्ञा तथा 'छ' प्रत्यय तथा अस्मद् के म पर्यन्त को म आदेश होकर प्रथमा ए० व० में 'मदीयः' बनेगा ।

त्वत्पुत्रः' मत्पुत्रः––पुत्र शब्द के उपपद रहने पर भी युष्मद् तथा अस्मद् के म पर्यन्त को त्व और म आदेश तथा चर् होने पर प्रथमा ए० व० में त्वत्पुत्रः और मत्पुत्रः रूप बनेंगे ।

सू०––१०८३–'मध्यान्मः' ४।३।८। मध्यमः ।

अनु०––मध्य शब्द से भव आदि अर्थों में मप्रत्यय होता है ।

मध्यमः––(बीच का) अर्थ में मध्य शब्द से 'मध्यान्मः' सूत्र से 'म' प्रत्यय होने पर प्रथमा ए० व० में 'मध्यमः' बना ।

सू०––१०८४–'कालाट्ठञ्' ४।३।११। कालवाचिभ्यः ठञ् स्यात् । कालिकम्, मासिकम्, सांवत्सरिकम् ।

अनु०––काल वाचक शब्दों से ठञ् प्रत्यय होता है ।

कालिकम्––'कालेभवः' अर्थ में काल शब्द से कालाट्ठञ्' सूत्र से ठञ् प्रत्यय होने पर ठञ् का इक् तथा आदि अच् की वृद्धि होकर प्रथमा ए० व० में कालिकम् बना ।

मासिकम्- (महने में होने वाला) सांवत्सरिकम् (वर्ष भर में होने वाला) अर्थ में मास तथा संवत्सर शब्दों से ठञ् तथा ठञ् का इक् होकर एवं आदि अच् की वृद्धि होकर प्र० ए० व० में 'मासिकम्', तथा 'सांवत्सरिकम्' रूप बनेंगे।

मू० (वा०)--अव्ययानां भ मात्रे टिलोपः-सायंप्रातिकः, पौनः पुनिकः।

अनु०--भसंज्ञा होने पर अव्ययों के टि का लोप सर्वत्र हो जाता है। सायंप्रातिकः-(सवेरे शाम होने वाला) अर्थ में काल-वाची 'सायंप्रातः' शब्द से 'कालाट् ठञ्' सूत्र से ठञ् प्रत्यय होने पर 'ठस्येकः' से ठ का इक् हुआ। तथा 'अव्ययानां भमात्रे टि लोपः, से टि 'अ' का लोप होने पर आदि अच् की वृद्धि होकर प्रथमा ए०व० में 'सायंप्रातिकः' बना।

पौनःपुनिक.—(बार बार होने वाला) अर्थ में पुनः पुनः शब्द से ठञ् होकर सायंप्रातिकः के समान 'पौनः पुनिकः' शब्द की सिद्धि होगी।

मू० १०८५--प्रावृष एण्यः ४।३।१७। प्रावृषेण्यः।

अनु०--काल विशेष के वाचक प्रावृष् शब्द से एण्य प्रत्यय होता है।

प्रावृषेण्यः--वर्षाकाल में होने वाला। प्रावृष् शब्द से 'प्रावृष एण्यः' सूत्र से एण्य प्रत्यय होने पर प्रथमा ए० व० में प्रावृषेण्यः' रूप सिद्ध होगा।

मू०१०८६--सायं-चिरं-प्राह्णे-प्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च। ४।३।२३। सायमित्यादिभ्यश्चतुर्भ्योऽव्ययेभ्यश्च कालवाचिभ्यः ट्युट्युलौ स्तः। तयोस्तुट् च। सायन्तनम् चिरन्तनम्। 'प्राह्णे-प्रगे' अनयोरेदन्तत्वं निपात्यते। प्राह्णेतनम् प्रगेतनम्। दोषातनम्।

अनु०--सायम्, चिरम्, प्राह्णे, और प्रगे इन चार अव्ययों

से ट्यु तथा ट्यलु प्रत्यय होते हैं तथा इनको तुट् का आगम होता है।

सायन्तनम्--(सायं काल में होने वाला) सायम् अव्यय से 'सायं चिरं प्राह्णे प्रगे०' इत्यादि सूत्र से टयु प्रत्यय हुआ। अनुबन्ध लोप होकर सायम् यु बना। 'युवो रनाकौ' से 'यु' का अन होकर तथा तुट् का आगम होने पर प्रथमा ए०व० में 'सायन्त नम्' बना।

चिरन्तनम्प्राचीन। प्राह्णेतनम् (पूर्वाह्ण जिसका सहा गया है।) प्रगेतनम्, =दोषातनम्=रात में होने वाला इन अर्थों में प्रातः कालीन। चिरम् प्राह्ण तथा प्रगे इन अव्ययों से टयु तथा तुट् तथा तुट् होकर एवं यु का अन होकर सायन्तनम् के ही समान प्र०ए०व० में उपर्युक्त रूप सिद्ध होंगे।

मू० १८७—तत्र जातः ४।३।२५। सप्तमी समर्थात् 'जाते' इत्यर्थे अण् अदयो 'घ' आदयश्चस्युः। स्रुघ्ने जातः स्रौघ्नः। उत्से जातः औत्सः। राष्ट्रे जातः राष्ट्रियः। अवारपारेजातः=अवारपारीणः। इत्यादि।

अनु०-सप्तम्यन्त समर्थ से उत्पन्न अर्थ मे 'अण्' आदि सामान्य तथा 'घ' आदि विशेष प्रत्यय होते हैं।

स्रौघ्नः-(स्रुघ्न देश में उत्पन्न) अर्थ में स्रुघ्न शब्द से उत्पन्न अर्थ मे 'तत्र जातः' सूत्र से अण् प्रत्यय हुआ। तदनन्तर आदि अच् की वृद्धि तथा अन्त्य अकार का लोप उत्स+अञ्= औत्सः (प्रवाह में उत्पन्न) राष्ट्र+घ=राष्ट्रियः (देश में उत्पन्न) अवार पार+खञ्=अवार पारीणः समुद्र में उत्पन्न) इन सभी शब्दों की सिद्धि पहले की जाचुकी। है।

मू० १०८८--प्रावृषष्ठप् ४।३।२६। एण्यापवादः। प्रावृषकः।

अनु०-प्रावृष् शब्द से ठप् प्रत्यय होता है। यह एण्य का अपवाद सूत्र है।

प्रावृषिकः—प्रावृष्‌शब्द से उत्पन्न अर्थ में 'प्रावृषष्ठप्' सूत्र से ठप् प्रत्यय हुआ। ठ का इक होकर प्रथमा ए० ब० में प्रावर्षिकः बना।

सू० १०८९–प्राय भवः ४।३।३९। तत्र इत्येव। स्रुघ्ने प्रायेण बाहुल्येन भवति।·सोघ्न

अनु०—प्रायः होने के अर्थ में सप्तम्यन्त समर्थ पद से अण् और घञ् आदि प्रत्यय होते हैं।

स्रौघ्नः। प्रायः सुघ्न देश में होने वाला अर्थ में 'प्रायभवः सूत्र से अण् प्रत्यय होकर आदि अच की वृद्धि होने पर प्रथमा ए०व० में स्रौघ्नः बनेगा।

सू०१०९०—'संभूते ४।३।४२। स्रुघ्ने संभवति। स्रौघ्नः।

अनु०—उत्पन्न अर्थ में भी सप्तम्यन्त समर्थ पदों से 'अण्' 'घञ्' आदि प्रत्यय होते हैं।

स्रौघ्नः = स्रुघ्न देश में उत्पन्न अर्थ में संभूते' सूत्र से अण् प्रत्यय होकर स्रौघ्नः शब्द बनता है।

सू०१०९१—कोशाड्ढञ् ४।३।४२। कौशेयम्–वस्त्रम्।

अनु०—सप्तम्यन्त समर्थ कोश शब्द से ढञ् प्रत्यय होता है।

कौशेयम्—(रेशमी वस्त्र) कोश शब्द से 'कोशाड्ढञ' सूत्र से 'ढञ्' प्रत्यय होकर 'ढञ्' का एय् होने पर 'अपने चीनी यीयः फढखछघां प्रत्ययादीनाम्।' सूत्र से एय होने पर आदि अच् की वृद्धि तथा अन्त्य अकार का लोप होकर प्रथमा एक वचन में कौशेयम् बनेगा।

सू०१०९२–तत्रभवः ४।३।५३। स्रुघ्ने भवः स्रौघ्नः, औत्सः: राष्ट्रियः।

अनु०—उत्पन्न अर्थ में सप्तम्यन्त समर्थ शब्द से विहित अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

सौघ्नः–(स्रुघ्न देश में उत्पन्न)औत्सः = धारा में होने वाला।

औत्सः—उत्स+अण् प्रवाह में होने वाला। राष्ट्रियः—राष्ट्र+घ=राष्ट्र मे उत्पन्न होने वाला।

मू०१०९३—दिगादिभ्यो यत् ४।३।५४। दिश्यम्। वर्ग्यम्।

अनु०—दिश् आदि सप्तम्यन्त समर्थ पदों से भव अर्थ में यत् प्रत्यय होता है।

दिश्यम्—दिशि भवम् (दिशा में होने वाला) अर्थ में दिगादिभ्योयत्' सूत्र से यत् प्रत्यय होने पर प्रतिपादिक संज्ञा होकर सु विभक्ति आने पर प्रथमा ए०व० में दिश्यम् बना।

वर्ग्यम्—वर्गे भवम्-वर्ग में होने वाला-अर्थ में वर्ग शब्द से 'दिगादिभ्योयत्' सूत्र से यत् प्रत्यय होने पर 'यस्येति च' सूत्र से अन्त्य अकार का लोप होने पर प्रतिपादिक संज्ञा होकर प्रथमा ए०व० में 'वर्ग्यम् बनेगा।

मू०१०९४—शरीरावयवाच्च ४।३।५५। दन्त्यम्। कण्ठ्यम्। (वा०) अध्यात्मादेः 'ठञ् इष्यते। अध्यात्मं भवम्=आध्यात्मिकम्।

अनु०—शरीर के अवयव वाचक सप्तम्यन्त समर्थ शब्द से भी यत् प्रत्यय होता है।

दन्त्यम्—दन्तेषु भवम्=दांतों में होने वाला; अर्थ में सप्तम्यन्त समर्थ दन्त शब्द से 'शरीरावयवाच्च' सूत्र से यत् प्रत्यय होने पर 'यस्येति च' से अन्त्य अ का लोप होकर प्र०ए व० में दन्त्यम् बनेगा।

कण्ठ्यम्—कण्ठे भवम अर्थ में कण्ठ शब्द से यत् प्रत्यय होकर कण्ठ्यम् बनेगा दन्त्यम् के समान।

अध्यात्मादे इत्यादि—अध्यात्म आदि शब्द से ठञ् प्रत्यय होता है।

आध्यात्मिकम्—'अध्यात्मं भवम्' अर्थ में अध्यात्म शब्द से 'अध्यात्मादेः ठञ् इष्यते' वार्तिक से ठञ् प्रत्यय होने पर 'ठस्येकः' सूत्र से 'ठ' का 'इक्' होकर 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से आदि अच्

की वृद्धि हुई और 'यस्येति' सूत्र से अन्त्य अ का लोप होकर प्र०ए०व० में 'आध्यात्मिकम्' बना ।.

मू०--अनुशतिकादीनाञ्च ७।३।२०। एषामुभय पद वृद्धिर्ञितिणिति किति च परे । आधिदैविकम् । आधिभौतिकम् । ऐहलौकिकम् । पारलौकिम् । आकृतिगणोऽयम् ।

अनु०—अनुशतिक आदि समस्त पदों के दोनों पदों की वृद्धि होती है, ञित् णित् और कित् परे रहते ।

आधिदैविकम्—अधिदेवं भवम्–देव में होने वाला–अर्थ में सप्तम्यन्त समर्थ अधिदेव शब्द से 'अध्यात्मादेः ठञ् इष्यते' वार्तिक से ठञ् प्रत्यय होने पर 'ठस्येकः' सूत्र से ठ का इक् आदेश हुआ । 'अनुशतिकादीनाञ्च' सूत्र से ञित् ठञ् प्रत्यय परे रहते उभयपद की वृद्धि हुई तथा 'यस्येति च' सूत्र से अन्त्य अ का लोप होकर प्रथमा ए०व० में 'आध्यात्मिकम्' बना ।

अधिभुते भवम् अर्थ में–अधिभुत + ठञ् = आधिभौतिकम् । इहलोके भवम् = अर्थ में–इहलोक + ठञ् = ऐहलौकिकम् । परलोके भवम् = अर्थ में–परलोक + ठञ् = पारलौकिकम् । इन सभी शब्दों की सिद्धि आधिदैविकम् के ही समान होगी । अनुशतिकादिगण आकृति गण है । अर्थात् जिन पदों के दोनो पदों की वृद्धि हुई हो तथा उनके लिए कोई विशेष नियम नहीं कहा गया हो तो उन्हे अनुशतिकगण में समझना चाहिये ।

मू० जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः ४।३।६२। जिह्वामूलीयम् । अङ्गुलीयम् ।

अनु०—सप्तम्यन्त समर्थ जिहवामूल तथा अंगुलि शब्द से छ प्रत्यय होता है । यह सूत्र 'शरीरावयवाच्च' सूत्र का बाधक सूत्र है ।

जिह्वामूलीयम्—जिह्वामूले भवम्–अर्थ में जिह्वामूल शब्द से 'जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः' । सूत्र से 'छ' प्रत्यय होने पर 'आयने

यीनीयीयः फढ़खछघां प्रत्ययादीनाम्' सूत्र से छ का ईय् हुआ। पुनः अन्त्य अ का लोप होकर प्रथमा ए० व० में 'जिह्वामूलीयम्' यह रूप बना।

अङ्गुलीयम्—अंगुलि शब्द से छ प्रत्यय होकर 'जिह्वामूलीयम्' के समान यह रूप बना है।

सू०—१०९७–वर्गान्ताच्च ४।३।६३। कवर्गीयम्।

अनु०—जिस पद के अन्त में वर्ग शब्द लगा हो उस सप्तम्यन्त समर्थ शब्द से भी छ प्रत्यय होता है।

कवर्गीयम्—कवर्गे भवम् अर्थ में–कवर्ग शब्द से 'वर्गान्ताच्च' सूत्र से छ प्रत्यय होने पर 'आयनेयीनीयीयः फढ़खछघां प्रत्ययादीनाम्' सूत्र से छ का ईय् हुआ। अन्त्य अ का 'यस्येति च' सूत्र से लोप होने पर प्रथमा ए० व० में कवर्गीयम् रूप बना।

सू०—१०९८–तत आगतः ४।३।७४। स्रुघ्नादागतः स्रौघ्नः।

अनु०—आये हुए अर्थ में पञ्चम्यन्त समर्थ शब्द से अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

स्रौघ्नः—स्रुघ्नादागतः अर्थ में पञ्चम्यन्त समर्थ स्रुघ्न शब्द से तत आगतः' सूत्र से अण् प्रत्यय, आदि अच् की वृद्धि तथा अन्त्य अ का लोप होकर प्रथमा ए० व० में यह रूप बनेगा।

सू०—१०९९–'ठगायस्थानेभ्यः' ४।३।७५।शुल्कशालाया आगतः–शौल्कशालिकः।

अनु०—'आया हुआ' अर्थ में पञ्चम्यन्त समर्थ आय-स्थान आदि शब्दों से ठक् प्रत्यय होता है।

शौल्कशालिकः—शुल्कशाला से आये हुए-अर्थ में शुल्कशाला शब्द से 'ठगायस्थानेभ्यः' सूत्र से ठक् प्रत्यय होने पर 'ठस्येकः' से ठ का इक् होने पर 'तद्धितेष्वचामादेः' सूत्र से आदि अच् की

वृद्धि होने पर तथा 'यस्येति च' सूत्र से अन्त्य अ का लोप होने पर प्र० ए० व० में शौल्कशालिकः रूप बनेगा ।

सू०--११--विद्यायोनिसंबन्धेभ्यो वुञ् ४।३।७७। औपाध्यायकः । पैतामहकः ।

अनु०--विद्यासंबन्ध और योनिसम्बन्ध के वाचक पञ्चम्यन्त समर्थ शब्दों से आये हुए अर्थ में वुञ् प्रत्यय होता है ।

औपाध्यायकः--उपाध्यायादागतः के अर्थ में विद्यासंबन्ध के वाचक पञ्चम्यन्त समर्थ उपाध्याय शब्द से 'विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ्' सूत्र से वुञ् प्रत्यय होने पर आदि अच् की वृद्धि तथा 'युवोरनाकौ' से वु को अक आदेश हुआ । अन्त्य अ का लोप होकर प्र० ए० व० में औपाध्यायकः शब्द बना ।

पैतामहकः--पितामहादागतः इस अर्थ में योनि सम्बन्ध के वाचक पञ्चम्यन्त समर्थ पितामह शब्द से 'विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो-वुञ्' सूत्र से वुञ् प्रत्यय होने पर वु का 'युवोरनाकौ से अक तथा आदि अच् की वृद्धि एवं अन्त्य अ का लोप होकर प्र० ए० व० में पैतामहकः रूप बनेगा ।

सू०--११०१--हेतुमनुष्येभ्योन्यतरस्यां रूप्यः ४।३।८१ समादागतम् समरूप्यम् । पक्षेगहादित्वात्छः--समीयम् । विषमीयम् । देवदत्तरूप्यम् । दैवदत्तम् ।

अनु०--आगत अर्थ में हेतु एवं मनुष्य के वाचक पञ्चम्यन्त समर्थ शब्द से रूप्य प्रत्यय होता है ।

समरुप्यम्--समीयम् । समसे आये हुए-अर्थ में सम शब्द से 'हेतु मनुष्येभ्यान्यतरस्याम् रूप्यः' सूत्र से रूप्य प्रत्यय होकर समरूप्य शब्द बना । प्र० ए० व० में समरुप्यम् बना । जहां पर रूप्य प्रत्यय नहीं हुआ वहां पर सम शब्द का गहादिगण में पाठ होने से 'गहादिभ्य-छः' सूत्र से छ प्रत्यय हुआ और 'आयने'

इत्यादि सूत्र से छ का ईय् होकर प्रथमा ए० व० में समीयम् बना।

विषम + छ = विषमीयम्। देवदत्त + रुप्य = देवदत्तरूप्यम्। देवदत्त + अण् = दैवदत्तम्।

मू०—११०२–मयट् च ४।३।८२। सममयम्। देवदत्तमयम्।

अनु०—आगत अर्थ में पञ्चम्यन्त समर्थ हेतु वाचक तथा मनुष्यवाचक शब्दों से मयट् प्रत्यय होता है।

सममयम् = समादागतः अर्थ में सम शब्द से 'मयट् च' सूत्र से मयट् प्रत्यय होकर प्र० ए० व० में सममयम् रूप बनेगा। देवदत्त + मयट् = देवदत्तमयम्।

मूल—११०३–प्रभवति ४।३।८३। हिमवतः प्रभवति हैमवती गंगा।

अनु०—उत्पन्न होने के अर्थ में पञ्चम्यन्त समर्थ शब्द से यथाविहित अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

हैमवती—जो हिमालय से निकलती है वह गंगा–अर्थ में समर्थ पञ्चम्यन्त हिमवत् शब्द से 'प्रभवति' सूत्र से अण् प्रत्यय हुआ। पुनः आदि अच् की वृद्धि होकर हैमवत् अ बना। स्त्रीत्व की विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्' इत्यादि सूत्र से ङीप् होकर प्रथमा ए० व० में हैमवती रूप बना।

मू०—११०४–तद्गच्छति पथिदूतयोः ४।३।८५। स्रुघ्नं गच्छति–स्रौघ्नः, पन्था दूतो वा।

अनु०—'उक्त स्थान को जाने वाले' अर्थ में द्वितीयान्त समर्थ मार्ग अथवा दूत के वाचक शब्द से यथाविहित अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

स्रौघ्नः—(स्रुघ्न देश को जाने वाला रास्ता अथवा दूत) अर्थ में स्रुघ्न शब्द से 'तद्गच्छतिपथिदूतयोः' सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर आदि अच् की वृद्धि तथा अन्त्य अ का लोप होकर

प्र० ए० व० में स्रौघ्नः रूप बनेगा।

मू०--११०५-अभिनिष्क्रामतिद्वारम् ४।३।८६। स्रुघ्नमभि निष्क्रामति-स्रौघ्नं कान्यकुब्ज द्वारम्।

अनु०--उस ओर जाता है के अर्थ में द्वितीयान्त समर्थ द्वार शब्द से अण् प्रत्यय होता है।

स्रौघ्नम्—(स्रुघ्नमभिनिष्क्रामति कान्यकुब्ज द्वारम्) स्रुघ्न देश की ओर जाने वाला कन्नौज का दरवाजा के अर्थ में स्रुघ्न शब्द से 'अभिनिष्क्रामति द्वारम्' सूत्र से अण् प्रत्यय होकर आदि अच की वृद्धि तथा अन्त्य अका लोप होने पर प्र० ए० व० में स्रौघ्नम् पद बनेगा।

मू०--११०६-अधिकृत्यकृते ग्रन्थे ४।३।८७। शारीरकमधिकृत्यकृतो ग्रन्थः शारीरकीयः।

अनु०—विषय वाचक द्वितीयान्त समर्थ पद से तद्विषय विषयक ग्रन्थ के अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते है।

शारीरकीयः--(शारीरक शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ) के अर्थ में शारीरक शब्द से 'अधिकृत्यकृते ग्रन्थे' सूत्र से 'छ' प्रत्यय होने पर छ का 'आयने' इत्यादि सूत्र से ईय् आदेश हुआ। पुनः अन्त्य अ का लोप होकर शारीरकीयः बना।

मू०--११०७-सोऽस्यनिवासः ४।३।८९। स्रुघ्नो निवासोऽस्य स्रौघ्नः।

अनु०--स्थान वाचक प्रथमान्त पद से 'यह उसका निवास है' इस अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

स्रौघ्नः--स्रुघ्न देश इसका निवास स्थान है--इस अर्थ में स्रुघ्न शब्द से अण् प्रत्यय आदि वृद्धि तथा अन्त्य अ का लोप होकर प्र० ए० व० में स्रौघ्नः बनेगा।

मू०--११०८-तेन प्रोक्तम् ४।३।१०१। पाणिनिना प्रोक्तम् पाणिनीयम्।

अनु०--तृतीयान्त समर्थ पद से प्रोक्त अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

पाणिनीयम्--पाणिनि द्वारा प्रोक्त-अर्थ में पाणिनि शब्द के वृद्धसंज्ञक होने के कारण 'वृद्धाच्छ:' सूत्र से छ प्रत्यय होकर 'आयनेयीनीयीय:' सूत्र से छ का ईय् हुआ और प्र०ए०व० में 'पाणिनीयम्' यह रूप बना ;

मू०११८९ तस्येदम् ४।३।१२०। उपगोरिदम् औपगवम्।

अनु०--षष्ठ्यन्त समर्थ पद से 'यह उसका है' के अर्थ में अण् आदि प्रत्यय होते हैं।

औपगवम्--यह उपगु का है इस अर्थ में उपगु शब्द से 'तस्येदम्' सूत्र से अण् प्रत्यय होने पर आदि अच् को वृद्धि तथा अन्त्य अ का लोप होने पर प्र०ए०व० में औपगवम् रूप बनेगा।

इस तरह शैषिक प्रकरण की हिन्दी व्याख्या पूर्ण हुई।

अथ तद्धितेषु मत्वर्थीयाः

मू०११८४-तदस्यास्मिन्निति मतुप् ५।२।९४। गावोऽस्य सन्तिगोमान्।

अनु०--'वह उसका है' तथा 'वह इसमें है' इन विग्रहों में अस्ति समानाधिकरण से 'षष्ठी तथा सप्तमी के अर्थ में मतुप् प्रत्यय होता है।

विमर्श--सूत्र में 'अस्य' तथा 'अस्मिन्' पदों के द्वारा विषय विशेष का निर्देश किया गया है। उन्हीं अर्थों में मतुबादि होते हैं। मतुबादि प्रत्यय निम्न अर्थों में होते हैं।

भूमनिन्दा प्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने।।
संसर्गेऽस्ति विवक्षायाम् भवन्ति मतुबादय:।

अर्थात्--भूमा = वैपुल्य, निन्दा, प्रशंसा, नित्ययोग = नित्य संबन्ध, अतिशायन = अतिशय। संसर्ग = सबन्ध इन विषय विशेषों के अर्थ में मतुबादि प्रत्यय होते हैं।

गोमान्--(जिसकी बहुत गाये हों) के अर्थ में गावोऽस्य सन्ति-इस विग्रह से अस्ति के समानाधिकरण गो शब्द से 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' सूत्र से मतुप् प्रत्यय होकर अनुबन्ध लोप हुआ तो गोमत् बना। प्रथमा ए०व० में गोमान् रूप बना।

सू०११८५-तसौमत्वर्थे १।४।१९। तान्तसान्तौ च भ संज्ञौस्तः मत्वर्थे प्रत्यये परे। गरुत्मान्। वसोः सम्प्रसारणम्-विदुष्मान्। (वा०) गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्टः। शुक्लोगुणो ऽस्यास्तीति शुक्लः घटः। कृष्णः।

अनु०-तान्त सान्त शब्दों की भसंज्ञा होती है। मत्वर्थ प्रत्यय परे रहते।

गरुत्मान्-गरुतोऽस्य सन्ति-जिसके पंख हों के अर्थ में अस्ति समानाधिकरण प्रथमान्त गरुत शब्द से अस्य अर्थ में 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' सूत्र से मतुप् प्रत्यय होकर गरुत्मत् हुआ। 'तसौमत्वर्थे' सूत्र से भ संज्ञा हुई फलता गरुत् की पद संज्ञा तथा त को जश् नहीं हुआ। पुनः प्रातिपदिक संज्ञा होकर प्र०ए०व० में गरुत्मान् बना।

विदुष्मान्--(विद्वांसोऽस्य सन्ति = जिसके विद्वान् हों) के अर्थ में अस्तिसमानाधिकरण विद्वस् शब्द से 'अस्य' के अर्थ में 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' सूत्र से मतुप् प्रत्यय होने पर सकारान्त विद्वस् शब्द को 'तसौ मत्वर्थे' सूत्र से भसंज्ञा हुई 'वसोः सम्प्रसारणम्' से विद्वस् के व का उ सम्प्रसारण तथा 'सम्प्रसारणाच्च' से पूर्व रूप होकर विदुस्मत् बना स् का ष् होकर प्र०ए० व० में विदुष्मान् बना।

(वा०) गुण वचनेभ्य इत्यादि-गुणवाचकशब्दों से परे मतुप् का लुक् हो जाता है।

शुक्लः--(शुक्लोगुणोऽस्य = शुक्ल गुणवाला) के अर्थ में अस्ति समानाधिकरण शुक्ल शब्द से अस्य के अर्थ में 'तदस्यास्त्यस्मिन्नितिमतुप्' से मतुप् प्रत्यय होने पर मतुप् का 'गुणवचनेभ्यो मतुपोलुगिष्टः' वार्तिक से लुक् होकर प्र०ए०व० में शुक्लः बना।

कृष्णः--कृष्णः गुणोऽस्यास्तीति के अर्थ में मतुप् प्रत्यय तथा मतुप् का लुक् होकर कृष्णः प्र०ए०व० में बनेगा ।

मू०११८६--प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम् ५।२।९६ चूडाल-चूडावान् । प्राणिस्थात् किम् ? शिखावान् दीपः । (वा०) प्राण्यङ्गादेव । नेह मेधावान् ।

अनु०--प्रथमान्त प्राणिस्थ अङ्गवाचक आकारान्त शब्दों से मत्वर्थ में वैकल्पिक लच् प्रत्यय होता है ।

चूडालः--चूडावान्-(चूडास्यास्ति-जिसकी चूडा (कलंगी) हो) के अर्थ में अस्ति समानाधिकरण चूडा शब्द से 'प्राणिस्थादातो लजन्यतरस्याम्' सूत्र से लच् प्रत्यय होकर प्र०ए०व० में चूडालः बना । जहां लच् नहीं हुआ वहां पर 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' सूत्र से मतुप् होकर चूडमत् बना । 'मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः' सूत्र से म का व होकर प्र०ए०व० में चूडावान् बना ।

प्राणिस्थात्--किम्-इत्यादि-प्रश्न उठता है कि सूत्र में प्राणिस्थ पद का ग्रहण क्यों किया गया ? तो इसका उत्तर है कि प्राणियों के अंग से भिन्न अर्थ के वाचक शब्दों से मतुवर्थ लच् प्रत्यय नहीं होता है । प्राणियों का अंग नहीं होने से ही दीप के अर्थ में शिखावान् ही होगा । लच् प्रत्ययान्त रूप नहीं ।

प्राण्यंगादेव-प्राणियों के अङ्ग वाचक शब्द से ही मत्वर्थीय लच् प्रत्यय होता है अत मेधावान् में केवल मतुप् ही होगा लच् नहीं, क्योंकि मेधा प्राणी का अंग नहीं, गुण है ।

मू०११८७--लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः ५।२।१००। लोमादिभ्यः शः लोमशः-लोमवान् । रोमशः-रोमवान् । पामादिभ्योनः-पामनः ।

अनु०--लोमादि से श, पामन आदि से न तथा पिच्छआदि से इलच् प्रत्यय होते हैं ; विकल्प से ।

लोमशः लोमवान्-लोमानि सन्ति अस्य इस अर्थ में अस्ति

समानाधिकरण लोम शब्द से 'लोमादि पामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः' सूत्र से श प्रत्यय होने पर लोमशः बनेगा। श के अभाव पक्ष में 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' से मतुप् तथा 'मादुपधाया मतोर्वोऽयवादिभ्यः' से म का व होकर प्र०ए०व० में लोमवान् बनेगा।

रोमशः--रोमवान्-भी लोमशः लोमवान् के ही समान बनेंगे।

पामनः--(पामाऽस्यास्ति = खुजलीवाला) अर्थ में पामा शब्द से 'लोमादि पामादि पिच्छादिभ्यः शनेलचः' सूत्र से न प्रत्यय होकर प्रथमा ए०व० में पामनः बना।

मू०--(ग०सू०)अंगात् कल्याणे-अंगना।

अनु०-कल्याण = सुन्दर अर्थ में अंगशब्द से न प्रत्यय होता है।

अंगना-(कल्याणानि = सुन्दराणि अंगानि यस्याः सा = सुन्दरी) इस अर्थ में अंग शब्द से 'अंगात् कल्याणे' सूत्र से न प्रत्यय होकर स्त्रीत्व की विवक्षा में टाप् होकर प्र०ए०व० में अंगना बनेगा।

मू०--(ग०सू०) लक्ष्म्या अत् च-लक्ष्मणः।

अनु०--प्रथमान्त लक्ष्मी शब्द से मत्वर्थ न प्रत्यय तथा अकारान्तादेश होता।

लक्ष्मणः-'लक्ष्मीरस्यास्ति' के अर्थ में लक्ष्मी शब्द से 'लक्ष्म्या अत् च' सूत्र से न तथा अकारान्तादेश हुआ। णत्व होकर प्रथमा ए०व० में लक्ष्मणः बना।

मू०--पिच्छादिभ्य इलच्-पिच्छलः-पिच्छवान्।

अनु०--पिच्छादि से इलच् प्रत्यय होता है।

पिच्छिलः—पिच्छवान्-पिच्छमस्यास्तीति-के अर्थ में पिच्छ शब्द से 'लोमादि पामादि पिच्छादिभ्यः शनेलचः' सूत्र से इलच् प्रत्यय होकर तथा अन्त्य अ का लोप होकर पिच्छिलः प्र०ए०व० में बना। इलच् के अभाव पक्ष में मतुप होकर पिच्छवान् बना।

मू०--११८८-दन्तोन्नत उरच् ५।२।१०६। उन्नता दन्ताः सन्ति अस्य दन्तुरः ।

अनु०—प्रथमान्त दन्त शब्द से उरच् प्रत्यय होते हैं यदि दाँत ऊँचे हों तो ।

दन्तुरः—ऊँचे हों दाँत जिसके-इस अर्थ में दन्त शब्द से 'दन्तोन्नत उरच्' सूत्र से उरच् प्रत्यय होने पर अन्तिम अ का लोप होकर प्रथमा ए०व० में दन्तुरः बना ।

मू०--११८९-केशाद्वोऽन्यतरस्याम् ५।२।१०९ केशवः, केशी, केशिकः केशवान् । वा०-अन्येभ्योऽपि दृश्यते । मणिवः । वा०-अर्णसो लोपश्च। अर्णवः ।

अनु०—प्रथमान्त केश शब्द से विकल्प से व प्रत्यय होते हैं । केशवः, केशी, केशिकः, केशवान्--(केशाः सन्ति अस्य) के अर्थ में प्रथमान्त केश शब्द से 'केशाद्वोऽन्यतरस्याम्' सूत्र से व प्रत्यय होकर प्र० ए० व० में केशवः बना । व के अभाव पक्ष में अदन्त केश शब्द से 'अत इनिठनौ' सूत्र से इनि प्रत्यय होने पर अन्तिम अ का लोप होकर प्रथमा ए० व० में केशी बना । जहां ठन् प्रत्यय हुआ वहां पर 'ठस्येकः' सूत्र से ठ का इक् होकर प्र० ए० व० में केशिकः बना । और जहां ये कोई प्रत्यय नहीं हुए वहां पर सामान्य मतुप् प्रत्यय होकर केशवान् बना प्र० ए० व० में ।

अन्येभ्यो० इत्यादि--केश शब्द से भिन्न शब्दों से भी मत्वर्थीय व प्रत्यय देखा जाता है ।

मणिवः—मणिरस्यास्ति-के अर्थ में मणि शब्द से 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते' वार्तिक से व प्रत्यय होकर प्र० ए० व० में मणिवः बना ।

अर्णसो० इत्यादि—अर्णस् शब्द से व प्रत्यय तथा स का

लोप भी होता है।

अर्णवः—(अर्णांसि = जलानि सन्ति अस्य) के अर्थ में अर्णस् शब्द से 'अर्णसो लोपश्च' सूत्र से व प्रत्यय तथा स् का लोप होकर प्र० ए० व० में अर्णवः बना।

मू०—११९०–अत इनिठनौ ५।२।११५। दण्डी, दण्डिकः।

अनु०—प्रथमान्त अदन्त शब्दों से इनि और ठन् प्रत्यय होते हैं।

दण्डी, दण्डिकः—दण्डोऽस्यास्ति–के अर्थ में 'अत इनिठनौ' सूत्र से इन् प्रत्यय होने पर अन्त्य अ का लोप होकर प्र० ए० व० में दण्डी बना। जहां पर ठन् प्रत्यय हुआ वहां पर 'ठस्येकः' से ठ का इक् होकर प्र० ए० व० दण्डिकः बना।

मू०—११९१–व्रीह्यादिभ्यश्च ५।२।११६। व्रीही, व्रीहिकः।

अनु०—प्रथमान्त व्रीहि आदि शब्दों से भी इनि और ठन् मत्वर्थीय प्रत्यय होते हैं।

व्रीही व्रीहिकः—व्रीहयोऽस्य सन्ति–के अर्थ में प्रथमान्त व्रीहि शब्द से 'व्रीह्यादिभ्यश्च' सूत्र से इनि प्रत्यय होने पर अन्तिम इ का लोप होकर प्रथमा ए० व० में व्रीही बना। जह ठन् प्रत्यय हुआ वहाँ ठ का इक् होकर प्र० ए० व० में व्रीहिकः बना।

मू०—११९२–अस्मायामेधास्रजोविनिः ५।२।१२१। यशस्वी, यशस्वान्। मायावी। मेधावी। स्रग्वी।

अनु०—प्रथमान्त असन्त तथा माया, मेधा एवं स्रक् शब्दों से मत्वर्थीय विनि प्रत्यय होता है।

यशस्वी-यशस्वान्—यशोऽस्यास्ति के अर्थ में प्रथमान्त असन्त यशस् शब्द से विनि प्रत्यय होने पर प्र० ए० व० में यशस्वी बना। जहां विनि प्रत्यय नहीं हुआ वहाँ सामान्य मतुप् प्रत्यय होकर यशस्वान् बना।

मायावी = माया + विनि । मेधावी = मेधा + विनि । स्रग्वी = स्रक् + विनि ।

मू०--११९३-वाचो ग्मिनिः ५।२।१२४: वाग्मी ।

अनु०--प्रथमान्त वाक् शब्द से मत्वर्थीय ग्मिनि प्रत्यय होता है ।

वाग्मी--(वाचस्सन्ति अस्य) के अर्थ में प्रथमान्त वाच् शब्द से 'वाचो ग्मिनिः' सूत्र से ग्मिनि प्रत्यय होकर वाच् के च् को कुत्व एवं जश् होकर प्र० ए० व० में वाग्मी शब्द बना ।

मू०--११९४-अर्शआदिभ्योऽच् ५।२।१२७। अर्शोऽस्यविद्यते इति अर्शसः । आकृति गणोऽयम् ।

अनु--प्रथमान्त अर्शस् आदि शब्द से मत्वर्थीय अच् प्रत्यय होता है । अर्शस् आदि आकृति गण है । अर्थात् जिन् शब्दों से मत्वर्थ की प्रतीति हो और यदि उससे मत्वर्थीय प्रत्यय करने वाला कोई सूत्र नहीं मिल रहा हो तो उसे अर्शादि मानकर उससे अच् प्रत्यय करके सिद्ध कर लेना चाहिये ।

अर्शसः--(जिसको बवासीर हुआ हो) के अर्थ में प्रथमान्त अर्शस् शब्द से 'अर्शादिभ्योऽच्' सूत्र से अच् प्रत्यय तथा अनुबन्ध लोप करके प्र०ए०व० में अर्शसः बना ।

मू०--अहंशुभमोर्युस् ५।२।१४०। अहंयुः-अहंकारवान् । शुभंयुः = शुभान्वितः ।

इति मत्वर्थीयाः

अनु०--अहम् और शुभम् इन मकारान्त अव्ययों से युस् प्रत्यय होता है ।

अहंयुः, शुभंयुः अहंकार वना और कल्याणवान् के अर्थ में मान्त अहम् और शुभम् अव्ययों से 'अहंशुभमोर्युस्' सूत्र से युस् प्रत्यय होने पर प्रथमा ए०व० में अहंयुः और शुभयुः ये दो रूप बनेगे ।

इस तरह मत्वर्थीय प्रकरण की हिन्दी व्याख्या पूरी हुई ।

अथ स्त्रीप्रत्यय प्रकरणम्

मू०--स्त्रियाम् ४।१।३। अधिकारोऽयम् 'समर्थानाम्' इतियावत् । अजाद्यतष्टाप् ४।१।४। अजादीनामकारान्तस्य च वाच्यं यत् स्त्रीत्वम् तत्र द्योत्ये टाप् स्यात् । अजा, एडका, अश्वा, चटका, मूषिका, बाला, वत्सा होडा, मन्दा, विलाता-इत्यादिः- अजादि गणः । सर्वा ।

अनु०--'स्त्रियाम्' यह अधिकार सूत्र है। इस सूत्र का 'समर्थानाम् प्रथमाद् वा' सूत्र पर्यन्त अधिकार जाता है । अजाद्यत० इत्यादि--अज आदि तथा अकारान्त प्रातिपादिकों से उनके स्त्रीत्व द्योतन के लिए टाप् प्रत्यय होता है । (टाप् मे ट् प् की इत्संज्ञा होकर केवल आ बचता है ।)

अजा =(बकरी) अज शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप् प्रत्यय होकर अजा बना । पुनः अजा शब्द की प्रातिपदिक संज्ञा होकर 'ङ्याप् प्रातिपादिकात्' सूत्र से सुविभक्ति आयी पुनः 'हल्ङ्याभ्यो दीर्घात् सुतिस्य पृक्तं हल्' सूत्र से सु का लोप होकर प्र०ए०व० में अजा रूप बना ।

एडक + टाप = एडका = भेड़ी । अश्व + टाप् = अश्वा (घोड़ी) चटक + टाप् = चटका = एक प्रकार की चिड़िया । मूषिक + टाप् = मूषिका = चूहिया । बाल + टाप् = बाला । (लड़की) वत्स + टाप् = वत्सा (बछिया) होड + टाप् = होडा । मन्द + टाप् = मन्दा । बिलात टाप् = विलाता । ये सभी अजादि गण के शब्द है। सर्व + टाप् = सर्वा । इन सभी रूपों की सिद्धि आजा की भांति होगी ।

मू०--उगितश्च ४।१।६। उगिदन्तात् प्रातिपदिकात् स्त्रियां ङीप् स्यात् । भवन्ती । पचन्ती । दीव्यन्ती ।

अनु०--जिस प्रातिपदिक के अन्त में उगित प्रत्यय हो उससे

स्त्रीत्व के बोधन के लिए ङीप् प्रत्यय होता है।

भवन्ती—(होती हुई) शतृ प्रत्ययान्त भवत् शब्द के उगित् होने के कारण उगितश्च से ङीप् हो गया पुनः 'शपश्यनोर्नित्यम्' सूत्र से नित्य नुम होकर प्रथमा ए०व० में हलङ्याभ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तं हल्' से सु का लोप होकर 'भवन्ती' बनेगा।

पचत् + ङीप् + नुम् = पचन्ती। दीव्यत् + ङीप् + नुम् = दीव्यन्ती।

मू०—टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः ४।१।१५। अनुपसर्जनं यत् टिदादितदन्तं यददन्तं प्रातिपदिकम् ततः स्त्रियांङीप् स्यात्। कुरुचरी। नदट्-नदी। देवट्-देवी। सौपर्णेयी। ऐन्द्री। औत्सी। ऊरुद्वयसी। ऊरुदघ्नी। ऊरुमात्री। पञ्चतयी। आक्षिकी। प्रास्थिकी। लावणिकी। यादृशी। इत्वरी।

अनु०—उपसर्जन भिन्न (मुख्य) आकारान्त टिदन्त और ढ, अण्, अञ्, द्वयसच्, दघ्नञ्, मात्रच्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ्, एवं क्वरप् प्रत्ययान्त जो अदन्त प्रातिपदिक उससे स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है।

कुरुचरी—(कुरुषु चरित या सा = कुरुप्रदेश में घूमने वाली) के अर्थ में कुरु पूर्वक चर् धातु से 'चरेष्टः' से ट प्रत्यय होकर बने कुरुचर शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में 'टिड्ढाणञ्०' इत्यादि सूत्र से ङीप् होकर तथा अन्त्य अका लोप होकर प्र० ए० व० में कुरुचरी बना।

नदी—टित् नदट् शब्द से 'टिड्ढाणञ्०' इत्यादि सूत्र से ङीप होकर प्र० ए० व० में नदी बनेगा।

देवी—देवट् + ङीप् = देवी।

सौपर्णेयी—(सुपर्णी की कन्या-गरूड़ की बहन के अर्थ में-) ढक् प्रत्ययान्त सौपर्णेय शब्द से ङीप् होकर तथा अन्त्य

अका लोप होकर प्र० ए० व० में सौपर्णेयी बनेगा।

ऐन्द्री--(इन्द्रो देवता यस्याः सा = जिसकी देवता इन्द्र हों) अर्थ में अण् प्रत्ययान्त ऐन्द्र शब्द से 'टिढाणञ्' इत्यादि सूत्र से ङीप् होकर तथा अन्त्य अ का लोप होकर ऐन्द्री बनेगा। प्रथमा ए० व० में।

औत्सी--(उत्सस्येयम्-झरने वाली के अर्थ में अञ् प्रत्ययान्त औत्स शब्द से 'टिढाणञ्०' इत्यादि से ङीप् होकर तथा अन्त्य अका लोप होकर प्र० ए० व० में औत्सी बनेगा।

ऊरुद्वयसी, ऊरुदघ्नी और ऊरुमात्री = (कमर पर्यन्त प्रमाण वाली) अर्थ में प्रमाणार्थक द्वयसच्, दघ्नञ् एवं मात्रच् प्रत्ययान्त क्रमशः ऊरुद्वयस्, ऊरुदघ्न, तथा ऊरुमात्र शब्द से 'टिढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्' इत्यादि सूत्र से ङीप् प्रत्यय होकर तथा अन्त्य अ का लोप होकर ऊरुद्वयसी, ऊरुदघ्नी और ऊरुमात्री बनेंगे।

पञ्चतयी---(पाँच अवयवों वाली) अवयवार्थक तयप् प्रत्ययान्त पञ्चतय शब्द से 'टिढाणञ्' इत्यादि से ङीप् प्रत्यय होकर तथा अन्त्य अ का लोप होकर पञ्चतयी होगा प्र० ए० व० में।

आक्षिकी = (अक्षैर्दीव्यति = पाशों से खेलने वाली) अर्थ में क्रीडनार्थक ठक् प्रत्ययान्त आक्षिक शब्द से 'टिढाणञ्०' इत्यादि से ङीप् प्रत्यय होकर तथा अन्त्य अ का लोप होकर प्र० ए० व० में आक्षिकी बनेगा।

प्रास्थिकी--(प्रस्थेन क्रीता) अर्थ में क्रीतार्थक ठञ् प्रत्ययान्त प्रास्थिक शब्द से 'टिढाणञ्०' इत्यादि सूत्र से ङीप् होकर तथा अन्त्य अ का लोप होकर प्र० ए० व० में प्रास्थिकी बनेगा।

लावणिकी—(लवणं पण्य यस्याः सा = नमक बेंचने वाली) विक्रेतार्थक ठञ् प्रत्ययान्त लावणिक शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में 'टिड्ढाणञ् य...च्, इत्यादि से ङीप् होकर तथा अन्त्य अ का लोप होकर लावणिकी बनेगा ।

यादृशी-(जैसी) कञ् प्रत्ययान्त यादृश शब्द से 'टिड्ढाणञ्०' इत्यादि से ङीप् होकर तथा अन्त्य अ का लोप होकर प्र०ए०व० में यादृशी बनेगा ।

इत्वरी—(व्यभिचारिणी) अर्थ में क्वरप् प्रत्ययान्त इत्वर शब्द से 'टिड्ढाणञ्०' इत्यादि सूत्र से ङीप् प्रत्यय होकर तथा अन्त्य अ का लोप होकर प्र०ए० में इत्वरी बनेगा ।

मू०—(वा०) नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम् । स्त्रैणी, पौंस्नी, । शाक्तीकी । आढ्यंकरणी । तरुणी । तलुनी ।

अनु०—नञ् स्नञ्, ईकक् तथा ख्युन प्रत्यय जिनसे हों उन शब्दों से तथा तरुण एवं तलुन शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है ।

स्त्रैणी-पौंस्नी (स्त्री संबन्धी तथा पुरुष संबन्धी)अर्थ में नञ् तथा स्नञ् प्रत्यय न्त स्त्रैण एवं पौंस्न शब्द से 'नञ्स्नञीकक्ख्युंस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानम्' वार्तिक से ङीप् प्रत्यय होकर तथा अन्त्य अ का लोप होकर स्त्रैणी एवं पौंस्नी शब्द बनेंगे प्र०ए०व० में।

शाक्तीकी-(शक्तिः प्रहरणं यस्याः = शक्ति आयुध है जिसकी) (नञ्स्नञीकक्ख्युंस्त०) इत्यादि से अर्थ में ईकक् प्रत्ययान्त शाक्तीक शब्द से ङीप् प्रत्यय होकर अन्त्य अ का लोप होकर प्रथमा ए०व० में शाक्तीकी रूप बनेगा ।

आढ्यंकरणी—(निर्धन को भी धनी बनाने वाली) अर्थ में ख्युन् प्रत्यान्त आढ्यंकरण शब्द से 'नञ्स्नञीकक्ख्युं०' इत्यादि वार्तिक से ङीप् होकर तथा अन्त्य अ का लोप होकर प्र०ए०व०

में अध्यंकरणी बनेगा।

तरुणी-तलुनी--(युवती) तरुण एवं तलुन शब्द से 'नञ् स्नञीकक्ख्युस्तरुणतलुनानामुपसंख्यानाम्' वार्तिक से ङीप् होकर तथा अन्त्य अ का लोप होकर तरुणी और तलुनी बनेंगे।

मू०--यञश्च ४।१।१६। यञन्तात्स्त्रियां ङीप् स्यात्। अकार लोपे कृते--'हलस्तद्धितस्य' ६।४।१५०। हलः परस्य तद्धित यकारस्योपधाभूतस्य लोप ईकारे परे। गार्गी।

अनु०--यञ् प्रत्ययान्त शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय होता है। यस्येति च सूत्र से अकार का लोप करने पर। हलस्तद्धि० इत्यादि-ईकार परे रहते हल से परे तद्धित के उपधाभूत यकार का लोप होता है।

गार्गी--(गर्ग गोत्र की स्त्री) के अर्थ में गर्ग शब्द से 'गर्गादिभ्यो यञ्' सूत्र से यञ् प्रत्यय तथा 'यस्येति च' से अन्त्य अ का लोप होने पर आदि अच् की वृद्धि होकर 'गार्ग्य' बना। फिर 'यञश्च' सूत्र से ङीप् होने पर 'हलस्तद्धिते सूत्र से य का लोप होकर प्र०ए०व० में गार्गी बना।

मू०--प्राचां ष्फ तद्धिते ४।१।१७। यञन्तात् ष्फो वा स्यात्, सच तद्धितः। षिद्गौरादिभ्यश्च। ४।१।४१। षिद्भ्यो गौरादिभ्यश्च ङीष् स्यात्। गार्ग्यायणी। नर्तकी। गौरी।

अनु०--यञ् प्रत्ययान्त शब्द से स्त्रीलिङ्ग में तद्धित संज्ञक प्रत्यय होता है। (ष्फ के ष् की इत्संज्ञा होकर केवल फ मात्र बचता है। फ का आयाने० इत्यादि सूत्र से आयन होता है।)

षिद्गौरा० इत्यादि--षित् और गौरादि से ङीष् होता है। (ङीष् का ई मात्र ही बचता है शेष भाग का लोप हो जाता है।)

गार्ग्यायणी--(गर्ग की पुत्री) यञ् प्रत्ययान्त गार्ग्य शब्द से 'प्राचां ष्फ तद्धिते' सूत्र से ष्फ प्रत्यय तथा फ का 'आयने यीनी०) इत्यादि सूत्र से आयन आदेश होकर 'षिद्गौरादिभ्यश्च' सूत्र से

ङीष् होकर तथा णत्व होकर प्रथमा ए० व० में गार्ग्यायणी बना।

नर्तकी--(नाचने वाली स्त्री) नर्तकी शब्द से 'षिद्गौरादिभ्यश्च' सूत्र से ङीष् प्रत्यय होकर प्रथमा ए० व० में नर्तकी बना।

गौरी--गौरादि गौर शब्द से ङीष् होकर गौरी बना है।

मू०--(वा०) आमनडुहः स्त्रियाँ वा। अनड्वाही अनडुही। आकृतिगणोऽयम्।

अनु०--स्त्रीलिङ्ग में अनडुह् शब्द से आम् वैकल्पिक होता है।

अनड्वाही-अनडुही--गौरादि अनडुह् शब्द से 'षिद् गौरादिभ्यश्च' सूत्र से ङीप् होने पर अनडुही बना। पुनः 'आमनडुहः स्त्रियां वा' से आम् होने पर 'अनडु आही' हुआ। यण् होकर अनड्वाही हुआ। जहां आम् नहीं हुआ वहां अनडुही ही रह गया। गौरादिगण आकृति गण है।

मू०--वयसि प्रथमे ४।१।२०। प्रथम वयो वाचिनोऽदन्तात् स्त्रियां ङीप् स्यात्। कुमारी।

अनु०--प्रथम अवस्था के वाचक अदन्त शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ङीष् होता है।

कुमारी--कुमार शब्द से 'वयसि प्रथमे' सूत्र से ङीष् होकर प्र० ए० व० में ङीष् होता है।

मू०--द्विगोः ४।१।२१। अदन्ताद् द्विगोः ङीप् स्यात्। त्रिलोकी अजादित्वात् त्रिफला।

अनु०--अदन्त द्विगु से ङीष् होता है।

त्रिलोकी--त्रयाणां लोकानां समाहारः के अर्थ में त्रिलोक शब्द से 'द्विगोः' सूत्र से ङीप् होकर प्र० ए० व० में त्रिलोकी

बना।

त्रिफला--में टाप् इसलिए हुआ है कि वह अजादि गण में आता है।

त्र्यनीका--(त्रयाणामनीकानां समाहारः) के अर्थ में सेना वाचक त्र्यनीका शब्द से भी टाप् ही होगा क्योंकि उसका अजादि-गण में पाठ है।

मू०--वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः ४।१।३९। वर्णवाची योऽनुदात्तान्त-स्तोपधः तदन्तादनुपसर्जनात् प्रातिपदिकाद् वा ङीष् तकारस्य नकारा-देशश्च। एनी-एता। रोहिणी-रोहिता।

अनु०--वर्णवाचक तकारोपध अनुदात्तान्त शब्द के अन्त में आने वाले प्रातिपदिक से विकल्प से ङीष् प्रत्यय तथा त का नकारादेश होता है।

एनी--एता (चितकबरी) यहां चितकबरे वर्ण के वाचक एत शब्द से 'वर्णादनुदात्तात्तोपधात्तो नः' सूत्र से ङीष् प्रत्यय तथा त का न होकर एवं अन्त्य अका लोप होकर प्र० ए० व० में एनी बना। जहां ङीष् और नकार नही हुआ वहां टाप् होकर एता बना।

रोहिणी-रोहिता--(लाल रंग वाली) रोहित शब्द से 'वर्णा-दनुदात्तात्तोपधात्तो नः' सूत्र से ङीष् तथा त का न होकर णत्व होने पर रोहिणी बनता है। जहां पर ङीष् आदि नहीं हुआ वहां पर टाप् होकर रोहिता बना।

मू०--वोतो गुणवचनात् ४।१।४४। उदन्ताद्गुणवाचिनो वा ङीष् स्यात्। मृद्वी--मृदुः।

अनु०--गुणवाचक उदन्त शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा में विकल्प से ङीष् होता है।

मृद्वी-मृदुः--मृदुशब्द से 'वोतो गुणवचनात्' सूत्र से ङीष्

होने पर यण् होकर प्रथमा ए० व० में मृद्वी बना। जहां ङीष् नहीं हुआ वहां मृदुः बना।

मू०—बह्वादिभ्यश्च ४।१।४५। एभ्यो वा ङीष् स्यात्। बह्वी-बहुः।

अनु०—बह्वादियों से विकल्प से ङीष् होता है।

बह्वी-बहुः—बहुशब्द से 'बह्वादिभ्यश्च' सूत्र से ङीष् होने पर उकार् यण् हुआ। फिर प्रथमा ए०व० में रूप बना बह्वी। जहां पर ङीष् नहीं हुआ वहां परसु का रुत्व विसर्ग होकर बहुः ही रहा।

मू०—ग० सू-कृद् इकारादक्तिनः। रात्रिः, रात्री।

अनु०—क्तिन् प्रत्ययान्त भिन्न कृत् इकारान्त से विकल्प से ङीष् होता है।

रात्रिः-रात्री—राधातु से 'राशादिभ्यस्त्रिप्' सूत्र से त्रिप् प्रत्यय होकर रात्रि बना। रात्रि से 'कृदिकारादक्तिनः' से ङीष् होकर तथा 'यस्येति च' सूत्र से अन्त्य इका लोप होकर प्र० ए० व० में रात्री बना। और जहां ङीष् नहीं हुआ वहां सु का रुत्व विसर्ग होकर रात्रिः बना।

मू०—सर्वतोऽक्तिन्नर्थादित्येके। शकटी-शकटिः।

अनु०—एक प्रकार के आचार्यों का कहना है कि क्तिन् भिन्न इकारान्त तद्धितान्त शब्द से ङीष् प्रत्यय होता है।

शकटी-शकटिः—(गाड़ी) शकटि शब्द से 'सर्वतोऽक्तिनार्थादित्येके' इस वार्तिक से ङीष जहां हुआ वहां यस्येति च से अन्त्य इका लोप होकर प्र० ए० व० में शकटी बना। जहां ङीष् नहीं हुआ वहां शकटिः बना।

मू०—पुंयोगादाख्यायाम् ४।१।४८। या पुमाख्या पुंयोगात् स्त्रियां वर्तते ङीष्। गोपस्य स्त्री-गोपी।

अनु०--पुरुष का वाचक जो शब्द वह यदि पुरुष के सम्बन्ध से स्त्री के लिए लाक्षणिक रूप से प्रयुक्त होता हो ता उस अर्थ में उस शब्द से ङीष् प्रत्यय होता है।

गोपी--(गोप की स्त्री) अर्थ में गोप शब्द से 'पुंयोगादाख्यायाम्' सूत्र से ङीष् होकर तथा अन्त्य अका लोप होकर प्र० ए० व० में गोपी बना।

मू०--(वा०) पालकान्तान्न। गोपालिका। अश्वपालिका।

अनु०—पालक जिसके अन्त में आया हो ऐसे पुरुष सम्बन्ध मात्र से स्त्री के वाचक शब्द से ङीष् नहीं होता है।

गोपालिका-गौ का पालन करने वाले की स्त्री-अर्थ में गोपालक-शब्द से 'पुंयोगादाख्यायाम्' से ङीष् प्राप्त था उसको बाधित कर दिया 'पालकान्तान्न' वार्तिक। फिर 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप् होकर गोपालिका बना प्र० ए० व० में।

अश्वपालिका--(घोड़ा पालने वाले की स्त्री) अर्थ में गोपालिका के समान बनेगा।

मू०--प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः।७।३।४४। प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्याकारस्येकारः स्यादापि स आप्र सुपः परो न चेत्। सर्विका-कारिका। अतः किम्? नौका। प्रत्ययस्थात् किम्? शक्नोतीति शका। असुपः किम्? बहुपरिव्राजका नगरी।

अनु०—प्रत्यय के ककार से पूर्वस्थित अकार का इ होता है आप् परे रहते यदि वह आप् सुप् से परे न हो तो।

सर्विका—अकच् प्रत्ययान्त 'सर्वक' से स्त्रीत्व की विवक्षा में 'अजाद्यतष्टाप्' सूत्र से टाप् प्रत्यय होने पर सर्विका बना। पुनः 'प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुपः' सूत्र से ककार पूर्ववर्ती अ का इ होकर प्र०ए०व० में सर्विका बना।

कारिका—ण्वुल् प्रत्ययान्त 'कारक' शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा

में 'अजाद्यतष्टाप्' से टाप् होने पर 'प्रत्ययस्थात् कात्पूर्वस्य०' इत्यादि सूत्र से ककार पूर्ववर्ती अ का इ होकर प्र०ए०व० में कारिका बना।

अतः किम् नौका—प्रत्ययस्थ ककार पूर्ववर्ती अकार का ही इ होता है इसलिए कि नौका के ककार पूर्ववर्ती औ का इ न होए।

प्रत्ययस्थात्—किम् ? शंका–सूत्र में प्रत्ययस्थ ही ककार इसलिए ग्रहण किया गया कि। (शकने अर्थ वाले) शका के प्रत्ययस्थ भिन्न ककार पूर्ववर्ती अ का इ न हो जाय।

असुपः = किम्–बहुपरिव्राजका नगरी (अनेक सन्यासियों वाली नगरी) सुप् से परे आप् न हो कहने क उद्देश्य है कि बहुपरिव्राजका में अ का इ न होजाय। क्योंकि परिपूर्वक व्रज् धातु से ण्वुल प्रत्यय होकर परिव्राजक शब्द बनता है। इसका बहु शब्द के साथ बहुव्रीहि समास होने पर सुप् का लुक् हो गया। उस लुप्त सुप् से परे है वहुपरिव्राजका का 'आ' है अतएव यहां पर प्रत्ययस्थ ककार पूर्ववर्ती अकारके होने पर भी आ का इ नहीं होगा।

मू०–(वा०) सूर्याद् देवतायां चाप् वाच्यः। सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या।

अनु०––देवता जाति की स्त्री रूप अर्थ में पुंयोगमें सूर्य शब्द से चाप् प्रत्यय होता है। चाप् का आ बचता शेष भाग का लोप हो जाता है

सूर्या––(सूर्य की स्त्री) अर्थ में सूर्य शब्द से 'सूर्याद् देवतायां चाप् वाच्यः' वार्तिक से चाप् होने पर प्र०ए०व० में सूर्या बना।

मू०–देवतायां किम् ? (वा०) सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च य लोपः। सूरी कुन्ती, मानुषीयम्।

अनु०—सूर्य एवं अगस्त्य शब्द से य का लोप होता है छ तथा ङी परे रहते।

सूरी—(सूर्य की मनुष्य जाति की स्त्री–कुन्ती) के अर्थ में 'पुंयोगाख्यायाम्' सूत्र से ङीष् होने–पर 'यस्येति' च से अन्त्य अ का

लोप हुआ। पुनः 'सूर्यागस्त्ययोश्छे च ङ्यां च यलोपः' वार्तिक से य का लोप होने पर प्र०ए०व० में सूरी बना।

मू०--इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक् ४।१।४९। एषामानुगागमः स्यात् ङीष् च। इन्द्रस्य स्त्री इन्द्राणी, वरुणानी, भवानी, शर्वाणी, रुद्राणी, मृडानी।

अनु०—इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड, हिम, अरण्य, यव, यवन, मातुल तथा आचार्य इन शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा में आनुक् का आगम होता है तथा ङीष् प्रत्यय होता है। (आनुक् के उक् का लोप होकर आन् बचता है।)

इन्द्राणी-इन्द्र की स्त्री के अर्थ में-इन्द्र शब्द से 'इन्द्र वरुणभवशर्वरुद्र०' इत्यादि सूत्र से आनुक् का आगम तथा ङीष् प्रत्यय होकर णत्व होने पर प्र०ए० व० में इन्द्राणी बनेगा।

वरुणानी, भवानी, शर्वाणी, रुद्राणी तथा मृडानी की भी इन्द्राणी के ही समान सिद्धि होगी।

मू०--(वा०) हिमारण्ययोर्महत्त्वे। महद् हिमम् हिमानी। महदरण्यमरण्यानी।

अनु०--बड़ा अर्थ में हिम और अरण्य शब्द से ङीष् प्रत्यय और आनुक् का आगम होता हैं।

हिमानी (अधिक बरफ) अरण्यानी (बड़े जंगल)। अर्थ में हिम और अरण्य शब्द से 'हिमारण्ययोर्महत्त्व' वार्तिक से आनुगागम तथा ङीष् प्रत्यय होकर प्रथमा ए०व० में हिमानी और अरण्यानी बनेंगे।

मू०--यवाद्दोषे। दुष्टोयवो-यवानी।

अनु०--दोष के अर्थ में यव शब्द से आनुक् का आगम और ङीष् प्रत्यय होते हैं स्त्रीत्व की विवक्षा में।

यवानी--दुषित यव के अर्थ में यव शब्द से 'यवाद् दोषे' वार्तिक से आनुगागम तथा ङीष होने पर प्र०ए०व० में यवानी बनेगा।

मू०--(वा० यवनाल्लिप्याम् । यवनानां लिपिः यवनानी ।

अनु०—यवन शब्द से लिपि अर्थ में आनुगागम तथा ङीष् होते हैं ।

यवनानी-यवनों की लिपि के अर्थ में यवन शब्द से आनुगागम तथा ङीष् होने पर यवनानी प्र०ए०व० में बनेगा ।

मू०--(वा०) मातुलोपाध्याययोरानुग्वा । मातुलानी मातुली । उपाध्यायानी उपाध्यायी ।

अनु०—मातुल और उपध्याय शब्दों से ङीष् प्रत्यय होता है और आनुकका आगम विकल्प से होता है ।

मातुलानी--मातुली-(मामी) मातुल शब्द से 'मातुलोपाध्याययोरानुग्वा' सूत्र से ङीष तथा आनुक् होने पर प्रथमा ए०व० में मातुलानी बनेगा । जहां पर ङीष् ही केवल हुआ वहां पर मातुली बना ।

उपाध्यायानी-उपाध्यायी-(उपाध्याय की पत्नी) इन रूपों की भी सिद्धि मातुलानी और मातुली के ही समान होगी ।

मू०--(वा०) आचार्यादणत्वं च । आचार्यस्यस्त्री-आचार्यानी ।

अनु०—आचार्य शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में आनुक् का आगम, ङीष् तथा णत्व का अभाव होता है ।

आचार्यानी—आचार्य की स्त्री-के अर्थ में आचार्य शब्द से -'आचार्यादणत्वं च' वार्तिकसे आनुगागम, ङीष् तथा णत्व का अभाव होकर प्र०ए०व० में आचार्यानी बना ।

मू०--(वा०) अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे । आर्याणी-अर्या । क्षत्रियाणी-क्षत्रिया ।

अनु०—अर्य और क्षत्रिय शब्द से आनुगागम और ङीष् प्रत्यय विकल्प से होते हैं स्वार्थ में ।

अर्याणी—अर्या-(वैश्यकुलकी स्त्री) अर्य शब्द से 'अर्य

क्षत्रियाण्यां वा स्वार्थे' वार्तिक से आनुगागम ङीष् तथा णत्व होकर प्र० ए० व० में अर्याणी बना । जहां आनुगागम और ङीष् नहीं हुए वहाँ अजाद्यतष्टाप् से टाप् होकर अर्या बना ।

क्षत्रियाणी-क्षत्रिया-(क्षत्रिय कुल की स्त्री) इन रूपों की भी सिद्धि अर्याणी और अर्या के ही समान होगी ।

मू०--क्रीतात्करणपूर्वात् ४।१।५०। क्रीतान्तादद‍न्तात् करणादेः स्त्रियां ङीष् स्यात् । वस्त्रक्रीती । क्वचिन्न-धनक्रीता ।

अनु०--जिसके अन्त में क्रीत शब्द और आदि में करण वाचक शब्द का प्रयोग हो ऐसे अदन्त शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् होता है ।

वस्त्रकीती-(वस्त्र से खरीदी गयी) के अर्थ में वस्त्रेण क्रीतः बस्त्रक्रीतः इस विग्रह वाले वस्त्रक्रीत शब्द से 'क्रीतात्करण पूर्वात्' सूत्र से ङीष् प्रत्यय तथा अन्त्य अ का लोप होकर प्र० ए० व० में 'वस्त्रक्रीती' बनेगा ।

कहीं कहीं पर ङीष् नहीं भी होता है जैसे-धनेनक्रीता अर्थ में-धनक्रीत शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष नहीं अपितु टाप् ही होता है ।

मू०--स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात् । ४।१।५४। असंयोगपध-मुपसर्जनं यत्स्वाङ्गं तदन्तादद‍न्तात् ङीष वा स्यात् । केशानतिक्रान्ता-अतिकेशी-अतिकेशा । चन्द्रमुखी-चन्द्रमुखा । असयोगोपधात् किम् ? सुगुल्फा । उपसर्जनात् किम्-सुशिखा ।

अनु०--ऐसा स्वाङ्ग जो गौण हो तथा जिसकी उपधा में कोई संयाग न हो तदन्त अदन्त शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय विकल्प से होता है ।

अतिकेशी-अतिकेशा--(केशों का अतिक्रमण करने वाली अर्थ में) अतिकेश शब्द से स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्'

सूत्र से ङीष् होकर 'यस्येति च' से अन्त्य अ का लोप होकर प्र० ए० व० में अतिकेशी रूप बनेगा। जहाँ ङीष् नहीं होगा वहां टाप् होकर अतिकेशा बनेगा।

चन्द्रमुखी-चन्द्रमुखा--(चन्द्रमा के समान मुखवाली) अर्थ में चन्द्र मुख शब्द से 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनात् असंयोगोपधात्' सूत्र से ङीष् हुआ वहां तो चन्द्रमुखी बनेगा। ङीष् के अभाव पक्ष में टाप् होकर चन्द्रमुखा बनेगा।

असंयोगोपधात् किम् ? सुगुल्फा। सूत्र में सयोग रहित उपधा का ग्रहण इसलिए किया गया है कि सुगुल्फा इत्यादि में ङीष् न होए क्योंकि सुगुल्फा के स्वाङ्गवाचक गुल्फ शब्द की उपधा गु संयोग से युक्त है।

उपसर्जनात् किम्-सुशिखा—सूत्र में गौण (उपसर्जन) पद का ग्रहण इसलिए किया गया है कि सुशिखा इत्यादि में भी ङीष् न होने लगे।

मू०--न क्रोडादि बह्वचः ।४।१।५६। क्रोडादेः बह्वचश्च स्वाङ्गान्न ङीष्। कल्याणक्रोडा। आकृतिगणोऽयम्। सुजघना।

अनु०—क्रोड आदि गण तथा बह्वच् (अनेके अच् वाले) शब्दों के स्वाङ्ग वाचक होने पर उनसे स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् नहीं होता है।

कल्याण-क्रोडा--(कल्याणकारी चिह्नयुक्त वक्षस्थल वाली) के अर्थ में 'कल्याणं क्रोडं यस्याः सा' इस विग्रह वाले कल्याण क्रोड शब्द से 'स्वाङ्गाचोपसर्जनात् संयोगोपधात्' सूत्र से ङीष् प्राप्त था किन्तु 'न क्रोडादिबह्वचः' से उसका निषेध हो गया तो अदन्त लक्षण टाप् होकर कल्याण क्रोडा बना। क्रोडादिगण आकृतिगण है।

सुजघना--(सुन्दर जंघों वाली) अर्थ में सुजघना शब्द

'कल्याणक्रोडा' के ही समान बनेगा ।

मू०---नख मुखात् संज्ञायाम् ४।१।५८। न ङीष् ।

अनु०---नख और मुख इन दोनों स्वाङ्गों के वाचक संज्ञा शब्दों से ङीष् नहीं होता है ।

मू०---पूर्वपदात्संज्ञायामगः ८।४।३। पूर्वपदस्थान्निमित्तात्परस्य नस्य णः स्यात् संज्ञायाम् न तु गकार व्यवधाने । शूर्पणखा । गौरमुखा । संज्ञायाम् किम्–ताम्रमुखी–कन्या ।

अनु०---पूर्वपदस्थित निमित्त से परे न को ण होता है संज्ञा अर्थ में, किन्तु गकार व्यवधान रहने पर नहीं ।

शूर्पणखा-(शूर्पणखा नाम की एक राक्षसी) शूर्पाणीव नखानि यस्याः सा) इस विग्रह में शूर्पनख शब्द सें 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनाद संयोगात्' सूत्र से स्वाङ्ग वाचक नख से ङीष् की प्राप्ति हुई तो उसका निषेध 'नखमुखात् संज्ञायाम्' सूत्र से हो गया । पुनः 'अजाद्यतष्टाप् से टाप् हुआ । और 'पूर्वपदात्संज्ञायामगः' सूत्र से न का ण होकर शूर्पणखा बना प्र०ए०व० में ।

गौरमुखा---(गौरमुखा नाम वाली) इसकी भी सिद्धि शूर्पणखा के ही समान होगी । इसमें 'पूर्वपदात्संज्ञायामगः' सूत्र नहीं लगेगा ।

संज्ञायाम् किम् ताम्रमुखी (लाल मुखड़े वाली) –'नखमुखात् संज्ञायाम्' सूत्र में 'संज्ञायाम्' पद का ग्रहण इसलिए किया गया है कि ताम्रमुखी (लाल मुखवाली) अर्थ में ताम्रमुख शब्द से ङीष् का निषेध न हो ।

मू०---जातेरस्त्री विषयादयोपधात् ४।१।६३। जाति वाचि यन्नच स्त्रियाम नियतमयोपधम् ततः स्त्रियां ङीष् स्यात् । तटी, वृषली, कटी, वहवृची । जातेः किम् ? मुण्डा । अस्त्रीविषयात्किम् ? बलाका : अयोपधात्किम् ? क्षत्रिया ।

अनु०---जातिवाचक, नियत स्त्रीलिङ्ग भिन्न यकार भिन्न

उपधावाले अदन्त शब्दों से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् होता है।

तटी—जाति के वाचक अनियत स्त्रीलिङ्ग तट शब्द से 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' सूत्र से ङीष् होकर प्र०ए०व० में तटी होगा। वृषली—(वृषल जाति की स्त्री) वृषल+ङीष्। कठी (कठशाखा को पढ़ने वाली) कठ+ङीष। बह्वृची = बह्वृच् शाखा को पढ़ने वाली, बह्वृच्+ङीप्।

जातेःकिम्—मुण्डा-सूत्र में जातिपद का ग्रहण इसलिए किया गया कि मुण्डा = (मुड़ी हुई) अर्थ में मुण्ड शब्द से ङीष् न हो।

अस्त्रीविषयात्किम्—बलाका—नियत स्त्रीलिङ्ग भिन्न का ग्रहण इसलिए किया गया के नियत स्त्रीलिङ्ग बलाका आदि शब्दों से ङीष् न हो।

अयोपधात् किम्-क्षत्रिया। यकारोपधभिन्न अर्थ सूत्र में इस लिए ग्रहण किया गया कि यकारोपधा वाले क्षत्रिया आदि शब्दों में ङीष् न हो।

मू०-(वा०, योपधप्रतिषेधे हयगवयमुकयमनुष्य मत्स्यानामप्रतिषेधः। हयी, गवयी, मुकयी। हलस्तद्धितस्य य लोपः। मनुषी।

अनु०—जातिवाचक अनियत स्त्रीलिङ्ग यकारोपध शब्द की स्त्रीत्व विवक्षा में ङीष् प्रतिषेध होने पर भी हय, गवय, मुकय, मनुष्य तथा मत्स्य शब्दों से ङीष् का निषेध नहीं होता है।

हयी (घोड़ी)—जातिवाचक अनियत स्त्रीलिङ्ग यकारोपध हय शब्द से 'जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्' सूत्र से ङीष् का निषेध प्राप्त था किन्तु 'योपधप्रतिषेधे हय-गवय मुकय मनुष्यमत्स्यानामप्रतिषेधः' वार्तिक से ङीष् होकर प्र०ए०व० में हयी बना।

गवयी (मादा नीलगाय) गवय+ङीष्। मुकयी (मादा मुकय) मुकय+ङीष्।

मानुषी—(स्त्री) यकारोपध मनुष्य शब्द से 'जातेरस्त्रीविष-

यादयोपधात्' से ङीष् का निषेध प्राप्त था किन्तु 'योपध प्रतिषेधे०' इत्यादि वार्तिक से ङीष हो गया। पुनः 'हलस्तद्धितस्य' से 'मनुष्य' के यकालोप होकर प्र०ए०व० में मनुषी बना।

मू०—मत्स्यस्य ङ्यां यलोपः। मत्सी।

अनु०—ङी परे रहते मत्स्य शब्द के य का लोप होता है।

मत्सी—मत्स्य शब्द से 'जातेरस्त्री०' इत्यादि से ङीष् का निषेध प्राप्त होने पर 'योपध प्रतिषेधे०' इत्यादि वार्तिक से ङीष् प्रत्यय होकर मत्स्यी बना। पुनः 'मत्स्यस्य ङ्यां यलोपः' से यका लोप होने पर प्र०ए०व० में मत्सी बना।

मू०—इतो मनुष्य जातेः ४।१।६५। ङीष् दाक्षी।

अनु०—मनुष्य जाति के वाचक इकारान्त शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् होता है।

दाक्षी—(दक्ष की स्त्री सन्तान) अपत्यर्थक इञ् प्रत्ययान्त दाक्षि शब्द से 'इतो मनुष्यजातेः' से ङीष् प्रत्यय तथा 'यस्येति' च' से अन्त्य इ का लोप होकर प्र०ए०व० में दाक्षी बनता है।

सू०—ऊङ् उतः।४।१।६६। उदन्तादयोपधान्मनुष्यजातिवाचिनः स्त्रियामुङ् स्यात्। कुरूः। अयोपधात् किम्—अध्वर्युः—ब्राह्मणी।

अनु०—उकारान्त यकारोपध भिन्न मनुष्यजाति के वाचक शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् होता है।

कुरूः—(कुरुजाति की स्त्री) जाति वाचक संज्ञा 'कुरु' शब्द से 'उङुतः' सूत्र से ऊङ् होकर अन्त्य उ का लोप होने पर प्र०ए० व०में कुरूः बनता है।

अयोपधात् किम् अध्वर्युः=ब्राह्मणी। सूत्र में यकारोपध भिन्न का ग्रहण इसलिए किया गया है कि अध्वर्युः (यजुः शाखा का अध्यन करने वाली) अर्थ में ऊङ् प्रत्यय न हो।

मू०—पङ्गोश्च ४।१।६८। पङ्गूः।

अनु०—पङ्गु शब्द से भी स्त्रीलिङ्ग की विवक्षा में ऊङ् प्रत्यय होता है।

पङ्गूः—(लंगड़ी) पङ्गु शब्द से स्त्रीत्व की विवक्षा में 'ऊङ्' प्रत्यय होकर उकार का लोप होकर प्र० ए० व० में पङ्गूः बना।

मू०—(वा०) श्वशुरस्योकाराऽकारलोपश्च । श्वश्रूः ।

अनु०—श्वशुर शब्द से स्त्रीलिङ्ग में ऊङ् प्रत्यय होता है और शकार से परे उकार तथा र से परे अकार का लोप होता है।

श्वश्रूः—(सास) श्वशुर शब्द से 'श्वशुरस्योकाराकार लोपश्च' वार्तिक से ऊङ् प्रत्यय तथा शु के उ एवं र के अका लोप होकर प्र० ए० व० में श्वश्रूः बना।

मू०—ऊरूत्तरपदादौपम्ये ४।१।६९। उपमानवाचिपूर्वपदमूरूत्तर पदं यत् प्रातिपदिकम् तस्मादूङ् स्यात् । करभोरूः ।

अनु०—जिसका पूर्वपद उपमान का वाचक हो ऐसे ऊरूत्तर पदान्त प्रातिपदिकों से ऊङ् प्रत्यय होता है।

करभोरूः—(करभमिवोरूः यस्याः सा=हथेली के समान जांघों वाली) अर्थ में उपमान वाचक करभ पद पूर्वपद वाले ऊरू पद से 'ऊरूतरपदादौपम्ये' सूत्र से ऊङ् प्रत्यय होकर प्र० ए० व० में 'करभोरूः' बना।

मू०—संहितशफलक्षणवामादेश्च ४।१।७०। अनौपम्यार्थं सूत्रम् । संहितोरूः । शफोरूः । लक्षणोरूः । वामोरूः ।

अनु०—यदि संहित, शफ, लक्षण एवं वाम शब्द के उत्तर पद ऊरु हो तो ऐसे प्रातिपदिकों से ऊङ् प्रत्यय होता है। यह सूत्र उपमानार्थक नहीं है। अतएव संहित आदि को उपमान का वाचक नहीं होना चाहिये।

संहितोरुः-(जिसकी दोनों जंघे सटे हुए हों) के अर्थ में संहितोरु शब्द से 'संहितशफलाक्षणवामादेश्च' सूत्र से ऊङ् प्रत्यय तथा अन्त्य अका लोप होकर प्र० ए० व० में संहितोरुः बनेगा।

शफोरू=(सटे हुए जंघों वाली) शफोरु+ऊङ्। लक्षणोरूः (शुभलक्षणों से युक्त जंघों वाली) लक्षणोरु+ऊङ्। वामोरूः (मनोहर जंघों वाली) वामोरु+ऊङ्। इन सभी शब्दों की सिद्धि संहितोरूः के समान होती है।

मू०--शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन् ४।१।७३। शार्ङ्गरवादेः अञो योऽकारः तदन्ताज्जातिवाचिनो ङीन् स्यात्। शार्ङ्गरवी, बैदी, ब्राह्मणी।

अनु०--शार्ङ्गरवादि का तथा अञ् का जो अकार तदन्त जो जाति वाचक शब्द उससे ङीन होता है।

शार्ङ्गरवी=(शृङ्गारु की स्त्री सन्तान) अर्थ में शार्ङ्गरव शब्द से 'शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्' सूत्र से ङीन् प्रत्यय होने पर अन्त्य अका लोप होकर प्र० ए० व० में शार्ङ्गरवी बना।

बैदी, और ब्राह्मणी शब्दों की भी शार्ङ्गरवी के ही समान सिद्धि होगी।

मू०--(ग० सू०) नृनरयोर्वृद्धिश्च। नारी।

अनु०--नृ और नर शब्द से ङीन् प्रत्यय तथा वृद्धि भी होती है।

नारी=नृ शब्द से 'नृनरयोर्वृद्धिश्च' से ङीन् तथा ऋ की आर् वृद्धि होकर प्र० ए० व० में नारी बनता है।

मू०--यूनस्तिः ३।१।७७। युवन् शब्दात् स्त्रियां ति प्रत्ययः स्यात्। युवतिः।

अनु०--युवन् शब्द से स्त्रीलिङ्ग में 'ति' प्रत्यय होता है।

युवतिः--युवन् शब्द से 'यूनस्तिः' सूत्र से 'ति' प्रत्यय हुआ। फिर 'स्वादिष्वसर्वनामस्थाने' से पद संज्ञा हुई। तदनंतर

'प्रातिपदिकान्तस्य' सूत्र से न का लोप होकर प्र० ए० व० में युवतिः बना ।

इस तरह स्त्री प्रत्यय प्रकरण की हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।